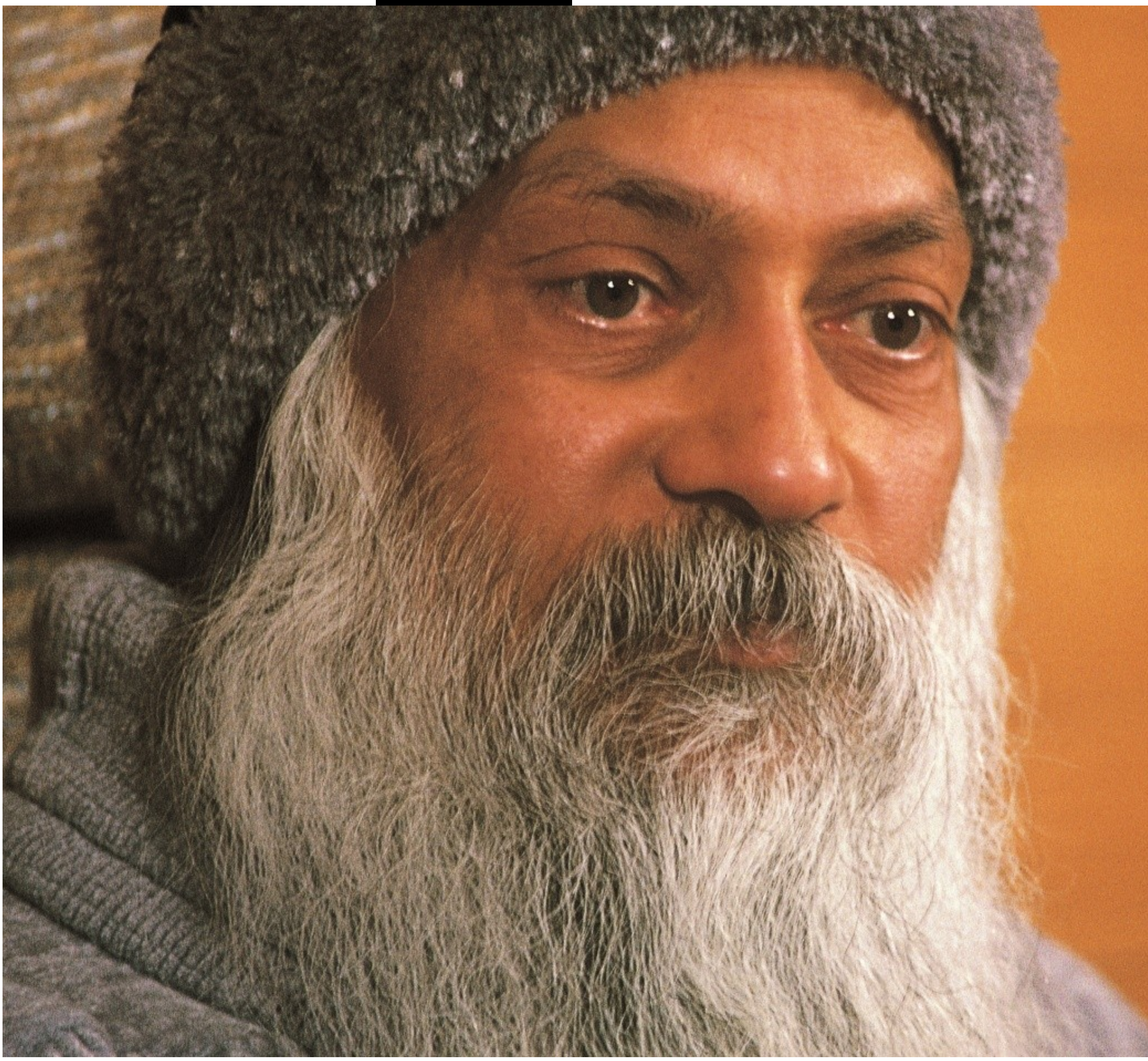

सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन

अंतर्यात्रा-सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन
प्रवचन-1
साधना की पहली सीढ़ी: शरीर

मेंरे प्रिय आत्मन्!
साधना-शिविर की इस पहली बैठक में, साधक के लिए जो पहला चरण है, उस संबंध में मैं आपसे बात करना चाहूंगा। साधक के लिए पहली सीढ़ी क्या है? विचारक के लिए सीढ़ियां अलग होती हैं, प्रेमी के लिए सीढ़ियां अलग होती हैं। साधक के लिए अलग ही यात्रा करनी होती है।
साधक के लिए पहली सीढ़ी क्या है?
साधक के लिए पहली सीढ़ी शरीर है। लेकिन शरीर के संबंध में न तो कोई ध्यान है, न शरीर के संबंध में कोई विचार है। और थोड़े समय से नहीं, हजारों वर्षों से शरीर उपेक्षित है। यह उपेक्षा दो प्रकार की है। एक तो उन लोगों ने शरीर की उपेक्षा की है, जिन्हें हम भोगी कहते हैं--जो जीवन में खाने, पीने और कपड़े पहनने के अतिरिक्त और किसी अनुभव को नहीं जानते। उन्होंने शरीर की उपेक्षा

की है, शरीर का अपव्यय, शरीर को व्यर्थ खोया है, शरीर की वीणा को खराब किया है। और वीणा खराब हो जाये तो उससे संगीत पैदा नहीं हो सकता। यद्यपि संगीत वीणा से बिल्कुल भिन्न बात है। संगीत बात ही और है, वीणा बात ही और है। लेकिन वीणा के बिना संगीत पैदा नहीं हो सकता। जिन लोगों ने शरीर को उपभोग की दिशा में व्यर्थ किया है, वे एक तरह के लोग हैं। और दूसरी तरह के लोग हैं, जिन्होंने योग की और त्याग की दिशा में भी शरीर के साथ अनाचार किया है। शरीर को कष्ट भी दिया है, शरीर का दमन भी किया है, शरीर के साथ शत्रुता भी की है।
न तो शरीर को भोगने वालों ने शरीर की अर्थवत्ता को समझा है और न शरीर को कष्ट देने वाले तपस्वियों ने शरीर की अर्थवत्ता को समझा है।
शरीर की वीणा पर दो तरह के अनाचार और अत्याचार हुए हैं--एक भोगी की तरफ से, दूसरा योगी की तरफ से। और इन दोनों ने ही शरीर को नुकसान पहुंचाया है। पश्चिम में एक तरह से शरीर को नुकसान पहुंचाया गया है, पूर्व में दूसरी तरह से। लेकिन नुकसान पहुंचाने में हम सब एक साथ सहभागी हैं। वेश्यागृहों में जाने वाले लोग और मधुशालाओं में जाने वाले लोग भी शरीर को एक तरह का नुकसान पहुंचाते हैं। धूप में नग्न खड़े रहने

वाले लोग और जंगल की तरफ भागने वाले लोग भी शरीर को दूसरी तरह से नुकसान पहुंचाते हैं।
लेकिन शरीर की वीणा से ही जीवन में संगीत उत्पन्न हो सकता है। यद्यपि जीवन का संगीत शरीर से बिल्कुल अलग बात है; बिल्कुल भिन्न और दूसरी बात है, लेकिन शरीर की वीणा के अतिरिक्त उसकी कोई उपलब्धि संभव नहीं है। इस तरफ अब तक कोई ध्यान ठीक से नहीं दिया गया है।
पहली बात है शरीर और शरीर की तरफ साधक का सम्यक ध्यान। उस संबंध में ही आज पहली चर्चा में आपसे बात करना चाहता हूं।
कुछ सूत्र समझ लेने जरूरी हैं।
पहली बातः शरीर के किन्हीं केंद्रों पर आत्मा का संपर्क है, उसी से जीवन है। शरीर के किन्हीं केंद्रों से आत्मा निकटतम रूप से संबंधित है, वहीं से जीवन की धारा शरीर में प्रवाहित होती है। आत्मा और शरीर के संपर्क के जो केंद्र हैं, जो स्थल हैं, जिस साधक को उन स्थलों का कोई ख्याल नहीं है, वह कभी भी आत्मा को उपलब्ध नहीं हो सकता है। अभी मैं आप से पूछूं कि आपके शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण केंद्र और स्थल क्या है--तो शायद आप अपने सिर की तरफ हाथ उठायें। मनुष्य की गलत शिक्षा ने मनुष्य के शरीर में केवल सिर को ही सर्वाधिक

महत्वपूर्ण बना दिया है। सिर मनुष्य की जीवन-धारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केंद्र नहीं है। मस्तिष्क मनुष्य की जीवन-धारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केंद्र नहीं है। जैसे हम किसी पौधे के पास जायें और पूछें कि पौधे में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और जीवंत क्या है, तो ऊपर ही फूल दिखाई पड़ जायेंगे और कोई भी कह देगा कि ये फूल ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। फूल सर्वाधिक महत्वपूर्ण दिखाई पड़ते हैं, लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण फूल नहीं हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे जड़ें हैं, जो दिखाई नहीं पड़तीं।
मस्तिष्क मनुष्य के पौधे पर लगा हुआ फूल है। वह मनुष्य के शरीर की जड़ नहीं है। फूल सबसे बाद में आते हैं और अंतिम होते हैं। जड़ें सबसे प्रथम होती हैं। और अगर जड़ें भूल जायें तो फूल कुम्हला जायेंगे। फूलों का अपना कोई जीवन नहीं होता। और अगर जड़ें संभाल ली जायें तो फूल अपने आप संभल जाते हैं, उन्हें संभालने के लिए अलग से कोई आयोजन नहीं करना होता है। लेकिन पौधे में देखने पर ऐसा लगेगा, फूल सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। ऐसे ही मनुष्य में भी लगता है कि मस्तिष्क सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मस्तिष्क अंतिम बात है मनुष्य के शरीर

में। वह मनुष्य के शरीर की जड़ें नहीं है, रूट्स नहीं है।
माओत्से तुंग ने अपने बचपन का एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि मैं छोटा था, मेरी मां के झोपड़े के पास एक बड़ी सुंदर बगिया थी। वह बगिया इतनी सुंदर थी, उसमें ऐसे सुंदर फूल आते थे कि दूर-दूर से लोग देखने आते थे। फिर मेरी मां बूढ़ी हो गयी और बीमार पड़ी। न तो वह अपनी बीमारी से चिंतित थी, न अपने बुढ़ापे से। उसकी चिंता एक ही थी कि उसकी बगिया का क्या होगा। माओ छोटा था। उसने अपनी मां को कहा कि तू बेफिक्र रह, मैं तेरी बगिया की फिक्र कर लूंगा।
और माओ सुबह से सांझ तक बगिया की फिक्र करता रहा। एक महीने बाद उसकी मां ठीक हुई, तो जैसे ही वह थोड़ी चल सकी, उठकर बगिया में आ गयी और देखकर घबरा गयी। बगिया तो बरबाद हो चुकी थी। पौधे सब सूख गये थे। फूल सब कुम्हला कर गिर गये थे। वह बहुत हैरान हुई। उसने माओ को कहा कि पागल! तू तो सुबह से सांझ तक बगिया में ही रहता था। तूने यह क्या किया? ये सब फूल तो नष्ट हो गये। यह बगिया तो कुम्हला गयी। सब पौधे तो मरने के करीब आ गये। यह तू करता क्या था? माओ रोने लगा। वह खुद भी परेशान था। वह रोज दिन भर मेहनत करता था, लेकिन न मालूम क्या बात थी कि बगिया सूखती गयी।

वह रोने लगा और उसने कहा कि मैंने तो बहुत फिक्र की। मैं तो एक-एक फूल को चूमता था और प्रेम करता था। एक-एक पत्ते को झाड़ता था, धूल पोंछता था, लेकिन पता नहीं क्या हुआ। मैं फिक्र भी करता था, लेकिन फूल कुम्हलाते गये, पत्ते सूखते गये और बगिया धीरे-धीरे मुरझाती गयी। उसकी मां ने कहा, पागल! वह हंसने लगी, बोली--उसने कहा; तू पागल है! तुझे अभी यह पता नहीं कि फूलों के प्राण फूलों में नहीं होते और न पत्तों के प्राण पत्तों में होते हैं।
पौधे के प्राण वहां होते हैं, जहां किसी को दिखाई ही नहीं पड़ते। वे उन जड़ों में होते हैं, जो जमीन के नीचे छिपी होती हैं। और उन जड़ों की अगर कोई फिक्र न करे तो फूल और पत्ते नहीं संभाले जा सकते। कितने ही चूमे जायें, कितना ही उनको प्रेम किया जाये, कितनी ही उनकी धूल झाड़ी जाये। पौधे कुम्हला ही जायेंगे। लेकिन फूलों की कोई बिल्कुल भी फिक्र न करे और जड़ों को संभाल ले, तो फूल अपने-आप संभल जाते हैं। जड़ों में से फूल आते हैं, फूलों में से जड़ें नहीं आती हैं।
लेकिन अगर हम किसी आदमी से पूछें कि मनुष्य के शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा क्या है, तो अनजाने ही उसका हाथ सिर की तरफ उठेगा और वह

कहेगा कि सिर सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। या अगर वह स्त्री हो तो हो सकता है, उसका हाथ हृदय की तरफ उठ जाये और वह कहे, हृदय सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। हृदय भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं है और मस्तिष्क भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं है। पुरुषों ने सारा बल मस्तिष्क पर दिया है और स्त्रियों ने सारा बल हृदय पर दिया है। और दोनों से मिला हुआ समाज रोज नष्ट होता चला गया है, क्योंकि ये दोनों ही बिंदु शरीर में महत्वपूर्ण बिंदु नहीं हैं। ये दोनों ही बहुत बाद के विकास हैं। मनुष्य की जड़ें इनमें नहीं हैं। और मनुष्य की जड़ों से मेरा क्या मतलब है? जैसे पौधे की जड़ें होती हैं पृथ्वी में, उन्हीं जड़ों से वह जीवन और रस खींचता है, उसी से जीवित होता है। ऐसे ही मनुष्य के शरीर में किसी बिंदु पर वे जड़ें हैं, जो आत्मा से जीवन और रस खींचती हैं और जिनके कारण शरीर जीवित होता है। जिस दिन वे जड़ें शिथिल हो जाती हैं, शरीर समाप्त हो जाता है।
भूमि में पौधे की जड़ें हैं। मनुष्य के शरीर की जड़ें आत्मा में प्रविष्ट हैं। लेकिन मस्तिष्क नहीं है वह जगह और न ही हृदय वह जगह है, जहां से मनुष्य प्राणों से जुड़ता है। और अगर हमें उन जड़ों का कोई पता न हो तो हम कभी भी साधक के जगत में प्रवेश नहीं कर सकते।

कहां हैं फिर मनुष्य की जड़ें? शायद आपके ख्याल में ही नहीं है। कुछ सीधी और सरल-सी बातें भी अगर हजारों साल तक ध्यान से भूली रहें तो विस्मृत हो जाती हैं। मां के पेट में बच्चा पैदा होता है, बड़ा होता है, तो मां से वह किस जगह से जुड़ा होता है? मस्तिष्क से, या हृदय से? वह नाभि से जुड़ा होता है। जीवन की धारा उसे नाभि से उपलब्ध होती है। हृदय भी बाद में विकसित होता है, मस्तिष्क भी बाद में विकसित होता है। मां की जीवन-धारा उसे नाभि से उपलब्ध होती है। मां के शरीर में बच्चे की जड़ें नाभि से फैली होती हैं। न केवल दूसरे--मां के शरीर में उसकी जड़ें नाभि से फैली होती हैं, बल्कि स्वयं के प्राणों में भी उसकी जड़ें नाभि से ही फैली होती हैं। मनुष्य के शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिंदु नाभि है। उसके बाद हृदय विकसित होता है, उसके बाद मस्तिष्क विकसित होता है। ये बाद की फैली हुई टहनियां हैं। इन पर फूल भी लगते हैं।
मस्तिष्क पर ज्ञान के फूल लगते हैं। हृदय पर प्रेम के फूल लगते हैं।
यही फूल हमें भुला लेते हैं और हमको लगता है कि यही फूल सब कुछ हैं। लेकिन जड़ें मनुष्य के शरीर की और प्राणों की नाभि में होती हैं। वहां कोई फूल नहीं

लगते। वे बिल्कुल अदृश्य हैं, वे दिखाई भी नहीं पड़ते। लेकिन पिछले पांच हजार वर्षों में मनुष्य के जीवन में जो विकृति आयी है, वह इसी बात से आयी है कि हमने सारा बल या तो मस्तिष्क पर दिया है या हृदय पर दिया है। हृदय पर भी बहुत कम बल दिया है। अधिक बल तो मस्तिष्क पर दिया है।
बचपन से ही सारी शिक्षा मस्तिष्क की शिक्षा है। नाभि की तो दुनिया में किसी कोने में कहीं कोई शिक्षा नहीं है। सारी मस्तिष्क की शिक्षा है! तो मस्तिष्क तो बड़ा होता चला जाता है और जड़ें हमारी छोटी होती चली जाती हैं। मस्तिष्क का फूल तो... फिक्र करते हैं हम उसकी, वह भारी हो जाता है और जड़ें हमारी विलीन होती चली जाती हैं। फिर जीवन की धारा क्षीण बहने लगती है और आत्मा से हमारे संपर्क शिथिल हो जाते हैं। फिर धीरे-धीरे तो हम उस जगह आ गये हैं कि आदमी यह भी कहने लगा है, कहां है आत्मा? कौन कहता है कि आत्मा है? कौन कहता है कि परमात्मा है? हमें तो कुछ पता नहीं चलता है; पता नहीं चलेगा। पता नहीं चल सकता है--क्योंकि कोई आदमी अगर वृक्ष के पूरे शरीर पर ढूंढ़ ले और कहे कहां हैं जड़ें, हमें तो कुछ पता नहीं चलता है; तो ठीक ही कह रहा है। वृक्ष के ऊपर कहीं कोई जड़ें नहीं हैं। जड़ें जहां हैं, वहां

तक हमारी पहुंच बंद हो गयी है। वहां तक हमारा ख्याल बंद हो गया है। और बचपन से ही चूंकि मस्तिष्क का ही और माइंड का ही सारा प्रशिक्षण है, सारा शिक्षण है, तो हमारा सारा ध्यान, हमारा सारा अटेन्शन मस्तिष्क में उलझकर समाप्त हो जाता है। जीवन भर हम मस्तिष्क के आसपास ही घूमते रहते हैं। उससे नीचे हमारा ध्यान प्रवेश ही नहीं करता।
साधक की यात्रा नीचे की तरफ है--जड़ों की तरफ। मस्तिष्क से उतरना है हृदय तक। और हृदय से उतरना है नाभि तक। और नाभि के बाद ही कोई आत्मा में प्रवेश पा सकता है, उसके पहले कभी नहीं पा सकता। आमतौर से हमारे जीवन की गति नाभि से मस्तिष्क की तरफ है। साधक की गति बिल्कुल उल्टी होने को है। मस्तिष्क से नाभि की तरफ उसे नीचे उतरना है।
इन तीन दिनों में मैं... वह तो आपसे क्रमशः बात करूंगा कि मस्तिष्क से हृदय तक कैसे उतरें और हृदय से नाभि तक कैसे उतरें और फिर नाभि से आत्मा तक प्रवेश कैसे हो सकता है।
आज तो सिर्फ शरीर के संबंध में ही कुछ बात कहनी जरूरी है।
पहली बात तो यही ध्यान में लेने की आवश्यकता है कि मनुष्य के प्राणों का केंद्र नाभि है। वहीं से बच्चा जीवन पाना शुरू करता है, वहीं से उसके सारे

जीवन की शाखाएं, प्रशाखाएं फैलनी शुरू होती हैं, वहीं से उसे ऊर्जा मिलती है। वहीं से शक्ति मिलती है लेकिन उस ऊर्जा के केंद्र पर हमारा ध्यान नहीं है, जरा भी नहीं है! और उस ऊर्जा के केंद्र को, उस शक्ति के केंद्र को जानने की जो भी व्यवस्था है, उस पर भी हमारी कोई दृष्टि नहीं है! बल्कि उसे भूल जाने की जो व्यवस्था है, उस पर हमारी पूरी दृष्टि है और पूरी शिक्षा है! इसीलिए पूरी शिक्षा गलत हो गयी है।
सारी शिक्षा मनुष्य को धीरे-धीरे पागलपन की तरफ ले जा रही है।
अकेला मस्तिष्क केवल पागलपन की तरफ
ही ले जा सकता है।
क्या आपको पता है, जो मुल्क जितना ज्यादा शिक्षित हो गया है, उतना ही वहां पागलों की संख्या बढ़ गयी है? अमरीका में आज पागलों की संख्या सर्वाधिक है। यह गौरव की बात है। यह इस बात का सबूत है कि अमरीका सबसे ज्यादा शिक्षित है, सबसे ज्यादा सभ्य है। अमरीकी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सौ वर्षों तक यही व्यवस्था चली, तो अमरीका में ठीक आदमी खोजना मुश्किल हो जाएगा। आज भी चार आदमियों में से तीन आदमियों के मस्तिष्क डांवाडोल स्थिति में हैं। सिर्फ अमरीका में ही तीस लाख लोग रोज अपनी मानसिक चिकित्सा के लिए डाक्टरों

से सलाह ले रहे हैं! धीरे-धीरे शरीर के डाक्टर कम और मन के डाक्टर अमरीका में बढ़ते जाते हैं। क्योंकि शरीर के डाक्टर भी यह कहते हैं कि आदमी की अस्सी प्रतिशत बीमारियां मन की हैं, शरीर की नहीं हैं! और जैसे-जैसे समझ बढ़ती है, यह प्रतिशत बढ़ता जाता है। पहले वे कहते थे चालीस प्रतिशत, फिर वे कहने लगे पचास प्रतिशत, अब वे कहते हैं अस्सी प्रतिशत बीमारियां मन की, शरीर की नहीं! और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि बीस-पच्चीस साल के बाद वे कहेंगे निन्यान्नबे प्रतिशत बीमारियां मन की हैं, शरीर की नहीं हैं! यह उनको कहना पड़ेगा, क्योंकि मनुष्य के मस्तिष्क पर ही सारा बल दिया जा रहा है। मस्तिष्क विक्षिप्त हो गया है।
आपको अंदाजा नहीं है कि मस्तिष्क बड़ी डेलिकेट, बड़ी महीन, बहुत बारीक, बहुत नाजुक चीज है। आदमी का मस्तिष्क दुनिया की सबसे ज्यादा नाजुक मशीन है। उस मशीन पर इतना भार दिया जा रहा है कि यही आश्चर्य है कि वह बिल्कुल टूटकर पागल क्यों नहीं हो जाती! सारा भार मस्तिष्क पर है और मस्तिष्क कितना नाजुक है, इसकी हमें कोई कल्पना नहीं है। एक आदमी की छोटी-सी खोपड़ी में कितने पतले स्नायु हैं, जिन पर सारा बोझ पड़ता है, चिंता पड़ती है, सारा दुख पड़ता है, सारा ज्ञान

पड़ता है, सारी शिक्षा पड़ती है, सारे जीवन का भार पड़ता है! वे नाजुक कितने हैं, इसका हमें कोई अंदाज ही नहीं है। शायद आपको ख्याल भी न हो, इस छोटे से सिर के भीतर कोई सात करोड़ तंतु हैं। उनकी संख्या ही आपको बता सकती है कि वे कितने छोटे होंगे। क्योंकि इतने से... उससे ज्यादा नाजुक कोई यंत्र नहीं है। उससे ज्यादा नाजुक कोई पौधा नहीं है। यह इससे भी ख्याल में आ सकता है, मनुष्य के बहुत छोटे-से सिर के भीतर सात करोड़ स्नायु हैं। ये स्नायु इतने हैं कि अगर एक आदमी के सिर के स्नायुओं को एक के बाद एक फैलाया जाये तो पूरी पृथ्वी की परिक्रमा एक आदमी के मस्तिष्क के स्नायु ले लेंगे।
इस छोटे-से सिर के भीतर इतनी बारीक व्यवस्था है, इतनी नाजुक व्यवस्था है। इस नाजुक मस्तिष्क पर ही पिछले पांच हजार वर्षों में सबसे ज्यादा जोर दिया गया है। उसका परिणाम होना स्वाभाविक था। उसका परिणाम यह हुआ कि ये तंतु टूटने शुरू हो गये, ये तंतु विक्षिप्त होने शुरू हो गये, ये तंतु पागल होने शुरू हो गये।
विचार का अति भार मनुष्य को पागलपन के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं ले जा सकता। सारी जीवन-धारा ही मस्तिष्क के आसपास घूमने लगी है। यह जो मस्तिष्क के पास

घूमती हुई जीवन-धारा है, साधक को इसी जीवन-धारा को और गहरे और नीचे और केंद्र की तरफ उतारना है, वापस लौटाना है। यह कैसे वापस लौट सकेगी, उसके पहले सूत्र शरीर के संबंध में हमें समझ लेने हैं। पहली बातः शरीर को या तो भोगने की दृष्टि से देखा जाता है या त्यागने की दृष्टि से देखा जाता है। शरीर को साधना का एक मार्ग, और परमात्मा का एक मंदिर और जीवन के केंद्र को खोज लेने की एक सीढ़ी की तरह नहीं देखा जाता है। ये दोनों ही बातें भूल-भरी हैं।
जीवन में जो भी श्रेष्ठ है और जो भी उपलब्ध करने जैसा है, उस सबका मार्ग शरीर के भीतर और शरीर से होकर ही जाता है।
शरीर की स्वीकृति एक मंदिर की भांति है, एक मार्ग की भांति है--जब तक यह मन में न हो, तब तक या तो शरीर के हम भोगी होते हैं या शरीर के हम त्यागी होते हैं। और दोनों ही स्थितियों में शरीर के प्रति हमारी भाव दशा सम्यक, ठीक, संतुलित नहीं होती।
बुद्ध के पास एक युवक दीक्षित हुआ था। वह युवक राजकुमार था। उसने जीवन के सब तरह के भोग देखे थे। भोग में ही जीया था। फिर वह संन्यासी हो गया। बुद्ध के भिक्षु बहुत आश्चर्य से भरे। उन्होंने कहा, यह व्यक्ति संन्यासी होता है! ये

कभी राजमहल के बाहर नहीं निकला, यह कभी रथ के नीचे नहीं चला, यह जिन रास्तों पर चलता था, वहां मखमली कालीन बिछा दिये जाते थे। यह भिखारी होगा। यह इसको क्या पागलपन सूझा है।
बुद्ध ने कहा, आदमी का मन हमेशा अति पर डोलता है--एक एक्सट्रीम से दूसरी एक्सट्रीम पर; एक अति से दूसरी अति पर। मनुष्य का मन मध्य में कभी भी खड़ा नहीं होता। जैसे घड़ी का पेंडुलम इस कोने से उस कोने चला जाता है, लेकिन बीच में कभी नहीं होता है। ऐसे ही मनुष्य का मन एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अब तक यह शरीर भोग की अति पर जीया। अब यह शरीर त्याग की अति पर जीयेगा।
और यही हुआ। वह राजकुमार जो कभी बहुमूल्य कालीनों के नीचे नहीं चला था, जब और भिक्षुओं के साथ रास्ते पर चलता तो सारे भिक्षु राजपथ पर चलते, वह पगडंडियों पर चलता, जिन पर कांटे होते! जब सारे भिक्षु वृक्षों की छाया में बैठते, तब वह धूप में खड़ा होता। सारे भिक्षु एक दिन भोजन भी लेते--दिन में एक बार। वह एक दिन उपवास रखता, एक दिन भोजन लेता। छह महीने में उसने शरीर को सुखाकर कांटा बना लिया। उसकी सुंदर देह काली पड़ गयी। उसके पैरों में घाव पड़ गये।

बुद्ध छह महीने बाद उसके पास गये और
उस भिक्षु को कहा कि श्रोण! --श्रोण उसका नाम था--एक बात मुझे पूछनी है। मैंने सुना है, जब तू राजकुमार था, तो तू वीणा बजाने में बहुत कुशल था। क्या यह सच है? उस भिक्षु ने कहा, हां। लोग कहते थे, मुझ जैसी वीणा बजाने वाला और कोई भी नहीं। तो बुद्ध ने कहा, फिर मैं एक प्रश्न पूछने आया हूं, हो सकता है तू उत्तर दे सके। मैं यह पूछता हूं कि वीणा के तार अगर बहुत ढीले हों तो संगीत पैदा हेता है या नहीं?
श्रोण हंसने लगा। उसने कहा, कैसी बात पूछते हैं! यह तो बच्चे भी जानते हैं कि वीणा के तार बहुत ढीले होंगे तो संगीत पैदा नहीं होगा, क्योंकि ढीले तारों पर टंकार पैदा नहीं हो सकती, चोट नहीं की जा सकती। ढीले तार खींचे नहीं जा सकते, उनसे ध्वनि-तरंग पैदा नहीं होती। ढीले तारों से कोई संगीत पैदा नहीं हो सकता। तो बुद्ध ने कहा, और तार अगर बहुत कसे हों?
तो श्रोण ने कहा, बहुत कसे तारों से भी संगीत पैदा नहीं होता। क्योंकि बहुत कसे तार छूते ही टूट जाते हैं।
तो बुद्ध ने कहा, संगीत कब पैदा होता है?
वह श्रोण कहने लगा, संगीत तो तब पैदा होता है, जब तार ऐसी दशा में होते हैं,

जब न तो हम कह सकते हैं कि वे बहुत कसे हैं, और न हम कह सकते हैं कि बहुत ढीले हैं। एक तारों की ऐसी अवस्था भी है, जब न तो वे ढीले होते, और न कसे होते। एक बीच का बिंदु भी है, एक मध्य बिंदु भी है। संगीत तो वहीं पैदा होता है। और कुशल संगीतज्ञ इसके पहले कि गीत उठाये, तारों को देख लेता है कि तार ढीले तो नहीं हैं, तार कसे तो नहीं हैं।
तो बुद्ध ने कहा, बस, उत्तर मुझे मिल गया। और यही मैं तुझसे कहने आया हूं। जैसे तू वीणा बजाने में कुशल था, ऐसे ही जीवन की वीणा बजाने में मैंने भी कुशलता पायी है। और जो वीणा का नियम है, वही जीवन-वीणा का नियम भी है। जीवन के तार बहुत ढीले हों तो भी संगीत पैदा नहीं होता है और बहुत कसे हों, तो भी संगीत पैदा नहीं होता है। और जो जीवन का संगीत पैदा करने चला हो, वह पहले देख लेता है कि तार बहुत कसे तो नहीं हैं, तार बहुत ढीले तो नहीं हैं।
और जीवन-वीणा कहां है?
मनुष्य के शरीर के अतिरिक्त कोई जीवन-वीणा नहीं है। और मनुष्य के शरीर में कुछ तार हैं, जो न तो बहुत कसे होने चाहिए और न बहुत ढीले होने चाहिए। उस संतुलन में, उस बेलेंस में ही मनुष्य संगीत की ओर प्रविष्ट होता है। उस संगीत को जानना ही आत्मा को जानना है।

और जब एक व्यक्ति अपने भीतर के संगीत को जान लेता है, तो वह आत्मा को जान लेता है और जब वह समस्त के भीतर छिपे संगीत को जान लेता है, तो वह परमात्मा को जान लेता है।
मनुष्य के शरीर की इस वीणा के तार कहां-कहां हैं? पहली तो बात--मस्तिष्क में बहुत से तार हैं, जो बहुत कसे हुए हैं। जो इतने कसे हुए हैं कि उनसे संगीत पैदा नहीं हो सकता। अगर उनको कोई छुयेगा, तो केवल विक्षिप्तता पैदा होती है और कुछ भी पैदा नहीं होता। और हम सारे लोग ही मस्तिष्क के तारों को बहुत कसे हुए बैठे हैं। चौबीस घंटे कसे हुए हैं, सुबह से लेकर सांझ तक। और कोई सोचता हो रात भी ढीले हो जाते हों तो गलती में है। रात भी हमारा मस्तिष्क कसा हुआ है और खिंचा हुआ है।
पहले तो हमें पता नहीं था कि आदमी के मस्तिष्क में रात क्या चलता है? अब तो मशीनें ईजाद कर ली गयी हैं! आप रात भर सोये रहिये और आपका मस्तिष्क क्या कर रहा है भीतर, यह मशीन सब खबर देती रहेगी! अमरीका में और रूस में इस समय कोई सौ प्रयोगशालायें काम कर रही हैं। आदमी नींद में क्या करता है, उसकी जांच-पड़ताल की है। कोई चालीस हजार लोगों के ऊपर प्रयोग किये गये हैं रात सोते में। और जो नतीजे मिले हैं, वे बड़े हैरानी के

हैं। वे नतीजे ये हैं कि आदमी दिन भर जो करता है, रात भर भी वही करता है। दिन भर जो करता है--अगर दुकान दिन भर चलाता है, तो रात भर भी दुकान चलाता है। मस्तिष्क अगर दिन भर चिंता करता है तो रात भर भी चिंता करता है। अगर दिन में क्रोध करता है तो रात में भी क्रोध करता है।
रात प्रतिबिंब है पूरे दिन का, प्रतिछाया है, उसका ही रिफ्लेक्शन है, उसकी ही प्रतिध्वनि है। जो दिन भर मन पर होता है, रात उसके ही प्रतिबिंब मन पर गूंजते रहते हैं। जो-जो काम अधूरा रह गया होता है, रात मन उसे पूरा करने की कोशिश करता है। अगर किसी पर क्रोध कम किया है, क्रोध अधूरा रह गया है, अटका हुआ रह गया है, तो रात मन उसे रिलीज करता है। पूरे क्रोध को करके वीणा का तार अपनी जगह बैठने की कोशिश करता है। अगर दिन में कोई आदमी उपवास किया है, तो रात भोजन कर लेता है सपने में। दिन में जो अधूरा रह गया है, वह रात पूरा होने की कोशिश करता है। तो जो हम दिन में करते हैं, वही पूरे रात मन करता है।
चौबीस घंटे मन खिंचा हुआ है। मन पर कोई विश्राम नहीं है। मन के तार कभी भी ढीले नहीं होते। मन के तार हैं बहुत खिंचे हुए--एक बात। और दूसरी बात: हृदय के तार हैं बिल्कुल ढीले। हृदय के तार

हमारे कसे हुए ही नहीं हैं। प्रेम जैसी चीज को हम जानते हैं?
हम क्रोध को जानते हैं, हम द्वेष को जानते हैं। हम ईर्ष्या को जानते हैं, हम घृणा को जानते हैं। प्रेम जैसी चीज को हम जानते हैं? शायद हम कहेंगे हम जानते हैं। कभी-कभी हम प्रेम करते हैं, शायद हम कहेंगे, कि हम घृणा भी करते हैं, हम प्रेम भी करते हैं, लेकिन आपको पता है-- ऐसा हृदय भी हो सकता है क्या, जो घृणा भी करे और प्रेम भी करे? यह वैसे ही है जैसे हम कहें, एक आदमी कभी-कभी जिंदा भी होता है और कभी-कभी मुर्दा भी होता है। यह हमारे विश्वास में नहीं आयेगी बात, क्योंकि आदमी या तो जिंदा हो सकता है या मुर्दा हो सकता है। ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो सकतीं कि एक आदमी कभी जिंदा भी हो और कभी मुर्दा भी। यह असंभव है, यह संभव नहीं है। या तो हृदय घृणा को ही जानता है या प्रेम को ही जानता है। इन दोनों के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता है। क्योंकि जिस हृदय में प्रेम होता है, उस हृदय में घृणा असंभव हो जाती है। राबिया नाम की एक फकीर औरत थी। राबिया के पास एक दूसरा फकीर आकर ठहरा। राबिया जिस धर्मग्रंथ को पढ़ती थी, उसमें से उसने एक पंक्ति को काट दिया था। एक लकीर उसने काट दी थी। धर्मग्रंथों में कोई

पंक्तियां काटता नहीं है, क्योंकि धर्मग्रंथों में कोई सुधार क्या करेगा? वह दूसरे फकीर ने किताब पढ़ी और उसने कहा कि राबिया, किसी ने तुम्हारे धर्मग्रंथ को नष्ट कर दिया, यह तो अपवित्र हो गया, इसमें एक लाइन कटी हुई है, यह किसने काटी है?
राबिया ने कहा, यह मैंने ही काटी है। वह फकीर बहुत हैरान हो गया। उसने कहा, तूने यह लाइन क्यों काटी? उस पंक्ति में लिखा हुआ था शैतान से घृणा करो। राबिया ने कहा, मैं मुश्किल में पड़
गयी हूं। जिस दिन से मेरे मन में परमात्मा के प्रति प्रेम जगा है, उस दिन से मेरे भीतर घृणा विलीन हो गयी है। मैं घृणा चाहूं भी तो नहीं कर सकती हूं। और अगर शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाये तो मैं प्रेम ही कर सकती हूं। मेरे पास कोई उपाय न रहा, क्योंकि घृणा करने के पहले मेरे पास घृणा होनी चाहिए। मैं आपको घृणा करूं, इसके पहले मेरे हृदय में घृणा होनी चाहिए। नहीं तो मैं करूंगी कहां से और कैसे?
और एक ही हृदय में घृणा और प्रेम का सह-अस्तित्व, को-एग्जिस्टेंस संभव नहीं है। ये दोनों बातें उतनी ही विरोधी हैं, जितनी जीवन और मृत्यु। ये दोनों बातें एक साथ, एक ही हृदय में नहीं हो सकती

हैं। तो फिर हम जिसको प्रेम कहते हैं, वह क्या है?
थोड़ी कम जो घृणा है, उसे हम प्रेम कहते हैं। थोड़ी ज्यादा जो घृणा है, उसे हम घृणा कहते हैं। वह घृणा की ही मात्राएं हैं, वह घृणा की ही ग्रेडेशन्स हैं, वह घृणा के ही थोड़े और ज्यादा अनुपात हैं। प्रेम वहां जरा भी नहीं है। अनुपात से भूल पैदा होती है। अनुपात से इतनी भूल पैदा होती है--आप समझते होंगे कि ठंड और गर्मी दो अलग चीजें हैं। दोनों अलग चीजें नहीं हैं। गर्मी और ठंड एक ही चीज के अनुपात हैं। वही चीज, अनुपात गर्मी का कम हो जाये, तो ठंडी मालूम होने लगती है। वही चीज, अनुपात गर्मी का बढ़ जाये, तो गर्म मालूम होने लगती है। ठंड गर्मी का ही एक रूप है। ये ठीक विरोधी मालूम होने लगते हैं कि दोनों चीजें--दोनों अलग-अलग हैं, दुश्मन हैं, एक-दूसरे के। दुश्मन नहीं हैं, एक ही चीज के घने और गैर घने रूप हैं। ऐसे ही घृणा को हम जानते हैं।
घृणा के ही कम घने रूपों को हम प्रेम समझ लेते हैं और घृणा के ही तीव्र घने रूपों को हम घृणा समझ लेते हैं। लेकिन प्रेम घृणा का कोई रूप ही नहीं है।
प्रेम घृणा से बिल्कुल ही अलग बात है। प्रेम का घृणा से कोई संबंध नहीं है।
हमारा हृदय और उसके तार बिल्कुल ढीले

हैं। उन ढीले तारों से कोई प्रेम का संगीत पैदा नहीं होता; न कोई आनंद का संगीत पैदा होता है।
जीवन में आपने आनंद को जाना है कभी? कह सकते हैं किसी क्षण को कि यह आनंद का था और मैंने आनंद पहचाना और जाना? कठिन है ईमानदारी से यह कहना कि मैंने कभी आनंद जाना।
कभी प्रेम जाना है, यह कहना भी कठिन है। कभी शांति जानी है, यह कहना भी कठिन है।
हम क्या जानते हैं? हम अशांति जानते हैं। हां, अशांति कभी-कभी कम होती है मात्रा में, उसी को हम शांति समझ लेते हैं। असल में हम इतने अशांत रहते हैं कि अगर अशांति थोड़ी कम हो जाती है तो शांति का भ्रम देती है। एक आदमी बीमार है, थोड़ी बीमारी कम होती है, वह कहता है, मैं स्वस्थ हुआ, क्योंकि बीमारी इतनी घिरी है उसके आसपास कि थोड़ी बीमारी कम हो तो उसे लगता है मैं स्वस्थ हूं। लेकिन स्वास्थ्य और बीमारी का क्या संबंध है? स्वास्थ्य तो बात ही अलग है! स्वास्थ्य तो बात ही अलग है।
हममें से बहुत कम लोग ही स्वास्थ्य को जान पाते हैं, ज्यादा तो बीमारी को ही जानते हैं, कम बीमारी को जानते हैं, लेकिन स्वास्थ्य को नहीं जान पाते। ज्यादा अशांति को जानते हैं, कम अशांति

को जानते हैं, लेकिन शांति को नहीं जान पाते। ज्यादा घृणा को जानते हैं, कम घृणा को जानते हैं। ज्यादा क्रोध को जानते हैं, कम क्रोध को जानते हैं।
आप शायद सोचते होंगे कि कभी-कभी क्रोध आता है। झूठी है यह बात। आप चौबीस घंटे क्रोध में होते हैं। कभी ज्यादा होते है, कभी कम होते हैं। चौबीस घंटे आप क्रोध में हैं। जरा-सा मौका मिल जाये और क्रोध प्रकट होना शुरू हो जायेगा। मौके की तलाश है, क्रोध भीतर तैयार है, सिर्फ अपरचुनिटी की खोज है कि कोई बाहर से मौका दे दे। क्योंकि बिना मौके के अगर आप क्रोध करेंगे तो लोग आपको पागल समझेंगे। अगर आपको मौके न दिये जायें तो आप बिना मौके के भी क्रोध करना शुरू कर देंगे, यह आपको शायद पता नहीं होगा। अगर एक आदमी को एक कमरे में बंद कर दिया जाये, सारी सुविधाएं दे दी जायें और उससे पूछा जाये कि वह रोज इस बात को नोट करता रहे कि क्या उसके चित्त में बिना किसी कारण के भी फर्क पड़ते हैं? और वह नोट करेगा, उस बंद कमरे में कभी उसे अच्छा लगने लगेगा, कभी उसे बुरा लगने लगेगा। कभी वह उदास हो जायेगा, कभी वह खुश हो जायेगा। कभी वह क्रोधित अनुभव करेगा, कभी क्रोधित नहीं अनुभव करेगा। वहां कोई मौके नहीं हैं, वहां सब स्थिति समान चल रही है। लेकिन उसे क्या हो रहा

है। और इसीलिए एकांत से आदमी डरता है, क्योंकि एकांत में बाहर कोई बहाना नहीं होता और सब चीजें भीतर ही मान लेनी पड़ेंगी। कोई भी आदमी एकांत में रख दिया जाये तो छह महीने से ज्यादा स्वस्थ नहीं रह सकता है, पागल हो जायेगा।
एक सम्राट ने इजिप्त में यह प्रयोग किया था। किसी फकीर ने उसको यह कहा भी। उस सम्राट ने कहा, मैं नहीं मानता हूं। उस फकीर ने कहा कि तुम्हारे नगर में कोई सबसे स्वस्थ आदमी हो, तो उसे छह महीने के लिए बंद करो। नगर में खोजा गया। एक स्वस्थ युवक जो सब तरह से प्रसन्न था, नयी शादी हुई थी, एक बच्चा था, ठीक कमाता था, बहुत मजे में था। उसे पकड़वा लिया गया। और सम्राट ने उससे कहा, तुम्हें हम कोई कष्ट नहीं देंगे। हम सिर्फ एक प्रयोग करते हैं, और तुम्हारे घर के लोगों की ठीक व्यवस्था रहेगी, भोजन की, कपड़ों की सब इंतजाम रहेगा। तुम से अच्छा इंतजाम रहेगा और तुम्हारे लिए भी सब व्यवस्था रहेगी। सिर्फ छह महीने तुम्हें अकेले रहना पड़ेगा।
एक बड़े भवन में उसको बंद कर दिया।
सारी सुविधा जुटा दी गयी, लेकिन एकांत इतना था कि जो आदमी भी पहरे पर खड़ा था, वह भी उसकी भाषा नहीं समझता था--ताकि बोल न सके वह आदमी। दो-चार दिन में ही वह आदमी घबराने लगा। सब सुविधा थी। कोई

कठिनाई न थी। ठीक वक्त पर भोजन मिलता था। ठीक वक्त पर सोने को मिलता था। शाही महल था। सब इंतजाम था। कोई कठिनाई नहीं थी, वह जो करना चाहे कर सकता था बैठकर वहां। सिर्फ इतना था कि किसी से बात नहीं कर सकता था, किसी से मिल नहीं सकता था। दो-चार दिन में ही बेचैनी शुरू हो गयी। आठ दिन बाद वह चिल्लाने लगा कि मुझे बाहर निकालो! मैं यहां नहीं रहना चाहता हूं!
कौन-सी तकलीफ आ गयी थी? भीतर से तकलीफें आनी शुरू हो गयी थीं। जिनको वह कल तक समझता था, बाहर से आती हैं, वे अकेले में पता चलीं कि भीतर से आती हैं। छह महीने होते-होते वह आदमी पागल हो गया। छह महीने बाद जब उसे निकाला गया, वह पूरा पागल हो चुका था। वह अपने से ही बातें करने लगा था। अपने को ही गाली देने लगा था। अपने पर ही क्रोध करने लगा था। अपने से ही प्रेम करने लगा था। अब कोई दूसरा तो मौजूद नहीं था। छह महीने बाद वह पागल की तरह बाहर निकाला गया। उसके ठीक हो जाने में छह साल लगे। आपमें से कोई भी पागल हो जायेगा। दूसरे लोग मौका दे देते हैं, आप पागल नहीं हो पाते। आपको बहाना मिल जाता है, इस आदमी ने गाली दी है, इसलिए मैं क्रोध से भर गया हूं। कोई आदमी किसी के गाली देने से क्रोध से नहीं भरता है। भीतर

क्रोध मौजूद है। गाली केवल मौका बनती है, उसके निकल आने का।
एक कुएं में पानी भरा हुआ है। हम बाल्टी डालते हैं, कुएं से पानी निकल आता है। अगर कुएं में पानी न हो, तो हम बाल्टी कितनी ही डालें, वहां से कुछ निकलने वाला नहीं है। बाल्टी पानी नहीं निकाल सकती। बाल्टी की क्या ताकत है पानी निकालने की? कुएं में पानी होना चाहिए। कुएं में पानी हो तो बाल्टी पानी निकाल सकती है। कुएं में पानी नहीं है, तो बाल्टी पानी नहीं निकाल सकती।
आपके भीतर क्रोध नहीं है, आपके भीतर घृणा नहीं है, दुनिया की कोई ताकत आपके भीतर से क्रोध और घृणा बाहर नहीं निकाल सकती है। वह जो बीच के क्षण हैं, जब कोई कुएं में बाल्टी नहीं डालता है, तब यह भ्रम पैदा हो सकता है कि कुएं में पानी नहीं है। जब कोई डालता है तब तो पानी निकलता है, लेकिन जब कोई बाल्टी नहीं डालता है, कुआं खाली पड़ा है तो शायद हम सोचते हों कि कुएं में अब पानी नहीं है, तो हम गलती में हैं। ठीक ऐसे ही जब कोई हमें मौका नहीं देता है, तो हमारे भीतर क्रोध नहीं निकलता है, घृणा नहीं निकलती है, द्वेष नहीं निकलता तो इस ख्याल में न रहें कि आपके कुएं में पानी नहीं है। कुएं में पानी मौजूद है और

प्रतीक्षा कर रहा है कि कोई बाल्टी लेकर आयेगा और मैं निकलूंगा। लेकिन हमारे भीतर यह जो खाली मौके हैं, इन्हीं को हम समझ लेते हैं प्रेम के, शांति के क्षण। यह झूठी बात है।
गांधी ने एक दफा कहा कि दुनिया में अब तक युद्ध होता है तो लोग कहते हैं, शांति हो जाती है। लेकिन गांधी ने कहा, मेरी समझ में ऐसा नहीं आता। या तो युद्ध होता है या युद्ध की तैयारी चलती है, शांति तो कभी नहीं आती। शांति धोखा है। जैसे अभी यहां दुनिया में कोई युद्ध नहीं हो रहा है। दूसरा महायुद्ध बंद हो गया, अब तीसरे महायुद्ध की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं। तो हम कहेंगे, ये पीसफुल डे.ज, ये शांति के दिन हैं। यह झूठी बात है। ये शांति के दिन नहीं हैं। ये तीसरे महायुद्ध की तैयारी के दिन हैं। सारी दुनिया में तैयारी चल रही है युद्ध की। युद्ध होता है या युद्ध की तैयारी होती है। अभी तक दुनिया ने शांति के कोई दिन नहीं देखे।
आदमी के भीतर भी क्रोध होता है या क्रोध की फिर तैयारियां होती हैं-- अक्रोध की कोई अवस्था आदमी नहीं जानता। अशांति होती है, प्रकट होती है या तैयार होती है। भीतर जो तैयारी के क्षण हैं, उनको हम समझ लेते हैं शांति के क्षण, तो हम भूल में पड़ जाते हैं।

हृदय के तार बिल्कुल ढीले हैं। उनसे क्रोध ही पैदा होता है। उनसे विकृति ही पैदा होती है। विसंगति ही पैदा होती है। लेकिन उनसे कोई संगीत पैदा नहीं हो सकता। मस्तिष्क के तार अगर बहुत खिंचे हुए हों, उनसे पागलपन पैदा होता है और हृदय के तार बिल्कुल ढीले हों, उनसे क्रोध, वैमनस्य, द्वेष, घृणा ये सब पैदा होते हैं। हृदय के तार थोड़े कसे हुए होना चाहिए, ताकि उनसे प्रेम पैदा हो सके और मस्तिष्क के तार थोड़े शिथिल होने चाहिए ताकि उनसे विवेक पैदा हो सके, विक्षिप्तता नहीं। और अगर ये दोनों तार ठीक संतुलन में आ जायें तो जीवन के संगीत की संभावना पैदा हो सकती है।
तो हम दो बातों पर विचार करेंगे। एक तो कि मस्तिष्क के तार कैसे शिथिल किये जा सकें और हृदय के तार कैसे तीव्र किये जा सकें। हृदय के तारों पर कैसे कसाव लाया जा सके और मस्तिष्क के तारों को कैसे शिथिल किया जा सके, कैसे रिलेक्स किया जा सके, इन दोनों बातों पर विचार करेंगे। और इन्हीं दोनों की जो साधना है, उसको ही मैं ध्यान कहता हूं। उन दोनों की तरफ जो साधना है उसको ही मैं मेडिटेशन कहता हूं, उसे ही मैं ध्यान कहता हूं।

और ये दोनों बातें अगर पैदा हो जायें तो फिर तीसरी बात पैदा हो सकती है। वह जो हमारा असली केंद्र हैं, जीवन का-- नाभि, उस तक भी उतरना संभव है। इनमें संगीत पैदा हो जाये दोनों केंद्रों पर तो भीतर गति हो सकती है। वह संगीत ही नाव बन जाता है, हमें और गहरे ले जाने का। जितना संगीतपूर्ण होता है व्यक्तित्व, जितना भीतर संगीत पैदा होता है, उतने ही हम गहरे उतर सकते हैं। और जितना भीतर विसंगीत होता है, उतना ही हम उथले रह जाते हैं, हम बाहर रह जाते हैं। आने वाले दो दिनों में इस बाबत विचार करेंगे और न केवल विचार करेंगे बल्कि प्रयोग करेंगे कि कैसे हम इन दोनों की वीणा को--यह जीवन-वीणा के इन तारों को हम कैसे संतुलन में ला सकते हैं।
अभी जो तीन बातें मैंने कहीं, वे ख्याल में रख लेने की हैं, ताकि आगे जो बातें मैं कहूंगा, उनसे आप उनको जोड़ सकें। पहली बातः मनुष्य की आत्मा न तो मस्तिष्क से जुड़ी है और न हृदय से। मनुष्य की आत्मा जुड़ी है नाभि से। मनुष्य के शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिंदु नाभि है। वही केंद्र है, वह शरीर के ही मध्य में नहीं है नाभि, जीवन के भी मध्य में वही है। बच्चा पैदा भी उससे ही होता है और जीवन

का अंत भी नाभि से ही होता है। और जो लोग जीवन के सत्य में प्रवेश करते हैं, उनके लिए भी नाभि ही द्वार बनती है।
और आज भी आपको ख्याल में नहीं होगा कि दिन भर आप श्वास फेफड़ों से लेते हैं, लेकिन रात आपकी श्वास नाभि से चलनी शुरू हो जाती है। दिन भर आपका सीना उठता-फैलता है, लेकिन रात जब आप सो जाते हैं, आपका पेट उठने-गिरने लगता है। छोटे बच्चे को आपने श्वास लेते देखा होगा, तो छोटे बच्चों का फेफड़ा ऊपर नहीं उठता है। पेट ऊपर उठता हुआ दिखायी पड़ेगा। छोटे बच्चे अभी नाभि के ज्यादा करीब हैं। जैसे-जैसे आदमी बड़ा होने लगता है, वैसे-वैसे उसकी श्वास ऊपर से ही वापिस लौटने लगती है और नाभि तक उसके कंपन बंद हो जाते हैं।
अगर आप रास्ते पर जा रहे हैं, साइकिल चला रहे हैं, या कार चला रहे हैं और एकदम से एक्सीडैंट की हालत आ जाये तो आप हैरान होंगे, आपको पहली चोट नाभि पर लगेगी--न मस्तिष्क पर लगेगी, न हृदय पर लगेगी। अगर एक आदमी एकदम से आपके ऊपर छुरा लेकर आ जाये, तो आपको पहला जो कंपन होगा, वह नाभि पर होगा और कहीं भी नहीं होगा। अगर अभी भी आप घबरा जायें एकदम से, तो पहला कंपन नाभि पर होगा। जीवन पर जब भी संकट पैदा होता है, तो नाभि पर पहले कंपन होते हैं--क्योंकि जीवन का

केंद्र नाभि है। और कहीं कंपन नहीं होगा। जीवन के स्रोत वहां से जुड़े हैं और चूंकि नाभि पर हमारा ध्यान बिल्कुल ही नहीं रहा है, इसलिए आदमी बिल्कुल ही अधर में लटका रह गया है। नाभि का केंद्र एकदम अस्वस्थ है, उस पर ध्यान ही नहीं है। उसके विकास की भी कोई व्यवस्था नहीं है।
आप हैरान होंगे यह बात जानकर कि नाभि का केंद्र विकसित होने के लिए कुछ व्यवस्था होनी चाहिए। जैसे हमने मस्तिष्क को विकसित करने के लिए स्कूल और कालेज बना छोड़े हैं, वैसा नाभि के केंद्र को विकसित करने के लिए कुछ व्यवस्था अत्यंत जरूरी है। और कुछ बातें हैं जिनसे नाभि का केंद्र विकसित होता है। कुछ बातें हैं, जिनसे विकसित नहीं होता है। जैसे मैंने कहा कि अगर भय की स्थिति खड़ी हो जाये, तो सबसे पहले नाभि कंप जाती है। इसलिए जो आदमी जितना अभय की साधना करेगा, उसकी नाभि उतनी ही स्वस्थ होती चली जायेगी।
जो आदमी जितना करेज, जितने साहस की साधना करेगा, उसकी नाभि, उसका केंद्र उतना ही विकसित होगा। जितना अभय बढ़ेगा, उतनी नाभि मजबूत और पुष्ट होगी और जीवन से संबंध गहरे होंगे। इसलिए दुनिया के सारे महत्वपूर्ण साधकों ने अभय को, फियरलेसनेस को साधक का अनिवार्य गुण

माना है। फियरलेसनेस का और कोई मूल्य नहीं है--अभय का। अभय का मूल्य है। वह नाभि के केंद्र को पूरा जीवंत कर देती है। उसके सारे विकास को पूरा खुलकर प्रकट कर देती है।
वह हम धीरे-धीरे बात करेंगे।
नाभि के केंद्र पर सर्वाधिक ध्यान देना आवश्यक है। मस्तिष्क के केंद्र से ध्यान को धीरे-धीरे हटाना जरूरी है। हृदय के केंद्र से भी धीरे-धीरे ध्यान को हटाना जरूरी है, ताकि वह नीचे और डीपर और डीपर, और गहरे से गहरे में प्रवेश हो जाये। उसके लिए दो प्रयोग सुबह और रात्रि हम ध्यान के करेंगे। सुबह का प्रयोग मैं आपको समझाता हूं। फिर पंद्रह मिनट के लिए हम उस प्रयोग के लिए बैठेंगे और उस प्रयोग को करेंगे। निश्चित ही अगर मस्तिष्क से चेतना को नीचे ले जाना है, तो मस्तिष्क को बिल्कुल शिथिल छोड़ देना जरूरी है, रिलेक्स छोड़ देना जरूरी है। हम मस्तिष्क को खींचे रहते हैं, पूरे वक्त। ख्याल ही भूल गया है कि हम खींचे हुए चले जा रहे हैं। पूरा टैंस किये हुए है माइंड को, पूरा खिंचे हुए हैं। यह ख्याल में नहीं है। पहले उसे शिथिल छोड़ देना जरूरी है।
अभी जब हम ध्यान के लिए बैठेंगे, तो उसमें तीन बातें हैं।

पहली बात--पूरे मस्तिष्क को बिल्कुल ऐसे शिथिल छोड़ देना है, इतना शांत और ढीला छोड़ देना है, जैसे आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। लेकिन आपको कैसे समझ में आयेगा कि आपने शिथिल छोड़ दिया? यह कैसे ख्याल में आयेगा कि मैंने शिथिल छोड़ दिया? अगर मैं इस मुट्ठी को जोर से खींचूं, तो मुझे पता चलता है कि सारी नसें खिंची हुई हैं। फिर मैं इसे ढीला छोड़ता हूं, तो मुझे पता चलेगा कि सारी नसें ढीली छूट गयी हैं।
चूंकि हमारा मस्तिष्क पूरे वक्त ही खींचा हुआ है, इसलिए हमें पता ही नहीं चलता है कि खींचा हुआ होना क्या है और ढीला हो जाना क्या है। तो एक काम करेंगे--पहले मस्तिष्क को जितना खींच सकेंगे, खींच लेंगे। जितना मस्तिष्क के सारे स्नायुओं को खींच सकें, पूरा खींच लेंगे। जितना टैंस कर सकें, कर लेंगे। फिर एकदम से ढीला छोड़ेंगे। तो आपको पता चलेगा कि खिंचा हुआ होना और ढीला होने में, दोनों में क्या फर्क है!
अभी जब हम ध्यान के लिए बैठेंगे, तो एक मिनट के लिए जितना मस्तिष्क को आप खींच सकें, जितना तनाव दे सकें, उतना खींच लेंगे और फिर मैं कहूंगा कि अब ढीला छोड़ दें, तो आप बिल्कुल ढीला छोड़ देंगे। और वह आपको पता चल जायेगा कि क्रमशः खिंचा होना क्या है और ढीला हो जाना क्या है।

यह आपको फील होना चाहिए--वह आपको अनुभव में आ जाना चाहिए तो फिर धीरे-धीरे आप ढीला और ढीला... छोड़ने में समर्थ हो जायेंगे। तो पहला काम है, मस्तिष्क को बिल्कुल ढीला छोड़ देना।
मस्तिष्क के साथ ही पूरे शरीर को भी ढीला छोड़ देना है। इतने आराम से बैठ जाना है, जिससे शरीर पर कहीं भी कोई जोर न पड़े। कहीं कोई भार न पड़े। फिर आप क्या करेंगे? जैसे ही आप सब ढीला छोड़ देंगे, पक्षी बोल रहे हैं। यह कहीं पनचक्की की आवाज हो रही है, कहीं कोई कौवा बोलेगा, कहीं कोई और आवाज होगी, यह सब आवाजें आपको सुनाई पड़नी शुरू हो जायेंगी। क्योंकि मस्तिष्क जितना शिथिल होगा, उतना ही सेंसिटिव हो जायेगा, उतना संवेदनशील हो जायेगा। एक-एक चीज सुनाई पड़ने लगेगी। आपको अपने हृदय की धड़कन भी सुनाई पड़ने लगेगी। श्वास का आना-जाना भी सुनाई पड़ने लगेगा, अनुभव होने लगेगा।
फिर चुपचाप बैठकर, यह सब चारों तरफ हो रहा है, उसे चुपचाप अनुभव करना है, और कुछ भी नहीं करना है। आवाज सुनाई पड़ रही है उसे चुपचाप सुनना है। पक्षी बोलेगा उसे चुपचाप सुनना है। भीतर श्वास चल रही है उसे चुपचाप देखते रहना है और कुछ भी नहीं करना है। आपको अपनी तरफ से, कुछ भी नहीं करना है। क्योंकि आपने अपनी

तरफ से कुछ भी किया कि मस्तिष्क खिंचना शुरू हो जायेगा।
आपको तो एक रिलेक्स्ड अवेअरनेस में, एक शिथिल जागरूकता में बैठे रहना है। सब हो रहा है, आप चुपचाप सुन रहे हैं। और आप हैरान हो जायेंगे, जैसे ही आप शांति से सुनेंगे, वैसे ही और गहरी शांति भीतर उतरनी शुरू हो जायेगी। जितने आप गहरे से सुनेंगे, उतनी और गहराई भीतर बढ़ती चली जायेगी। दस मिनट में ही आप पायेंगे कि आप एक शांति के अदभुत केंद्र बन गये हैं। सारी चीज शांत हो गयी है।
यह हम, सुबह का पहला प्रयोग करेंगे। पहली बातः मस्तिष्क को खींचेंगे आप पूरी तरह से। जब मैं कहूंगा, पूरे मस्तिष्क को खींच लें, तो आंख बंद करके पूरी तरह मस्तिष्क को जितना आप खींच सकते हैं, जितना टैंस कर सकते हैं, उतना टैंस कर लेंगे। फिर मैं कहूंगा छोड़ दें ढीला, तो एकदम से ढीला छोड़ देंगे, फिर ढीला छोड़ते चले जायेंगे।... उसी तरह शरीर को ढीला छोड़ देंगे। आंख बंद रहेगी। चुपचाप बैठे हुए जो भी आवाजें सुनाई पड़ रही हैं, उन्हें चुपचाप सुनते रहेंगे। दस मिनिट केवल चुपचाप सुनते रहना है, और कुछ भी नहीं करना है। और इन्हीं दस मिनट में पहली दफा आपको लगना शुरू होगा कि भीतर कोई शांत-धारा बहनी शुरू हो जाती है। और प्राण नीचे की तरफ

उतरने शुरू हो जायेंगे। मस्तिष्क से वे नीचे की तरफ डूबने शुरू हो जायेंगे।
... क्योंकि थोड़ी दूर-दूर बैठना
पड़ेगा। कोई किसी को छुयेगा नहीं। कुछ लोग पीछे लान पर आ जायें। जो लोग पहले ध्यान के शिविर में आए हैं, वे तो पीछे इधर लान पर आ जायें, ताकि जो लोग नये हैं, वे सुन सकें। उनको मुझे कुछ कहना और पूछना भी है तो सुनायी पड़ जाये। जो लोग भी परिचित हैं, वे पीछे आ जायें। जो भी परिचित हैं वे पीछे चले जायें, ताकि नये लोग यहां बैठ जायें। हां, पुराने मित्र तो पीछे चले जायें और नये मित्र थोड़े आगे आ जायें। कुछ मित्र यहां ऊपर आ जायें, कुछ यहां पीछे आ जायें, ताकि सुनाई आपको पड़ सके। कोई किसी को छूता हुआ नहीं बैठेगा। कोई किसी को छुए नहीं-- हुंम्म्! फिर तुम लोग तो छू रहे हो एक-दूसरे को, थोड़ा-थोड़ा हटो। थोड़ा आगे हट आओ! रेत पर बैठ जाओ!
सबसे पहले तो आंख धीरे-से बंद कर लें। बहुत धीरे-से आंख बंद कर लें। आंख पर भी जोर नहीं पड़ना चाहिए कि आप उसे खींचकर बंद कर लें। पलक को धीरे-से छोड़ दें। पलक धीरे-से छोड़ दें, आंख पर भी कोई भार न हो। आंख बंद कर लें। हां, आंख बंद कर लो, धीरे-से आंख बंद कर लो!
अब सारे शरीर को ढीला छोड़ दें। सिर्फ मस्तिष्क को खींचो। जितना आप मस्तिष्क

को तनाव दे सकें, जितना तनाव, जितना खींचना कर सकें, पूरे मस्तिष्क को खींच लें। अपने भीतर पूरे मस्तिष्क को जोर-से टैंस कर लें। सारा मस्तिष्क खिंच जाये जितनी आपकी ताकत हो। खींच लें पूरी ताकत से, सारे शरीर को ढीला छोड़ दें, सारी ताकत मस्तिष्क पर लगा दें कि मस्तिष्क बिल्कुल खिंच गया। जैसे मछली बंद होती है और सारे स्नायु खिंच जायें। एक मिनट तक पूरी तरह खींचे रहें। इसे ढीला न छोड़ें, पूरा खींचें। और जितना खींच सकें खींच लें। मस्तिष्क को भीतर पूरी तरह खींच लें। खिंचे रहें। खींच लें पूरी ताकत से, पूरे प्राणों से। जितनी आपकी ताकत हो, उसको पूरा तनाव दे दें, ताकि जब वह शिथिल होए तो पूरा शिथिल हो सके। खींच लें, खींच लें, खींचें... !
अब एकदम से ढीला छोड़ दें। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। मस्तिष्क को बिल्कुल ढीला छोड़ दें! सारा तनाव छोड़ दें। एक शिथिलता भीतर आनी शुरू हो जायेगी। मालूम पड़ेगा भीतर कोई चीज छूट गई, कोई तनाव विलीन हो गया, कोई चीज शांत हो गई। बिल्कुल ही ढीला छोड़ दें, बस ढीला छोड़ दें... ! और चारों तरफ जो भी आवाज है-- हवाएं पत्तों से आयेंगी, कोई पक्षी बोलेगा--चुपचाप मौन बैठकर सारी आवाजों को सुनते रहें।... सिर्फ सुनते रहें!

बाहर की सारी आवाजों को सुनते रहें। सुनते ही सुनते मन और शांत हो जाएगा, शांत होता जाएगा। सुनें... चुपचाप सुनते रहें, बिल्कुल रिलेक्स्ड, बिल्कुल शिथिल। सुनते रहें। दस मिनट के लिए चुपचाप सुनते रह जायें।... सुनते रहें, सुनते-सुनते ही मन शांत होता जायेगा।... चुपचाप सुनते रहें, सुनते ही सुनते मन शांत होता जायेगा। भीतर एक शांति अपने आप उतरनी शुरू हो जायेगी। आप सिर्फ सुनें... सुनते रहें, मन शांत होता चला जा रहा है। मन एकदम शांत होता जा रहा है। मन शांत हो रहा है। मौन सुनते जायें, मन शांत हो रहा है... !

अंतर्यात्रा-सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन
प्रवचन-2
मस्तिष्क से हृदय, हृदय से नाभि की ओर

मेरे प्रिय आत्मन्!
शरीर का वास्तविक केंद्र क्या है?
-- इस संबंध में थोड़ी-सी बात।
न तो मस्तिष्क और न हृदय, बल्कि नाभि मनुष्य के जीवन का सर्वाधिक केंद्रीय और मूलभूत आधार है।
इस संबंध में कुछ और प्रश्न पूछे गए हैं, उनके संबंध में मैं थोड़ी बात करूंगा।

मस्तिष्क के आधार पर निर्मित जो मनुष्य है, उसकी जीवन-दिशा और धारा गलत चली गयी है। पिछले पांच हजार वर्षों में हमने केवल मस्तिष्क को ही, बुद्धि को ही दीक्षित और शिक्षित किया है। परिणाम बहुत घातक उपलब्ध हुए हैं। परिणाम जो उपलब्ध हुए हैं कि करीब-करीब सारे मनुष्य ही विक्षिप्तता के किनारे खड़े हो गये हैं। थोड़ा-सा धक्का लग जाये और कोई भी आदमी पागल हो सकता है। मस्तिष्क बिल्कुल टूटने की सीमा पर ही खड़ा हुआ है। जरा-सा धक्का और मस्तिष्क जवाब दे देता है।
और यह भी आश्चर्य की बात है कि पिछली आधी सदी में, पचास वर्षों में, दुनिया के श्रेष्ठतम विचारक करीब-करीब सभी पागल होते देखे गये हैं। पश्चिम में तो पिछले पचास वर्षों में एक भी बड़ा विचारक नहीं था, जिसने मानसिक रूप से विक्षिप्तता को अनुभव न किया हो। बड़े कवि, बड़े चित्रकार, बड़े विचारक, बड़े दार्शनिक, बड़े वैज्ञानिक, अनिवार्य-रूपेण मन की विकृतियों से पीड़ित होते दिखाई पड़ते हैं। और धीरे-धीरे जैसे मनुष्य की जाति अधिक अंशों में शिक्षित होती जा रही है, वैसे-वैसे यह पागलपन के प्रभाव सामान्य-जन तक भी पहुंच रहे हैं।

एक नया मनुष्य पैदा करना हो, तो मनुष्य के जीवन का केंद्र बदल देना अत्यंत आवश्यक है। और वह केंद्र मस्तिष्क की बजाय नाभि के निकट होगा, उतना ही जीवन-धारा के करीब पहुंच जायेगा।
यह मैं क्यों कहता हूं? इस संबंध में दो-चार बातें और समझ लेनी जरूरी हैं। मां के पेट में जो बच्चा निर्मित होता है, जो भ्रूण निर्मित होता है, वह नाभि से ही मां से संयुक्त होता है। मां की जीवन-धारा नाभि के द्वारा ही उस बच्चे में प्रवाहित होती है। मां की जीवन-धारा भी एक अत्यंत अज्ञात, एक अत्यंत अनजान विद्युत की धारा है, जो उस बच्चे की नाभि से उसके पूरे व्यक्तित्व को पोषित करती है।
फिर बच्चा मां से अलग होता है। उसका जन्म होता है। जन्म होते ही उसकी नाभि काट देनी पड़ती है। मां से पृथक होने की शुरुआत हो जाती है। मां से पृथक होना अत्यंत जरूरी है, अन्यथा बच्चे का कोई अपना जीवन नहीं हो सकता। जिस मां के शरीर के साथ एक होकर बच्चा बड़ा होता है, उसी मां से एक सीमा पर उसे अलग हो जाना पड़ता है। और यह अलग हो जाने की घटना उसकी नाभि से जो संबंध था मां का, उसके विच्छेद से होती है। यह संबंध तोड़ दिया जाता है। जो जीवन-धारा उसे नाभि से

मिलती है, वह एकदम बंद हो जाती है। उसके सारे प्राण तड़फड़ा उठते हैं। उसके सारे प्राण उस धारा की मांग करने लगते हैं, जो उसे कल तक मिली थी। लेकिन आज अचानक सारी धारा टूट गयी।
बच्चा जो रोना शुरू करता है, वह जो पीड़ा अनुभव करता है जन्म के बाद, वह पीड़ा भूख की पीड़ा नहीं है। वह पीड़ा जीवन-धारा के टूट जाने और विच्छिन्न हो जाने की पीड़ा है। सारी जीवन-धारा से उसका संबंध टूट गया है, जिससे कल तक उसने जीवन पाया था--वह सब टूट गया है। वह बच्चा तड़फड़ाता है और जो बच्चा नहीं रोता, तो चिकित्सक या जो लोग जानते हैं, वे कहेंगे कि कुछ बात गड़बड़ हो गयी है। वह बच्चा अगर नहीं रो रहा है, तो उसका मतलब यह है कि वह बच्चा जी नहीं सकेगा। जीवन-धारा से विच्छिन्न हो जाने का उसे कोई पता नहीं चला है। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि उसके भीतर मृत्यु करीब-करीब निकट है। वह बच्चा जी नहीं सकेगा। इसलिए बच्चे को रुलाने की पूरी कोशिश की जाती है। उसका रोना बहुत जरूरी है, क्योंकि जीवन-धारा से टूटे हुए संबंध का उसे पता चलना चाहिए, अगर वह जीवित है। और अगर पता नहीं चलता है, तो यह बड़ी खतरनाक बात है।
और वह बच्चा नये रूप में अपनी जीवन-धारा को फिर से जोड़ने की कोशिश करता है।

मां के दूध के साथ ही उसकी जीवन-धारा फिर से संयुक्त होती है। इसलिए बच्चे का दूसरा संबंध हृदय से होता है। मां के हृदय के साथ उसके अपने हृदय का केंद्र भी धीरे-धीरे विकसित होता है और नाभि का केंद्र भूल जाता है। नाभि का केंद्र भूल जाना जरूरी है, क्योंकि वह टूट गया है, उससे संबंध बंद हो गये और जो विद्युत-धारा नाभि से मिलती थी, वह बच्चा होंठों से लेना शुरू कर देता है। वह मां से फिर वापस जुड़ जाता है। एक दूसरा सर्किट, एक दूसरा विद्युत-वृत्त खड़ा हो जाता है, वह उससे संयुक्त हो जाता है।
यह जानकर आपको हैरानी होगी कि अगर बच्चे को मां के दूध पर जीवन न मिले, पालन न मिले, तो बच्चे की जीवन-धारा हमेशा के लिए क्षीण रह जाती है। उसे दूध पिलाया जा सकता है और तरह से भी, लेकिन अगर मां के हृदय का उसे निरंतर स्पर्श न मिले, तो उसका जीवन हमेशा के लिए कुंठित हो जाता है और हमेशा के लिए उसके जीवन की संभावना क्षीण हो जाती है। जो बच्चे मां के दूध पर नहीं पाले जाते, वे बच्चे कभी भी जीवन में बहुत आनंद को और शांति को उपलब्ध नहीं हो सकते।
पश्चिम का सारा युवक समाज और धीरे- धीरे भारत का भी, जो अत्यंत विद्रोह से भर रहा है, उसके बहुत गहरे में और

बुनियाद में यह बात है कि पश्चिम के बच्चे मां के दूध पर नहीं पाले जा रहे हैं। जीवन के प्रति उनकी आस्था और जीवन के प्रति उनके संबंध प्रीतिपूर्ण नहीं हैं। बचपन से उनकी जीवन-धारा ने धक्के पाये हैं और वे अप्रीतिपूर्ण हो गये हैं। उन धक्कों में, मां से विच्छिन्न होने में जीवन से ही वे विच्छन्न हो गये हैं। क्योंकि बच्चे के लिए प्राथमिक रूप से मां के अतिरिक्त और कोई जीवन नहीं होता।
सारी दुनिया में, जहां भी स्त्रियां शिक्षित हो रही हैं, वे बच्चों को अपने निकट पालना पसंद नहीं करतीं और उसके परिणाम घातक होने शुरू हुए हैं। आदिवासी समाजों में बच्चे बहुत देर तक मां के दूध पर पलते हैं। जितना समाज शिक्षित होता जाता है, बच्चे उतनी ही जल्दी मां के दूध से अलग कर दिये जाते हैं। जो बच्चे जितनी जल्दी मां के दूध से अलग कर दिये जायेंगे, वे बच्चे अपने जीवन में शांति को उतनी ही कठिनाई से अनुभव कर सकेंगे। उनके जीवन में एक गहरी अशांति हमेशा के लिए प्रांरभ से ही शुरू हो जायेगी। और यह अशांति का बदला वे किससे लें?
इसका बदला मां-बाप से ही लिया जायेगा, और सारी दुनिया में बच्चे मां-बाप से बदला ले रहे हैं। इसका बदला किससे

लेंगे बच्चे? उनको भी पता नहीं है कि यह कौन-सी प्रतिक्रिया उनके भीतर पैदा हो रही है, यह कौन-सा एक विद्रोह उनके भीतर पैदा हो रहा है, यह कौन-सी आग उनके भीतर पैदा हो रही है। लेकिन अनजान में, बहुत गहरे में उनका मन जानता है कि यह विद्रोह मां से बहुत शीघ्र छुड़ा लिये जाने का ही परिणाम है। उनकी जीवन-चेतना इस बात को जानती है, उनकी बुद्धि नहीं जानती। इसका परिणाम यह होगा कि वे मां से, पिता से, सबसे इसका बदला लेंगे।
और जो बच्चा मां और पिता के विरोध में है, वह बच्चा परमात्मा के कभी भी पक्ष में नहीं हो सकता। कोई संभावना नहीं है कि वह परमात्मा के पक्ष में हो जाये। क्योंकि परमात्मा के प्रति जो सबसे पहले भावनाएं उठनी शुरू होती हैं, वे वही हैं, जो मां और पिता के प्रति उठती हैं।
सारी दुनिया में परमात्मा को पिता कहना अकारण नहीं है। परमात्मा को पिता की शकल में देखना अकारण नहीं है। बच्चे के पहले जीवन अनुभव मां और पिता के प्रति ही अगर कृतज्ञता, धन्यता और श्रद्धा के हैं, तो ही वे अनुभव परमात्मा के प्रति भी विकसित होंगे, अन्यथा नहीं हो सकते।
लेकिन बच्चे को तोड़ लिया जाता है। दूसरी उसकी जीवन-धारा हृदय से संबंधित

होती है मां के। लेकिन एक सीमा पर आकर बच्चे को मां के दूध से अलग होना ही पड़ेगा।
लेकिन ठीक समय वह कब आता है? वह उतनी जल्दी नहीं आ जाता है, जितनी जल्दी हम सोचते हैं। वह इतनी जल्दी नहीं आता। बच्चे और थोड़ी ज्यादा देर तक मां के हृदय के करीब होने चाहिए, अगर उनके जीवन में प्रेम और हृदय का ठीक विकास करना है। वे बहुत जल्दी छीन-झपटकर अलग किये जाते हैं। मां को उन्हें अलग नहीं करना चाहिए, उन्हें अपने आप अलग होने देना चाहिए। एक सीमा पर आकर वे अपने से अलग होंगे। यह वैसे ही है--उनको कोशिश करके अलग करना, जैसे मां के पेट में नौ महीने बच्चा रहने के बाद अपने आप बाहर आयेगा-- लेकिन कोई मां जल्दी में चार महीने के बच्चे को या पांच महीने के बच्चे को बाहर निकाल देना चाहे। यह उतना ही खतरनाक है, उससे कम खतरनाक नहीं, कि कोई मां जबकि बच्चा खुद उसका दूध छोड़े, उसके पहले उसे अपने से अलग करना चाहे। मां की यह कोशिश खतरनाक है और इस कोशिश में बच्चे के हृदय का दूसरा केंद्र ठीक से विकसित नहीं होता।
और आप हैरान होंगे... चूंकि बात आ गयी, इसलिए मैं आप से कहना उचित समझूंगा... सारी दुनिया में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का जो सबसे ज्यादा आकर्षण का

केंद्र है, वह स्त्रियों का हृदय ही क्यों बना रहता है? --ये सब बच्चे मां के दूध से बहुत जल्दी अलग कर लिये गये हैं। सारी दुनिया में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का जो आकर्षण हैं, वह उनके हृदय के प्रति ही क्यों बना रहता है? वह उनके स्तनों के प्रति ही क्यों बना रहता है? ये सब बच्चे मां से बहुत जल्दी अलग कर लिये गये हैं। इनकी जीवन-चेतना में कहीं गहरे में स्त्रियों के स्तन के निकट रहने की कामना शेष रह गयी है, वह पूरी नहीं हो पायी है, अन्यथा कोई कारण नहीं है, अन्यथा कोई वजह नहीं है। आदिवासी समाजों में, प्रीमिटिव सोसाइटी.ज में जहां बच्चे मां के स्तन के पास पूरे समय तक रहते हैं, स्तन के प्रति पुरुषों का कोई आकर्षण नहीं है। लेकिन हमारी कविताएं, हमारे उपन्यास, हमारी फिल्में, हमारे नाटक, हमारे चित्र सभी स्त्रियों के स्तन के पास क्यों केंद्रित हैं?
ये उन पुरुषों के द्वारा बनायी गयी बातें हैं, जो पुरुष अपने बचपन में मां के स्तन के निकट पूरी तरह नहीं रह पाये। वह कामना शेष रह गयी है, वह कामना अब नये रूपों में प्र्रकट होनी शुरू होती है। और फिर हम कहेंगे कि अश्लील चित्र बनते हैं, अश्लील किताबें लिखी जाती हैं, अश्लील गीत लिखे जाते हैं। फिर हम

कहेंगे कि बच्चे रास्तों पर स्त्रियों को धक्का देते हैं, पत्थर मारते हैं। ये सब बेवकूफियां हम पैदा करवाते हैं और फिर इसके पीछे इन पर रोते हैं और इनको दूर करने के उपाय करते हैं।
बच्चे को बहुत देर तक मां के स्तन के निकट रहना अत्यंत अनिवार्य है। उसके मानसिक विकास में, उसके शारीरिक विकास में, उसके चित्त के विकास में, उसके हृदय का केंद्र ठीक से विकसित नहीं होगा, वह अधूरा रह जाता है। वह रुका हुआ रह जाता है, अवरुद्ध रह जाता है। और जब हृदय का केंद्र अवरुद्ध रह जाये तो एक और अनहोनी घटना घटनी शुरू होती है। और वह यह कि जो काम हृदय पूरा नहीं कर पाया, जो काम नाभि पूरा नहीं कर पायी, उस काम को मनुष्य अपने मस्तिष्क से पूरा करने की कोशिश करता है। यह कोशिश और भी उपद्रव ले आती है, क्योंकि प्रत्येक केंद्र का अपना काम है, और प्रत्येक केंद्र अपना ही काम पूरा कर सकता है, किसी दूसरे केंद्र का काम पूरा नहीं कर सकता।
न तो नाभि हृदय का काम कर सकती है और न हृदय का काम मस्तिष्क कर सकता है। लेकिन मां से जैसे ही बच्चा अलग कर दिया जाता है; उसके पास अब एक ही केंद्र रह जाता है, जिस पर सारा का सारा भार पड़ जाता है, वह मस्तिष्क का केंद्र होता

है। फिर शिक्षा भी उसी की, उपदेश भी उसी के, स्कूल भी उसी के, विद्यालय भी उसी के। जीवन में विकास भी उन्हीं का जिनका मस्तिष्क ज्यादा विकसित और ज्यादा संपन्न हो। एक दौड़ शुरू होती है और सारा काम जीवन का मस्तिष्क से लेने की कोशिश शुरू हो जाती है।
जो आदमी मस्तिष्क से प्रेम करेगा, उसका प्रेम झूठा होगा। क्योंकि मस्तिष्क का प्रेम से कोई संबंध नहीं। प्रेम तो हृदय से हो सकता है, मस्तिष्क से नहीं हो सकता। लेकिन हृदय के केंद्र हमारे ठीक से विकसित नहीं हैं, तो हम मस्तिष्क से काम लेना शुरू करते हैं। तो प्रेम भी हम सोचते-विचारते हैं। प्रेम के सोचने-विचारने से कोई संबंध नहीं है। लेकिन प्रेम भी हममें मानसिक रूप से सोच-विचार की तरह प्रकट होता है। इसीलिए सारी दुनिया में इतनी सेक्सुअलिटि, इतनी कामुकता व्याप्त हो गयी है।
कामुकता का एक ही अर्थ है कि सेक्स का केंद्र और सेक्स के केंद्र का काम मस्तिष्क से लिया जा रहा है, बुद्धि से लिया जा रहा है। और बुद्धि में जब काम प्रविष्ट हो जायेगा, तो जीवन नष्ट हो जाता है। और हमारी बुद्धि में काम प्रविष्ट हो गया है।

काम का, सेक्स का जो केंद्र है, वह नाभि ही है, क्योंकि जीवन की सबसे बड़ी ऊर्जा सेक्स है, सबसे बड़ी ऊर्जा काम है। उसी से जन्म है, उसी से जीवन है, उसी से जीवन का विकास है। लेकिन नाभि के केंद्र हमारे अविकसित हैं, तो हम दूसरे केंद्रों से उनका काम लेना शुरू करते हैं।
पशुओं में सेक्स है, लेकिन सेक्सुअलिटि नहीं है। काम है, लेकिन कामुकता नहीं है। इसलिए पशुओं का काम भी एक सौंदर्य है, एक अभिनव आनंद है। और मनुष्य की कामुकता एक कुरूपता है, एक अग्लीनेस है, क्योंकि वह काम भी चिंतन बन गया है, उसके मन में जाकर। वह काम का भी चिंतन कर रहा है।
एक आदमी भोजन करता हो, भोजन करना बहुत अच्छा है। लेकिन एक आदमी चौबीस घंटे भोजन के संबंध में चिंतन करता हो, तो यह आदमी पागल है। भोजन करना बिल्कुल ठीक है और भोजन बहुत जरूरी है और भोजन करना ही है। लेकिन भोजन के संबंध में अगर कोई चिंतन करता हो चौबीस घंटे, तो इस आदमी के केंद्र डांवाडोल हो गये। जो काम उसे पेट से लेना चाहिए था, वह यह बुद्धि से ले रहा है!
और बुद्धि कोई भोजन नहीं पचा सकती है और न बुद्धि तक भोजन पहुंचाया जा सकता है। बुद्धि केवल सोच सकती है, विचार कर

सकती है। और बुद्धि जितना भोजन के संबंध में विचार करेगी, उतना ही काम पेट का छिन जायेगा और पेट अस्त-व्यस्त हो जायेगा। आप कभी सोचें, करके देखें।
आप भोजन कर लेते हैं, फिर आप कोई सोच-विचार नहीं करते। वह अपने आप जाता है। पेट पचाने का काम करता है। वे अनकांशस सेंटर्स हैं, अचेतन केंद्र हैं, वे अपने काम करते हैं। आपको सोचना-विचारना नहीं पड़ता है।
लेकिन आप किसी दिन सजग होकर इस बात का विचार करें कि अब पेट में भोजन पहुंच गया होगा, अब पच रहा होगा, अब ऐसा हो रहा होगा, अब वैसा हो रहा होगा। और आप पायेंगे कि आपका भोजन उस दिन पचना असंभव हो गया है। जितना चिंतन प्रविष्ट होगा उतना पेट की जो अचेतन प्रक्रिया है, उसमें बाधा पड़ जायेगी। भोजन के साथ ऐसी दुर्घटना कम घटती है, सिर्फ उन लोगों को छोड़कर जो उपवासवादी होते हैं। अगर कोई आदमी अकारण उपवास करता है, तो धीरे-धीरे भोजन उसके चिंतन में प्रविष्ट हो जायेगा। वह भोजन तो नहीं करेगा, उपवास करेगा, लेकिन फिर भोजन का चिंतन करेगा। और यह चिंतन, भोजन करने से भी बहुत खतरनाक है। भोजन करना तो खतरनाक है ही नहीं। भोजन तो जीवन के लिए अत्यंत जरूरी है। लेकिन भोजन का चिंतन रुग्णता है। और जो आदमी भोजन का चिंतन

करने लगे, उसके जीवन में सब तरह के विकास होने बंद हो जायेंगे। उसका चिंतन इस फिजूल की बात में ही समाप्त होगा। सेक्स के साथ, यौन के साथ, काम के साथ ऐसी घटना घट गयी है। उसे हमने केंद्र से झपटकर छीन लिया है और चिंतन कर रहे हैं उसका। तो ऐसे हमारे जीवन के जो तीन महत्वपूर्ण केंद्र हैं, उन सबका काम धीरे-धीरे बुद्धि के हाथ में सौंप दिया गया है। यह ऐसा ही है, जैसे कोई आदमी आंख से ही सुनने की भी कोशिश करे। यह वैसा ही है, जैसे कोई आदमी मुंह से भी देखने की कोशिश करे। यह वैसा ही है, जैसे कोई आदमी कान से भी देखने की कोशिश करे या स्वाद लेने की कोशिश करे। तो हम कहेंगे, यह आदमी पागल है, क्योंकि आंख देखने का यंत्र है, कान सुनने का यंत्र है। कान देख नहीं सकते, आंख सुन नहीं सकती। और अगर हम ऐसी कोशिश करेंगे तो उसका कुल परिणाम--केऑस, व्यक्तित्व में एक अराजकता ही हो सकती है।
ऐसे ही तीन केंद्र हैं मनुष्य के। जीवन का केंद्र नाभि है, भाव का केंद्र हृदय है, विचार का केंद्र मस्तिष्क है। विचार इन तीनों केंद्रों में सबसे ऊपरी केंद्र है। उससे गहरा केंद्र भाव का है। उससे भी गहरा केंद्र प्राणों का है।

शायद आप सोचते होंगे कि हृदय अगर बंद हो जाये तब तो जीवन-धारा बंद हो जाये। लेकिन अभी वैज्ञानिक इस नतीजे पर सहज ही पहुंच गये हैं कि हृदय की गति बंद हो जाने के बाद भी अगर छह मिनट के भीतर हृदय फिर से चलाया जा सके तो आदमी पुनरुज्जीवित हो सकता है। हृदय का संबंध समाप्त हो जाने पर भी छह मिनट के पीछे तक नाभि का जीवन-केंद्र सक्रिय रहता है। और छह मिनट के भीतर अगर हृदय को फिर से चलाया जा सके या नया हृदय डाला जा सके, तो आदमी पुनरुज्जीवित हो जायेगा। आदमी के मरने की तब कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अगर नाभि-केंद्र से जीवन हट गया तो फिर किसी भी हृदय को बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। हमारे भीतर सर्वाधिक गहरा और बुनियादी केंद्र नाभि का है।
इस नाभि-केंद्र के लिए सुबह मैंने थोड़ी-सी बातें कीं।
अभी हमने जो आदमी बनाया है, वह सिर के बल पर खड़ा हुआ है। जैसे एक आदमी शीर्षासन करता है। शीर्षासन करने वाला सिर को आधार बना लेता है पैरों की जगह, और पैरों को ऊपर उठा देता है। अगर एक आदमी चौबीस घंटे शीर्षासन करता रहे तो उसकी क्या स्थिति होगी, आप समझ सकते हैं। वह आदमी सुनिश्चित ही पागल हो जायेगा। वह पागल हो ही गया है, नहीं तो

चौबीस घंटे खड़ा भी नहीं हो सकता था। कोई कारण भी नहीं था। लेकिन जीवन में हमने ऐसा ही रिवर्शन कर दिया है, ऐसा ही उल्टा कर दिया है! हम सब सिर के बल पर खड़े हुए हैं! जीवन का आधार हमने सिर बना लिया है। सोचना और विचारना यह हमारे जीवन के आधार हो गये हैं।
धर्म कहता है, सोचना और विचारना जीवन का आधार नहीं है, बल्कि सोचने और विचारने से मुक्त हो जाना, निर्विचार हो जाना जीवन का आधार है। लेकिन हम तो सोच-विचार से ही जीते हैं, और सोच-विचार से ही हम सारे जीवन को मार्ग निर्दिष्ट करने की कोशिश करते हैं। इससे सारे मार्ग भटक गये हैं। सोचने-विचारने से कभी कोई मार्ग उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि न तो भोजन पचता है आपके सोचने से, न आपकी नाड़ियों में खून बहता है आपके सोचने से, न आपकी सांस चलती है आपके सोचने से।
कभी आपने सोचा है कि जीवन की कोई भी महत्वपूर्ण क्रिया आपके सोचने से संबंधित नहीं है, बल्कि जीवन की सब क्रियाएं आपके अत्यधिक सोचने से कुंठित होती हैं, और उनको बाधा पड़ती है। इसलिए रोज रात को आपका गहरी नींद में खो जाना जरूरी होता है, ताकि आपकी सारी क्रियाएं ठीक से चल सकें, आप बाधा न दे

पायें और सुबह आप वापस ताजगी अनुभव कर सकें।
जिस आदमी की नींद खो जाये, उस आदमी का बचना फिर कठिन हो जाता है, क्योंकि सोच-विचार जीवन की बुनियादी क्रियाओं में बाधा डालता है पूरे समय। तो थोड़ी देर को प्रकृति आपको गहरी नींद में डुबा देती है। वह एक मूर्च्छा में ले जाती है। सारा सोच-विचार बंद हो जाता है और आपके वास्तविक केंद्र सक्रिय हो जाते हैं। हमारे वास्तविक केंद्रों का भी एक नाता है।
मैं आपसे बुद्धि से जुड़ सकता हूं। मेरे विचार आपको ठीक मालूम पड़ें, मेरे विचार आपको प्रभावी मालूम पड़ें, तो मेरा और आपका बुद्धिगत नाता हेगा। यह कम से कम नाता है। यह कम से कम रिलेशनशिप है। बुद्धि का कोई गहरा संबंध नहीं होता।
उससे गहरे संबंध हृदय के होते हैं, प्रेम के होते हैं। लेकिन प्रेम के संबंध आपके सोच-विचार से नहीं होते। प्रेम के संबंध बिल्कुल अनजान में आपके बिना सोचे-विचारे घटित होते हैं। उससे भी गहरे जीवन के संबंध होते हैं। जैसे, जो नाभि से प्रभावित होते हैं, हृदय से भी प्रभावित नहीं होते, वे तो और भी अव्याख्य होते हैं। उनकी तो व्याख्या ही करना मुश्किल होता है कि मेरा क्या

संबंध है, क्योंकि हमें पता ही नहीं होता।
लेकिन जैसा मैंने आपसे कहा कि मां की जीवन-धारा बच्चे की नाभि को प्रभावित करती रहती है। एक विद्युत मां की नाभि से बच्चे की नाभि तक बहती रहती है। जीवन में वह बच्चा जब भी किसी ऐसी स्त्री के करीब पहुंचेगा, जिससे वैसे ही विद्युत-धारा प्रवाहित हो रही है, जैसी उसकी मां से प्रवाहित होती थी तो बिल्कुल अनजान संबंध में घिर जायेगा। उसे समझ में ही नहीं आयेगा कि यह क्या संबंध बनना शुरू हुआ। उस अनजान संबंध को हम प्रेम कहते रहे हैं। वह हमारी पहचान में नहीं आता है, इसलिए उसको ब्लाइंड कहते हैं--अंधा है प्रेम। निश्चित प्रेम अंधा है, जैसे कान अंधे हैं, जीभ अंधी है, लेकिन आंख बहरी है। प्रेम अंधा है, क्योंकि वह बहुत गहरे उन तलों से उठता है जिनकी... हमें समझना मुश्किल हो जाता है कि क्या कारण है इस प्रेम के उठने के।
किन्हीं लोगों के प्रति हमें अचानक तीव्र रूप से दूर हटने का विकर्षण पैदा होता है। कोई कारण समझ में नहीं आता कि इनसे हम क्यों दूर हटना चाहते हैं। क्यों दूर हटाना चाहते हैं? इनसे क्यों दूर होना चाहते हैं? अगर आपकी विद्युत धारा और उनकी विद्युत धारा, जो नाभियों से प्रभावित होती हैं, विरोधी हैं, तो

आपकी समझ में नहीं आयेगा, लेकिन आपको दूर हटना पड़ेगा। आपको ऐसा लगेगा कि कोई चीज दूर कर रही है।
और किसी व्यक्ति के पास आप अचानक खिंचे चले जाना चाहते हैं। आपकी समझ में नहीं आता। कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। आपकी विद्युत धारा और उसकी विद्युत धारा निकट मालूम हो रही है, सजातीय मालूम हो रही है, करीब मालूम हो रही है, एक-दूसरे से संबंधित हो रही है। इसलिए वैसी प्रतीति आपको होती है। तीन तरह के संबंध मनुष्य के जीवन में होते हैं। बुद्धि के संबंध, जो बहुत गहरे नहीं हो सकते। गुरु और शिष्य में ऐसे बुद्धि के संबंध होते हैं। प्रेम के संबंध, जो बुद्धि से ज्यादा गहरे होते हैं। हृदय के संबंध, मां-बेटे में, भाई-भाई में, पति-पत्नी में इसी तरह के संबंध होते हैं, जो हृदय से उठते हैं। और इनसे भी गहरे संबंध होते हैं, जो नाभि से उठते हैं।
नाभि से जो संबंध उठते हैं, उन्हीं को मैं मित्रता कहता हूं। वे प्रेम से भी ज्यादा गहरे होते हैं। प्रेम टूट सकता है, मित्रता कभी भी नहीं टूटती।
जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे कल हम घृणा भी कर सकते हैं। लेकिन जो मित्र है, वह कभी भी शत्रु नहीं हो सकता है। और

हो जाये, तो जानना चाहिए कि मित्रता नहीं थी।
मित्रता के संबंध नाभि के संबंध हैं, जो और भी अपरिचित गहरे लोक के संबंध हैं। इसीलिए बुद्ध ने नहीं कहा लोगों से कि तुम एक दूसरे को प्रेम करो। बुद्ध ने कहा: मैत्री। यह अकारण नहीं था। बुद्ध ने कहा कि तुम्हारे जीवन में मैत्री होनी चाहिये। किसी ने बुद्ध को पूछा भी कि आप प्रेम क्यों नहीं कहते? बुद्ध ने कहा, मैत्री प्रेम से बहुत गहरी बात है। प्रेम टूट भी सकता है। मैत्री कभी टूटती नहीं।
और प्रेम बांधता है, मैत्री मुक्त करती है।
प्रेम किसी को बांध सकता है अपने से, प.जेस कर सकता है, मालिक बन सकता है, लेकिन मित्रता किसी की मालिक नहीं बनती, किसी को रोकती नहीं, बांधती नहीं, मुक्त करती है। और प्रेम इसलिए भी बंधन वाला हो जाता है कि प्रेमियों का आग्रह होता है कि हमारे अतिरिक्त और प्रेम किसी से भी नहीं।
लेकिन मित्रता का कोई आग्रह नहीं होता। एक आदमी के हजारों मित्र हो सकते हैं, लाखों मित्र हो सकते हैं, क्योंकि मित्रता बड़ी व्यापक, गहरी अनुभूति है। जीवन की सबसे गहरी केंद्रीयता से वह उत्पन्न होती है। इसलिए मित्रता अंततः

परमात्मा की तरफ ले जाने वाला सबसे बड़ा मार्ग बन जाती है। जो सबका मित्र है, वह आज नहीं कल परमात्मा के निकट पहुंच जायेगा, क्योंकि सबके नाभि-केंद्रों से उसके संबंध स्थापित हो रहे हैं और एक न एक दिन वह विश्व के नाभि-केंद्र से भी संबंधित हो जाने को है।
ये-ये जो नाते हैं, जो रिलेशनशिप है जीवन की, वह बौद्धिक तो नहीं होनी चाहिए, अकेली बौद्धिक नहीं होनी चाहिए। हार्दिक होनी चाहिए और अकेली हार्दिक भी नहीं होनी चाहिए, उससे भी गहरी नाभिगत होनी चाहिए। जैसे यह हमें आज बहुत स्पष्ट नहीं है जगत में-- आज नहीं कल ज्यादा स्पष्ट हो सकेगा, आज नहीं कल हमें पता चल सकेगा कि हम जीवन की बहुत दूर धाराओं से जुड़ें हैं, जो हमें दिखाई नहीं पड़तीं। हम जानते हैं कि चांद बहुत दूर है, लेकिन समुद्र के पानी पर कोई अनजाना प्रभाव छोड़ता रहता है। चांद के साथ समुद्र का पानी ऊपर उठने लगता है, चांद के साथ नीचे गिरने लगता है।
हमें पता है सूरज बहुत दूर है, लेकिन किन्हीं अदृश्य धागों से वह जीवन से बंधा है। सुबह सूरज निकलता है और जीवन में एक क्रांति घटित हो जाती है। जो सब सोया हुआ था, जो सब मुर्दा-सा पड़ा था, जो सब बेहोश था, वह होश में आने लगता है। कोई सोयी चीज जागने लगती है। फूल खिलने

लगते हैं, पक्षी गीत गाने लगते हैं। सूरज की अदृश्य धारा कोई प्रभाव हम तक पहुंचाती है।
और भी जीवन की अदृश्य धाराएं हैं, जो इसी भांति हम तक पहुंचती हैं और हमारे जीवन को संचालित करती रहती हैं; निरंतर संचालित करती रहती हैं। सूरज ही नहीं, चांद ही नहीं, आकाश के तारे ही नहीं, बल्कि जीवन की भी एक विद्युत धारा है, जो हमें कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती और जो निरंतर हमारे केंद्रों को प्रभावित करती है और संचालित करती है। लेकिन जितना रिसेप्टिव हमारा केंद्र होगा, जितना ग्राहक हमारा केंद्र होगा, वह जीवन-धारा उतनी ही हमारे जीवन को प्रभावित कर सकती है। जो केंद्र हमारा जितना कम ग्राहक होगा, उतनी ही वह जीवन-धारा उसे प्रभावित करने से वंचित रह जायेगी।
सूरज निकलता है, फूल खिल जाता है। लेकिन अगर हम फूल के चारों तरफ दीवाल उठा दें और सूरज की रोशनी फूल तक न पहुंच पाये तो फूल नहीं खिलेगा, कुम्हला जायेगा। बंद दीवाल में फूल कुम्हला ही जायेगा। सूरज जबरदस्ती घुसकर उस फूल को नहीं खोल सकता। फूल को खुले में होना चाहिए। फूल को तैयार होना चाहिए। फूल के लिए मौका देना चाहिए सूरज को कि वह आये और खोल दे।

सूरज किसी एक-फूल को ढूंढ़ने नहीं जा सकता कि कौन फूल दीवाल के भीतर छिपा है, तो उसके दीवाल के भीतर पहुंचे। सूरज को कोई पता भी नहीं है फूलों का। यह तो बिल्कुल ही एक अचेतन जीवन-प्रभाव है। सूरज निकलता है, फूल खिलते हैं। लेकिन अगर कोई फूल दीवाल के भीतर बंद है, तो नहीं खिलेगा, मुरझा जायेगा और मर जायेगा।
जीवन-धारा चारों तरफ से बह रही है और जिनके नाभि-केंद्र खुले हुए नहीं हैं, वे उस धारा से वंचित रह जायेंगे। उनको उस धारा का कोई पता नहीं चलेगा। उन्हें बोध ही नहीं होगा कि यह धारा भी आयी थी और हमें प्रभावित कर सकती थी। हमारे भीतर कुछ छिपा था उसे खोल सकती थी। उन्हें पता भी नहीं होगा। यह जीवन-धारा प्रभावित कर सके-- यह हमारे नाभि का जो फूल है, जिसको बहुत पुराने दिनों से लोग कमल कहते रहे, लोटस कहते रहे, वे इसीलिए कहते रहे कि वे खिल सकें, कोई एक जीवन-धारा उसे खोल दे। उसके लिए तैयारी चाहिए। उसके लिए हमारे केंद्र को खुले आकाश के नीचे होना चाहिए। हमारा ध्यान होना चाहिए उस पर। हमारी जीवन-धारा, भीतर जो हमारी जीवन-धारा है, वह उस फूल तक पहुंचकर उसे जीवन देना चाहिए। इसलिए मैंने सुबह कुछ थोड़ी-सी बातें कहीं।

यह कैसे संभव होगा, यह कैसे संभव हो सकता है कि हमारे जीवन का केंद्र एक खिला हुआ फूल बन जाये, ताकि जो भी चारों तरफ से अदृश्य विद्युत-धाराएं आ रही हैं, वे उससे संपर्क स्थापित कर सकें। किस रास्ते से यह होगा? दो-चार बातें स्मरणीय हैं जो अभी और रात में आपसे बात कर लूंगा, ताकि कल हम दूसरे बिंदु पर बात कर सकें।
पहली बातः आपकी ब्रीदिंग, आपकी श्वास की प्रक्रिया जितनी गहरी हो, उतना ही आप नाभि को प्रभावित करने में और विकसित करने में समर्थ हो सकते हैं। लेकिन हमें इसका कोई ख्याल नहीं है। हमें इस बात का पता ही नहीं है कि श्वास हम कितनी ले रहे हैं या कितनी कम ले रहे हैं, या जरूरत के माफिक ले रहे हैं या नहीं ले रहे हैं। और जितने हम ज्यादा चिंतित होते जाते हैं, जितने चिंतन से भरते जाते हैं, मस्तिष्क पर जितना बोझ बढ़ता है, आपको ख्याल भी न होगा, श्वास की धारा उतनी ही क्षीण और अवरुद्ध होती है। क्या आपने कभी ख्याल किया है, क्रोध में आपकी श्वास दूसरी तरह से चलती है, शांति में दूसरी तरह से चलती है?
क्या आपने कभी ख्याल किया है कि तीव्र कामवासना मन में चलती हो, तो श्वास और तरह से चलती है और मन मधुर भावों से भरा हो, तो श्वास दूसरी तरह से चलती है?

क्या आपने ख्याल किया है, बीमार आदमी की सांस और तरह से चलती है, स्वस्थ आदमी की और तरह से चलती है। श्वास के स्पंदन प्रतिक्षण आपके चित्त को देखकर परिवर्तित होते रहते हैं।
ठीक उल्टी बात भी सच है। अगर श्वास के स्पंदन बिल्कुल संगीतपूर्ण हों, तो आपका चित्त भी परिवर्तित होता रहता है। या तो चित्त को बदलिये तो श्वास बदलती है या श्वास को बदलिये तो चित्त पर परिणाम होते हैं।
जिस व्यक्ति को भी जीवन-केंद्रों को विकसित करना है और प्रभावित करना है, उसे पहली बात है, रिदमिक ब्रीदिंग--उसके लिये पहली बात हैः लयबद्ध श्वास। चलते- उठते-बैठते इतनी लयबद्ध, इतनी शांत, इतनी गहरी श्वास, कि श्वास का एक अलग संगीत, एक अलग हारमनी दिन-रात उसे मालूम होने लगे। आप चल रहे हैं रास्ते पर, कोई काम तो नहीं कर रहे हैं। बड़ा आनंदपूर्ण होगा कि आप गहरी, शांत, धीमी और गहरी और लयबद्ध श्वास लें। दो फायदे होंगे। जितनी देर तक लयबद्ध श्वास रहेगी, उतनी देर तक आपका चिंतन कम हो जायेगा, उतनी देर तक मन के विचार बंद हो जायेंगे। अगर श्वास बिल्कुल सम हो, तो मन के विचार एकदम बंद हो जाते हैं, शांत हो जाते हैं। श्वास मन के विचारों को बहुत गहरे, दूर तक प्रभावित करती है। और

श्वास ठीक से लेने में कुछ भी खर्च नहीं करना होता है। और श्वास ठीक से लेने में कोई समय भी नहीं लगाना होता है। श्वास ठीक से लेने में कहीं से कोई समय निकालने की भी जरूरत नहीं होती। आप ट्रेन में बैठे हैं, आप रास्ते पर चल रहे हैं, आप घर में बैठे हैं--धीरे-धीरे अगर गहरी, शांत श्वास लेने की प्रक्रिया जारी रहे तो थोड़े दिन में यह प्रक्रिया सहज हो जायेगी। आपको इसका बोध भी नहीं रहेगा। यह सहज ही गहरी और धीमी चलने लगेगी।
जितनी श्वास की धारा धीमी और गहरी होगी, उतना ही आपका नाभि-केंद्र विकसित होगा। श्वास प्रतिक्षण जाकर नाभि- केंद्र पर चोट पहुंचाती है। अगर श्वास ऊपर से ही लौट आती है, तो नाभि-केंद्र धीरे-धीरे सुस्त हो जाता है, ढीला हो जाता है। उस तक चोट नहीं पहुंचती। पुराने लोगों ने एक सूत्र खोज निकाला था। लेकिन आदमी इतना नासमझ है कि सूत्रों को दोहराने लगता है। उनका अर्थ नहीं देख पाता, उनको समझ भी नहीं पाता। जैसे अभी वैज्ञानिकों ने पानी का एक सूत्र निकाल लिया--एच-टू-ओ। वे कहते हैं कि पानी में उदजन और आक्सीजन दोनों के मिलने से पानी बनता है। दो अणु उदजन के, एक अणु आक्सीजन का--तो वह एच-टू-ओ फार्म बना लिया, उदजन दो और आक्सीजन एक। अब

कोई आदमी अगर बैठ जाये और दोहराने लगे एच-टू-ओ, एच-टू-ओ, जैसे लोग राम-राम, ओम-ओम दोहराते हैं, तो उसको हम पागल कहेंगे। क्योंकि सूत्र को दोहराने से क्या होता है? सूत्र तो केवल सूचक है किसी बात का। वह बात समझ में आ जाये तो सूत्र सार्थक है।
ओम आप निरंतर सुनते होंगे। लोग बैठे दोहरा रहे हैं, ओम-ओम जप कर रहे हैं! उन्हें पता नहीं है ओम तो एच-टू-ओ जैसा सूत्र है। ओम में तीन अक्षर हैं। अ है, उ है, म है। शायद आपने ख्याल न किया हो अगर आप मुंह बंद करके जोर से "अ" कहें भीतर तो "अ" की ध्वनि मस्तिष्क में गूंजती हुई मालूम होगी। "अ" जो है, वह मस्तिष्क के केंद्र का सूचक है। अगर आप भीतर "उ" कहें, तो "उ" की ध्वनि हृदय में गूंजती हुई मालूम होगी। "उ" हृदय का सूचक है। और अगर आप "म" कहें भीतर, तीसरा ओम का हिस्सा, तो वह नाभि के पास आपको गूंजता हुआ मालूम होगा। यह "अ, उ और म" मस्तिष्क, हृदय और नाभि के तीन सूचक शब्द हैं। अगर आप "म" कहें, तो आपको सारा जोर नाभि पर पड़ता हुआ मालूम पड़ेगा। अगर आप "उ" कहें तो जोर हृदय तक जाता हुआ मालूम पड़ेगा। अगर आप "अ" कहें तो "अ" मस्तिष्क में ही गूंजकर विलीन हो जाता है।

ये तीन सूत्र हैं। "अ" से "उ" की तरफ और "उ" से "म" की तरफ जाना है। ओम-ओम बैठकर दोहराने से कुछ भी नहीं होता। तो जो इस दिशा में ले जाये--"अ" से "उ" की तरफ, "उ" से "म" की तरफ--वे प्रक्रियाएं ध्यान देने की हैं। उसमें गहरी श्वास पहली प्रक्रिया है। जितनी गहरी श्वास, जितनी लयबद्ध, जितनी संगीतपूर्ण, उतनी ही आपके भीतर जीवन-चेतना नाभि के आसपास विकीर्ण होने लगेगी, फैलने लगेगी। नाभि एक जीवित केंद्र बन जायेगी। और थोड़े ही दिनों में आपको नाभि से अनुभव होने लगेगा कि कोई शक्ति बाहर फिंकने लगी। और थोड़े ही दिनों में आपको यह भी अनुभव होने लगेगा कि कोई शक्ति नाभि के करीब आकर खींचने भी लगी। आप पायेंगे कि एक बिल्कुल लिविंग, एक जीवंत, एक डायनेमिक केंद्र नाभि के पास विकसित होना शुरू हो गया है।
और जैसे ही यह अनुभव होगा, और बहुत-से अनुभव इसके आसपास प्रकट होने शुरू हो जायेंगे। फिजियोलाजिकलि, शारीरिक रूप से श्वास पहली चीज है नाभि-केंद्र को विकसित करने के लिए। मानसिक रूप से कुछ गुण नाभि को विकसित करने में सहयोगी होते हैं। जैसा मैंने सुबह आपसे कहा, अभय, फियरलेसनेस है। जितना आदमी भयभीत होगा, उतना ही आदमी नाभि के निकट नहीं पहुंच पायेगा।

जितना आदमी निर्भय होगा, उतना ही नाभि के निकट पहुंचेगा।
इसीलिए मेरा--बच्चों के लिए शिक्षा देने में मेरा अनिवार्य सुझाव है, कभी भूलकर बच्चे से मत कहना कि बाहर अंधेरा है, वहां मत जाओ। आपको पता नहीं, आप उनके नाभि-केंद्र को हमेशा के लिए नुकसान पहुंचा रहे हैं। जहां अंधेरा हो, वहां बच्चों से कहना कि जरूर बाहर जाओ, बाहर अंधेरा तुम्हें बुलाता है। नदी पूर पर आयी हो, तो बच्चों को मत कहना कि इसमें मत उतरो, क्योंकि आपको पता नहीं, पूर में आयी नदी में जो बच्चा उतरने की हिम्मत करता है, उसका नाभि-केंद्र विकसित होता है। और जो बच्चा नहीं उतरता है, उसका नाभि-केंद्र कमजोर और क्षीण होता है। बच्चे पहाड़ पर चढ़ते हों तो चढ़ने देना। बच्चे वृक्षों पर चढ़ते हों तो चढ़ने देना। जहां साहस और जहां अभय उनको उपलब्ध होता हो, वहां उनको जाने देना। अगर किसी कौम के दस-पचास हजार बच्चे प्रतिवर्ष मर जायें--पहाड़ों पर चढ़ने में, नदियों में उतरने में, वृक्षों पर चढ़ने में--कोई हर्जा नहीं है। लेकिन अगर बच्चे पूरी कौम के भय से भर जायें और अभय से खाली हो जायें, तो पूरी कौम जिंदा दिखाई पड़ती है, लेकिन वस्तुतः पूरी कौम मर गयी होती है।

हमारे देश में यह दुर्भाग्य घटित हुआ है। हम धर्म की बहुत बातें करते हैं, लेकिन साहस की जरा भी नहीं। और हमें यह पता ही नहीं है कि बिना साहस के कभी कोई धर्म है ही नहीं। क्योंकि साहस के अभाव में जीवन के केंद्रीय तत्व ही अविकसित रह जाते हैं। करेज चाहिए--इतना साहस चाहिए अदम्य, कि मृत्यु के सामने भी कोई खड़ा हो सके। और हमारी कौम इतनी धर्म की बातें करती है, लेकिन मरने से हम इतना डरते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं! होना उल्टा चाहिए कि जो लोग आत्मा को जानते हों, पहचानते हों, उनको मरने से बिल्कुल नहीं डरना चाहिए, क्योंकि मृत्यु है ही नहीं। लेकिन हम आत्मा की इतनी बातें करते हैं और मृत्यु से इस भांति डरते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं!
शायद हम आत्मा की बातें इसीलिए करते हों कि हम मृत्यु से डरते हैं। और आत्मा की बातें करने से हमको राहत मिलती हो कि नहीं मरेंगे, आत्मा तो अमर है। शायद भय के कारण ही हम बातें करते हैं। सचाई कुछ ऐसी ही मालूम होती है। अभय विकसित होना चाहिए। अदम्य अभय विकसित होना चाहिए। और इसके लिए जीवन में जो भी खतरे के मौके हों, उन्हीं को स्वागत मानना चाहिए।
नीत्शे से किसी ने पूछा था एक बार, कि हम अपने व्यक्तित्व को कैसे विकसित

करें? उसने एक बड़ा अजीब सूत्र दिया, जिसका ख्याल भी नहीं हो सकता था। उसने कहा, लिव डेंजरसलि! उसने कहा, खतरे में जीयो, अगर व्यक्तित्व को विकसित करना हो। लेकिन हम तो सोचते हैं, जितनी सुरक्षा में, जितनी सीक्योरिटी में जीयें--बैंक-बैंलेस हो, मकान हो, कोई डर न हो, पुलिस वाले हों, मिलिट्री हो और हम चुपचाप उसके भीतर जीयें। तो हमको पता ही नहीं है कि इस व्यवस्था और इस सुविधा जुटाने में हम मर ही गये। जीने का कोई सवाल न रहा।
क्योंकि जीने का एक ही अर्थ है, खतरे में जीना।
जीने का कोई दूसरा अर्थ होता ही नहीं। मुर्दे बिल्कुल सुरक्षित हैं। क्योंकि अब वे मर भी नहीं सकते हैं। अब उनको कोई मार भी नहीं सकता है। कब्रें बिल्कुल सुरक्षित हैं।
एक सम्राट ने एक महल बनवाया था। और सुरक्षा की दृष्टि से उसने उस महल में एक ही दरवाजा रखा था। पड़ोस का सम्राट देखने आया था। देखकर बहुत खुश हुआ। और उसने कहा, ऐसा मकान तो मैं भी बनवाना चाहूंगा। यह तो बड़ा सुरक्षित है। इसमें कोई शत्रु आ ही नहीं सकता। एक ही दरवाजा था और दरवाजे पर बहुत पहरा था। फिर वह सम्राट विदा होने लगा, जब उस रास्ते पर आकर मकान के मालिक सम्राट ने आए हुए

मेहमान को विदा किया तो रास्ते पर भीड़ इकट्ठी हो गयी। और जब उस सम्राट ने जाते वक्त कहा कि मैं बहुत खुश हुआ, मैं भी एक ऐसा मकान बनवाऊंगा। तो एक बूढ़ा आदमी वहां खड़ा था, वह हंसने लगा। तो सम्राट ने पूछा, तुम क्यों हंसते हो?
उसने कहा, कि अगर आप मकान बनवाएं तो एक गलती मत करना, जो इसने की है।
कौन-सी गलती है?
यह एक दरवाजा और मत रखना। सब दरवाजे बंद कर देना। तो फिर आप बिल्कुल खतरे के बाहर हो जायेंगे। पर उस आदमी ने कहा, फिर तो वह कब्र बन जायेगी! कब्र यह भी बन गयी है। एक दरवाजा जहां है और जहां सब तरह की सुरक्षा है और जहां कोई भय नहीं रहा चारों तरफ से।
हम भय के न रह जाने को अभय समझ लेते हैं, यह गलती है। अभय, भय की अनुपस्थिति नहीं है। भय की उपस्थिति में कोई दूसरी ही घटना है अभय, जो भीतर घटती है। वह भय की अनुपस्थिति नहीं है, एब्सेंस आफ फियर नहीं है। अभय भय की पूरी उपस्थिति है, सामना करने का साहस। लेकिन यह हमारे जीवन में विकसित नहीं हो पाता है। मेरी प्रार्थना है आपसे, मंदिरों में प्रार्थना करने से नहीं आप परमात्मा के निकट पहुंचेंगे। लेकिन जहां जीवन का अभय आपको बुलाता हो, साहस बुलाता हो, जहां खतरे बुलाते हो, वहां पहुंचने से

जरूर परमात्मा के निकट पहुंचेंगे। खतरों में, डेंजर्स में, इनसीक्योरिटी में, असुरक्षा में, वहां आपके भीतर जो छिपा केंद्र है, सोया हुआ, वह जागता है और सजग होता है। वहां उसे चुनौती मिलती है। वह केंद्र नाभि का वहीं विकसित होता है।
पुराने दिनों में संन्यासी ने यही असुरक्षा स्वीकार की थी। इसी इनसीक्योरिटी को स्वीकार किया था। घर छोड़ दिया, इसलिए नहीं कि घर बुरा था। पीछे के पागल लोग यही समझने लगेः घर बुरा था, इसलिए छोड़ दिया। पत्नी-बच्चे छोड़ दिये, इसलिए नहीं कि पत्नी-बच्चे जंजीर थे। गलत है यह बात। लेकिन जहां- जहां सुरक्षा थी, संन्यासी उसको छोड़ देता था। असुरक्षा में प्रवेश करता था, इनसीक्योरिटी में, जहां कोई सहारा नहीं, जहां कोई मित्र नहीं, जहां कोई परिचित नहीं, जहां कोई अपना नहीं। जहां बीमारी होगी, मौत होगी, खतरे होंगे, एक पैसा पास नहीं--ऐसी असुरक्षा में प्रवेश करता था। तो वह जो इनसीक्योरिटी में जाता था, असुरक्षा में जाता था, वही संन्यासी था।
लेकिन पीछे संन्यासियों ने भी बहुत अच्छी सुरक्षा कर ली। गृहस्थियों से भी ज्यादा अच्छी सुरक्षा कर ली! गृहस्थी को बेचारे को कमाना भी पड़ता है,

संन्यासी को कमाना भी नहीं पड़ता है। वे और भी सुरक्षित हैं। उनको तो मिल जाता है। उनको वस्त्र भी मिलते हैं, कपड़ा भी मिलता है, मकान भी मिलते हैं। कोई उन्हें कमी नहीं रही। सिर्फ फर्क एक पड़ा कि उन्हें यह बनाना भी नहीं पड़ता। बनाने की झंझट और असुरक्षा भी खतम हो गयी कि बना पायेंगे कि नहीं बना पायेंगे। कोई न कोई बना देता है, कोई न कोई व्यवस्था जुटा देता है। तो संन्यासी और भी खूंटे से बंधा हुआ आदमी हो गया। इसीलिए संन्यासी हिम्मत नहीं करता। संन्यासी बहुत कमजोर मालूम होता है, आज की दुनिया में। जरा-सी भी हिम्मत नहीं कर सकता।
एक संन्यासी कहता है, मैं जैन हूं। एक संन्यासी कहता है, मैं हिंदू हूं। एक संन्यासी कहता है, मैं मुसलमान हूं। संन्यासी भी हिंदू, जैन और मुसलमान हो सकते हैं? संन्यासी तो सबका है। लेकिन सबका कहने में डर है। क्योंकि सबका कहने का मतलब कहीं यह न हो जाये कि किसी के हम नहीं हैं, तो जो रोटी देते हैं, मकान बनाते हैं, उनसे साथ छूट जायेगा। वे कहेंगे कि आप हमारे नहीं, सबके हैं, तो सबके पास जायें। हम तो जैन साधु हो, तो आप के लिए व्यवस्था करते हैं; हिंदू साधु हो, तो व्यवस्था करते हैं; मुसलमान साधु हो, तो हम व्यवस्था

करते हैं। हम तो मुसलमान हैं, हम मुसलमान साधुओं की व्यवस्था करते हैं। तो साधु कहता है, हम मुसलमान हैं। साधु कहता है, हम हिंदू हैं। यह सीक्योरिटी की तलाश है, यह सुरक्षा की तलाश है। यह नये घर की खोज है। पुराना घर छोड़ा है, नया घर चाहिए। बल्कि अब तो हालत ऐसी है कि जो समझदार हैं और जिनको अच्छा घर चाहिए, वे घर बनाते ही नहीं--संन्यासी हो जाते हैं।
आप तो नासमझ हैं। अपना घर बनायें और पाप में भी पड़ें और नर्क में भी जायें। दूसरे से घर बनवा लें, उसमें रहें भी, स्वर्ग भी जाने का मजा लें, पुण्य भी कमायें और झंझट से भी बचें। तो संन्यासियों ने एक अपने तरह की सुरक्षा खड़ी कर ली है।
लेकिन मूलतः संन्यासी का अर्थ होता है: खतरे में जीने की कामना।
मूलतः अर्थ होता है: कोई छाया नहीं घर पर, कोई साथी नहीं। कल का कोई भरोसा नहीं।
क्राइस्ट एक बगिया के पास से निकलते थे। और उन्होंने अपने मित्रों को कहा कि देखते हो, इस बगिया में खिले फूलों को? इन्हें पता नहीं कि कल सूरज निकलेगा कि नहीं निकलेगा। इन्हें पता नहीं कि कल पानी मिलेगा कि नहीं मिलेगा, लेकिन यह आज अपने आनंद में खिले हुए हैं। आदमी

अकेला है, जो कल की व्यवस्था आज ही कर लेता है। परसों की व्यवस्था कर लेता है। ऐसे भी आदमी हैं कि उनकी कब्र कैसी बने, इसका भी इंतजाम कर लेते हैं। जो समझदार हैं, वे तो अपना स्मारक मरने के पहले ही बना लेते हैं। उसमें उनकी लाश रख दी जायेगी पीछे!
हम सब इंतजाम कर लेते हैं और हम यह भूल ही जाते हैं कि कल का इंतजाम जो आदमी आज कर लेता है, वह आज को कल के इंतजाम में खतम कर देता है। कल फिर वह आने वाले कल का इंतजाम करेगा और उसकी हत्या कर देगा। वह रोज आने वाले कल का इंतजाम करेगा और आज की हत्या करता चला जायेगा। और आज के अतिरिक्त कभी कुछ आता ही नहीं। कल कभी आता ही नहीं। जब भी आता है, आज ही आता है। आज की हत्या कर देता है कल के लिए! यह सुरक्षा खोजने वाले मन की प्रवृत्ति है कि आज की हत्या कर देता है कल के लिए! वर्तमान को न्यौछावर कर देता है भविष्य के लिए! और भविष्य कभी आता नहीं। कल कभी आता नहीं। आखिर में वह पाता है सारा जीवन उसके हाथ से निकल गया।
जो आज जीने की हिम्मत करता है और जो कल की फिक्र भी नहीं करता, यह आदमी डेंजर में जी रहा है, यह आदमी खतरे में जी रहा है, कल हो सकता है खतरा हो। किसी चीज का कोई भरोसा नहीं है। आज जो पत्नी प्रेम

करती है, हो सकता है, कल प्रेम न करे। आज जो पति घर प्रेम करता है, हो सकता है, कल प्रेम न करे। कोई भरोसा नहीं है कल का! आज पैसा है, कल पैसा न हो, आज कपड़े हैं, कल कपड़े न हों। लेकिन कल की इस असुरक्षा को, इस इनसीक्योरिटी को जो पूरी तरह स्वीकार करता है, कल की प्रतीक्षा करता है कि कल जब सामने होगा, तब देखेंगे। इस आदमी के भीतर वह केंद्र विकसित होना शुरू होता है, जिसे मैं नाभि- केंद्र कह रहा हूं। इसके भीतर एक बल खड़ा होता है, एक ऊर्जा खड़ी होती है, एक वीर्य खड़ा होता है। इसके भीतर एक हिम्मत का संबल खड़ा होता है। एक पिलर की तरह इसके भीतर कोई चीज खड़ी हो जाती है। उसी स्तंभ के ऊपर जीवन आगे यात्रा करता है।
तो शारीरिक दृष्टि से श्वास और
मानसिक दृष्टि से साहस--ये दो बातें नाभि-केंद्र के विकास के लिए प्राथमिक रूप से जरूरी हैं। कुछ और बात होगी, कुछ आपके मन में इस संबंध में प्रश्न होंगे, तो रात मैं आपसे बात कर लूंगा। एक बात अंत में कहकर अभी की बैठक पूरी होगी। जापान में इधर कोई सात-आठ सौ वर्षों से एक अलग ही तरह के आदमी को पैदा करने की उन्होंने कोशिश की, उसे वे समुराई कहते थे। वह साधु भी होता था और सैनिक भी होता था। यह बात बड़ी बेबूझ है, क्योंकि साधु और सैनिक का क्या संबंध?

जापान में जो ध्यान के मंदिर थे, वे भी बड़े अजीब थे। वे ध्यान के मंदिर, जहां ध्यान सिखाया जाता था, वहां जुजुत्सु भी सिखाते हैं, जूडो भी सिखाते हैं, कुश्ती लड़ने की कला भी सिखाते हैं, तलवार चलाना भी सिखाते हैं, तीर चलाना भी सिखाते हैं। अगर हम वहां जाकर देखते, तो हम हैरान हो जाते कि ध्यान के मंदिर में तलवार चलाने की क्या जरूरत! और यहां जूडो सिखाना, और जुजुत्सु सिखाना, और कुश्ती लड़ना सिखाना--इसका क्या संबंध है ध्यान से! ध्यान के मंदिर के सामने तलवारों के निशान बने रहते हैं! बड़ी अजीब बात हो गयी थी।
लेकिन कुछ कारण था। जापान के साधकों ने धीरे-धीरे अनुभव की यह बात कि जिस साधक के जीवन में साहस और बल पैदा होने की संभावना नहीं होती, उस साधक का केवल मस्तिष्क ही रह जाता है पास में। उसका और गहरा केंद्र विकसित नहीं होता। वह पंडित ही हो सकता है, साधु नहीं हो पाता। वह ज्ञानी हो सकता है तथाकथित--कि उसे गीता भी मालूम है, कुरान भी मालूम है और बाइबिल भी मालूम है, उपनिषद भी मालूम है! तोते की तरह सब कंठस्थ है, यह हो सकता है। लेकिन जीवन का उसे कोई अनुभव नहीं होता। तो वे तलवार भी सिखाते, वे तीर चलाना भी सिखाते।

अभी एक मेरे मित्र जापान से लौटे तो किसी ने उनको एक मूर्ति भेंट कर दी। वे उस मूर्ति से बड़े हैरान हुए। उनको वह मूर्ति बिल्कुल समझ में नहीं आ सकी कि यह मूर्ति कैसी है। वे लौटे तो मेरे पास मूर्ति लेकर आये और कहा कि किसी ने मुझे भेंट की तो मैं ले तो आया, लेकिन मैं बार-बार सोचता रहा कि यह मूर्ति है कैसी? इसका मतलब क्या है? वह एक समुराई सैनिक की मूर्ति थी।
तो मैंने उनको कहा, आपकी समझ में इसलिए नहीं पड़ रहा है कि हजारों साल से हमने गलत ही समझ पैदा कर रखी है। उस मूर्ति में एक सैनिक है। और उसके हाथ में एक नंगी तलवार है। और जिस हाथ में उसके नंगी तलवार है, उस तरफ का उसका चेहरा नंगी तलवार की चमक में चमक रहा है। वह चेहरा ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे हो सकता है, अर्जुन का रहा हो! और दूसरे हाथ में उसके एक दीया है और दीये की ज्योति उसके चेहरे के दूसरे हिस्से पर पड़ रही है। और वह चेहरा ऐसा मालूम पड़ता है, जैसा बुद्ध का रहा हो, महावीर का रहा हो, क्राइस्ट का रहा हो! एक हाथ में तलवार है और एक हाथ में दीया है!
हमारी समझ में यह बात नहीं आती, क्योंकि या तो तलवार होनी चाहिए हाथ में, या दीया होना चाहिए हाथ में। दोनों चीजें एक आदमी के हाथ में कैसे हो सकती

हैं? तो उनकी समझ में कुछ नहीं पड़ता था। उन्होंने मुझे आकर कहा कि मैं बड़ा परेशान हूं, यह मामला क्या है?
मैंने कहा कि यह जो दीया है, यह उसी आदमी के हाथ में हो सकता है, जिसके हाथ में तलवार की चमक भी हो सकती है! जिसके पास तलवार पकड़ने का, तलवार चलाने का सवाल नहीं है--तलवार चलाते तो कमजोर लोग हैं, भयभीत लोग हैं; लेकिन जिनकी जिंदगी एक तलवार हो जाती है, वे तलवार नहीं चलाते। उन्हें तलवार चलाने की जरूरत नहीं रह जाती। उनकी पूरी जिंदगी एक तलवार होती है। तो जिसके हाथ में तलवार है, उससे यह मत समझ लेना कि वे तलवार चलाने वाले ही हैं, कि किसी की हत्या करेगा, काटेगा! क्योंकि हत्या तो वही करता है, जो अपनी हत्या से डरता है, अन्यथा कोई हत्या नहीं करता। हिंसक तो सिर्फ भयभीत ही होता है। तलवार तो अहिंसक के हाथ में ही हो सकती है। असल में अहिंसक एक तलवार ही होता है। खुद ही एक तलवार होता है, तो ही अहिंसक हो सकता है; नहीं तो नहीं हो सकता।
लेकिन यह जो दीया है, यह जो शांति का दीया है, यह उसी के हाथ में शोभा पा सकता है, और उसी के हाथ में हो सकता है केवल, जिसके प्राणों में वीर्य की तलवार भी पैदा हो गयी हो--ऊर्जा की, शक्ति की तलवार भी पैदा हो गयी हो। तो एक तरफ

व्यक्तित्व पूरी शक्तिमत्ता से भर जाये और दूसरी तरफ पूरी शांति से, तो ही परिपूर्ण व्यक्ति, इंटीग्रेटेड पर्सनेल्टी जिसको हम कहें, जिसे हम पूर्ण योग कहें, वह उत्पन्न होता है। अब तक दुनिया में दो तरह की बातें हुई हैं। या तो लोगों ने दीये हाथ में रख लिये हैं और बिल्कुल कमजोर हो गये हैं। इतने कि उनका कोई दीया फूंक दे, तो वह इनकार भी नहीं कर सकते कि आप हमारा दीया क्यों फूंक रहे हैं। वे सोचेंगे कि बेचारा चला जाये तो हम फिर जला लेंगे, या नहीं गया तो अंधेरे में ही रह लेंगे, ऐसा भी क्या हर्जा है। लेकिन कौन झंझट करे। तो एक तो दीया बचाने वाले ऐसे लोग हैं, कि जिनको दीया बचाने की भी जिनके पास कोई सामर्थ्य नहीं है।
भारत ऐसे ही कमजोर कौमों में से एक कमजोर कौम हो गयी है। और यह कमजोर कौम इसलिए हुई कि हमने जीवन की शक्ति के वास्तविक केंद्र तो विकसित नहीं किये। हमने केवल बुद्धि के पास बैठकर गीता कंठस्थ कर ली और महावीर के वचन याद कर लिये और बैठकर व्याख्या करने लगे। और उपनिषद याद करने लगे और गुरु-शिष्य बैठे हैं और जमाने भर की फिजूल की बातों पर बातें कर रहे हैं, जिनका जीवन से कोई संबंध नहीं है। यह हम सारा मुल्क, पूरी

की पूरी कौम कमजोर हो गयी है, दीन-हीन हो गयी है, नपुंसक हो गयी है।
और दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं, जिन्होंने दीये की फिक्र ही छोड़ दी, सिर्फ तलवार लेकर चलाने में लग गये। फिर वह उनके पास दीया न होने से अंधेरे में दिखता नहीं कि वह किसको काट रहे हैं--अपने लोगों को काट रहे हैं कि दूसरों को काट रहे हैं। वे काटे चले जाते हैं! और कोई दीया-विया जलाने की बात कहे, तो कहते हैं, बकवास मत करो। जितनी देर में दीया जलायेंगे उतनी देर में तलवार नहीं चला लेंगे। और जिस धातु से दीया बनायेंगे, उससे एक तलवार और बन जायेगी। इतना तेल कौन खराब करे, इतनी धातु कौन खराब करे। जिंदगी तो तलवार चलाना है।
तो पश्चिम के लोग अंधेरे में ही तलवार चलाये जा रहे हैं। और पूर्व के लोग बिना तलवार लिये दीया लिये बैठे हुए हैं। वे दोनों रो रहे हैं। सारी दुनिया रो रही है। ठीक आदमी पैदा नहीं हो सका है। ठीक आदमी एक जीवंत तलवार भी होता है और एक शांति का दीया भी होता है। ये दोनों बातें जिस व्यक्तित्व में फलित होती हैं, उस व्यक्ति को ही मैं योगी कहता हूं, और किसी व्यक्ति को योगी नहीं कहता।
इस पहले सूत्र पर आज हमने बात की है। इस संबंध में आपके मन में बहुत से

प्रश्न उठने जरूरी हैं, उठने चाहिए। वे प्रश्न आप लिखेंगे तो रात मैं उनकी बात कर सकूंगा। फिर कल हम दूसरे सूत्रों पर चर्चा शुरू करेंगे। इसलिए आज इस संबंध में ही प्रश्न पूछें और किसी संबंध में नहीं। फिर कल दूसरे संबंध में बात होगी, तब उस संबंध में प्रश्न पूछ लें। परसों तीसरे संबंध में बात होगी, तब उस संबंध में प्रश्न पूछ लें।
तो जो मैंने कहा है, उस संबंध में ही पूछेंगे तो ठीक होगा। और अगर कुछ ऐसे प्रश्न हों, जो कि इन तीनों दिनों में संबंधित न हों, तो अंतिम दिन आप उनको पूछ लेंगे। तो अंतिम दिन हम उन पर बात कर सकेंगे।
दोपहर की बैठक पूरी हुई।

अंतर्यात्रा-सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन
प्रवचन-3
नाभि-यात्रा: सम्यक आहार-श्रम-निद्रा

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य का जीवन कैसे आत्म-केंद्रित हो, कैसे वह स्वयं का अनुभव कर सके, कैसे आत्म-उपलब्धि हो सके, इस दिशा में आज दिन की दो चर्चाओं में थोड़ी-सी बात हुई है। कुछ बातें और पूछी गयी हैं। उन्हें समझने के लिए मैं तीन सूत्रों पर और अभी आपसे बात करूंगा। जो प्रश्न आज की चर्चा से संबंधित नहीं हैं, उनकी कल और

परसों आपसे बात करूंगा। जो प्रश्न आज की चर्चा से संबंधित हैं, उन्हें मैं तीन सूत्रों में बांटकर आपसे बात करता हूं।
पहली बात--मनुष्य स्वनिष्ठ, आत्म-केंद्रित या नाभि के केंद्र से जीवन की प्रक्रिया को कैसे शुरू करे? तीन और सूत्र महत्वपूर्ण हैं, जिनके माध्यम से नाभि पर सोयी हुई ऊर्जा जाग सकती है और नाभि के द्वार से मनुष्य शरीर से भिन्न जो चेतना है, उसके अनुभव को उपलब्ध हो सकता है। उनमें तीन सूत्रों को पहले आपसे कहूं, फिर उनकी आपसे बात करता हूं। पहला सूत्र है, सम्यक व्यायाम। दूसरा सूत्र है, सम्यक आहार। और तीसरा सूत्र है, सम्यक निद्रा। जो व्यक्ति ठीक-ठीक श्रम से, ठीक-ठीक आहार से, और ठीक-ठीक निद्रा से वंचित हो जाता है, वह कभी भी नाभि-केंद्रित नहीं हो सकता है। और इन तीनों ही चीजों से मनुष्य-जाति वंचित हो गयी है!
मनुष्य अकेला प्राणी है, जिसके आहार का कोई ठिकाना नहीं रहा है। बाकी सभी प्राणियों के आहार सुनिश्चित हैं। उनकी मूल प्रवृत्ति, उनकी प्रकृति निर्धारित करती है कि वे क्या खायें और क्या न खायें, और कितना खायें और कितना न खायें, और कब खायें और कब खाने से रुक जायें। लेकिन मनुष्य बिल्कुल ही

इनडिटर्मिनेट है, वह बिल्कुल अनिश्चित है। न तो उसकी प्रकृति कुछ कहती है कि वह क्या खाये। न उसका बोध कहता है कि वह कितना खाये। न उसकी समझ कोई निर्धारण करती है कि वह कब रुक जाये। ये कोई भी बातें मनुष्य की सब निर्धारित न होने से मनुष्य का जीवन बहुत अनिश्चित दिशाओं में प्रवृत्त हुआ है। लेकिन थोड़ी भी समझ हो, थोड़ी भी बुद्धिपूर्वक, थोड़े भी विचार से, थोड़े भी आंख खोलकर आदमी जीना शुरू करे, तो आहार को सम्यक कर लेना जरा भी कठिन नहीं है, अत्यंत आसान बात है। उससे ज्यादा आसान कोई बात नहीं हो सकती। सम्यक आहार को दो-तीन टुकड़ों में बांटकर समझ लेना चाहिए। पहली तो बात--मनुष्य क्या खाये, क्या न खाये? शरीर तो रासायनिक तत्वों से निर्मित होता है। शरीर की सारी प्रक्रिया तो अत्यंत रासायनिक, अत्यंत केमिकल है। अगर एक आदमी के भीतर शराब डाल दी जाये, तो शरीर उस रसायन के प्रति प्रवृत्त होगा--नशे से, मूर्च्छा से भर जायेगा। फिर चाहे वह व्यक्ति कितना ही स्वस्थ, कितना ही शांत क्यों न हो, नशे की रासायनिकता उसके शरीर पर परिणाम लायेगी। चाहे वह व्यक्ति कितना ही साधु क्यों न हो, जहर उसे पिला दिया जाये तो उसकी मृत्यु हो जायेगी।

सुकरात की मृत्यु जहर के पिला देने से हो गयी और गांधी की मृत्यु एक गोली के मार देने से हो गयी। गोली यह नहीं देखती है कि यह आदमी साधु है या असाधु है। और जहर भी यह नहीं देखता है कि यह आदमी सुकरात है या कोई साधारण-जन है। न ही नशे यह देखते हैं, न भोजन यह देखता है कि आप कौन हैं और क्या हैं। उसके तो सीधे सूत्र हैं, वह शरीर की केमिस्ट्री में, शरीर के रसायन में जाकर काम करना शुरू कर देता है। ऐसा कोई भी भोजन जो मादक है, मनुष्य की चेतना में बाधा डालना शुरू करता है।
ऐसा कोई भी भोजन जो उत्तेजक है, मनुष्य की चेतना को नुकसान पहुंचाना शुरू करता है। ऐसा कोई भी भोजन जो मनुष्य को किसी भी तरह की मूर्च्छा में, उत्तेजना में, किसी भी तरह की तीव्रता में, किसी भी तरह के विक्षेप में ले जाता हो, वह सभी नुकसान करता है। और उस सबका अंतिम नुकसान और गहरे से गहरा नुकसान नाभि-केंद्र पर पहुंचना शुरू हो जाता है।
यह शायद आपको ख्याल न हो, सारी दुनिया में नेचरोपैथी, या नैसर्गिक उपचार-- मिट्टी की पट्टियों का, शाकाहारी भोजन का, हल्के भोजन का, पानी की पट्टियों का, टब-बाथ का प्रयोग करते हैं। लेकिन किसी भी नेचरोपैथ को अभी यह ख्याल में बात

नहीं आयी है कि पानी की पट्टियों का, मिट्टी की पट्टियों का, या टब-बाथ का जो भी परिणाम होता है, वह पानी का उतना नहीं है, न मिट्टी का उतना है, बल्कि नाभि-केंद्र के ऊपर उनका जो परिणाम होता है, उसके कारण वे सारे प्रभाव पड़ते हैं। वे प्रभाव न तो मिट्टी के हैं उतने, न पानी के हैं, न टब-बाथ के हैं। लेकिन ये सारी चीजें नाभि-केंद्र की छिपी हुई ऊर्जा को जिस भांति प्रभावित करती हैं और वह यदि जाग्रत हो जाये तो मनुष्य के जीवन में स्वास्थ्य का अवतरण शुरू हो जाता है।
लेकिन अभी नेचरोपैथी को इसका कोई ख्याल नहीं है। वे सोचते हैं कि शायद मिट्टी की पट्टी चढ़ाने से यह फायदा हो रहा है, पानी में बिठाने से यह फायदा हो रहा है, पेट पर कपड़े की गीली पट्टी लगाने से यह फायदा हो रहा है! इसके फायदे हैं, लेकिन मौलिक फायदा तो नाभि- केंद्र के सुप्त केंद्रों के जागरण से शुरू होता है। यह जो नाभि-केंद्र है, इसके ऊपर अगर अनाचार किया जाये, इस नाभि-केंद्र के ऊपर अगर गलत आहार, गलत भोजन किया जाये तो वह धीरे-धीरे केंद्र सुप्त होता है और उसकी ऊर्जा क्षीण होती है। वह धीरे-धीरे केंद्र सोता है। अंततः वह करीब-करीब सो जाता है। उसका हमें कोई पता ही नहीं चलता कि वह भी कोई

केंद्र है। हमें फिर दो ही केंद्रों का पता चलता रहता है। एक तो मस्तिष्क है, जहां विचार दौड़ते रहते हैं और एक थोड़े हृदय में, जहां भावनाएं दौड़ती रहती हैं। उसके नीचे हमारे कोई संबंध नहीं रह जाते। जितना हल्का आहार होगा, जितना कम बोझिल आहार होगा, शरीर के ऊपर जो बोझ न लाता हो, उतना ही कीमती और अर्थपूर्ण आपकी अंतर्यात्रा प्रारंभ होगी।
तो सम्यक आहार का पहला तो ध्यान रखना यह है कि वह उत्तेजक न हो, मादक न हो, वह भारी न हो। ठीक भोजन के बाद आपको बोझिलता और भारीपन अनुभव नहीं होना चाहिए। लेकिन शायद भोजन के बाद हम सभी को भारीपन और बोझिलता अनुभव होती है। तो हम गलत भोजन कर रहे हैं, यह हमें जान लेना चाहिए।
एक बहुत बड़े डाक्टर ने, केनेथवाकर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं अपने जीवन-भर के अनुभव से यह कहता हूं कि लोग जो भोजन करते हैं, उसमें से आधे भोजन से उनका पेट भरता है और आधे भोजन से हम डाक्टरों का पेट भरता है। अगर वे आधा भोजन करें तो वे बीमार ही नहीं पड़ेंगे, और हम डाक्टरों की कोई जरूरत न रह जायेगी।
कुछ लोग इसलिए बीमार रहते हैं कि उन्हें पूरा भोजन नहीं मिलता। और कुछ लोग इसलिए बीमार रहते हैं कि उन्हें

ज्यादा भोजन मिल जाता है। कुछ लोग भूख से मरते हैं, कुछ लोग भोजन से मरते हैं! और भोजन से मरने वालों की संख्या भूख से मरने वालों की संख्या से हमेशा ज्यादा रही है। भूख से मरने वाले बहुत कम लोग हैं। एक आदमी भूखा भी रहना चाहे तो कम से कम तीन महीने तक उसके मरने की बहुत कम संभावना है। तीन महीने तक तो कोई भी आदमी भूखा रह सकता है। लेकिन एक आदमी अगर तीन महीने तक अति भोजन करे, तो कोई हालत में जिंदा नहीं रह सकता है। लेकिन ऐसे-ऐसे लोग हुए हैं कि जिनका ख्याल ही हमें हैरानी से भर देता है। नीरो हुआ है एक बहुत बड़ा बादशाह। उसने दो डाक्टर लगा रखे थे कि वह भोजन करने के बाद उसे वामिट करवा दें, उसे उल्टी करवा दें, ताकि दिन में वह कम से कम पंद्रह-बीस बार भोजन करने का आनंद ले सके। तो वह खाना खाता, फिर दवा देकर उसे उल्टी करवा दी जाती, ताकि वह फिर से भोजन का आनंद ले सके!
हम भी क्या कर रहे हैं? उसने डाक्टर घर रख छोड़े थे, वह बादशाह था। हमने पड़ोस में बसा रखे हैं, हम बादशाह नहीं हैं। वह रोज उल्टी करवा लेता था, हम दो-चार महीने में करवाते हैं, लेकिन हम करवाते क्या हैं? हम गलत खाकर इकट्ठा कर लेते हैं, फिर डाक्टर उसको साफ करता है। फिर हम गलत खाना शुरू कर देते हैं। वह

होशियार आदमी था, उसने रोज ही व्यवस्था कर ली थी। हम दो-तीन महीने में करते हैं। अगर हम भी बादशाह होते तो हम भी ऐसे ही करते। यह हमारी मजबूरी है, हमारे पास इतनी सुविधा नहीं है, तो हम इतना नहीं कर पाते। नीरो पर हमें हंसी आती है, लेकिन हम सब छोटी-मोटी मात्रा में नीरो से भिन्न नहीं हैं।
यह जो--यह जो हमारी असम्यक दृष्टि है भोजन के प्रति, यह भारी पड़ती चली जा रही है। यह बहुत महंगी पड़ती चली जा रही है। और यह उस जगह हमको पहुंचा दिये है, जहां कि हम किसी तरह जिंदा हैं। भोजन हमारा हमें स्वास्थ्य लाता हुआ नहीं मालूम प.ड़ता, बल्कि भोजन बीमारी लाता हुआ मालूम पड़ता है। और जब भोजन बीमारी लाने लगे तो आश्चर्य की घटना शुरू हो गयी। यह वैसे ही है कि सूरज सुबह निकले और अंधकार हो जाये। यह उतनी ही आकस्मिक और आश्चर्यजनक घटना है। लेकिन दुनिया के सारे चिकित्सकों का मत यह है कि आदमी की अधिकतम बीमारियां उसके गलत भोजन की बीमारियां हैं।
पहली बात--प्रत्येक व्यक्ति को इस संबंध में बहुत बोध और होश से चलना चाहिए--साधक के लिए मैं कह रहा हूं यह-- साधक को यह ध्यान में रखना जरूरी है कि वह क्या खाता है, कितना खाता है और उसके परिणाम उसके शरीर पर क्या हैं? और अगर

एक आदमी दो-चार महीने ध्यानपूर्वक प्रयोग करे, तो वह अपने योग्य, अपने शरीर को समता और शांति और स्वास्थ्य देने वाले भोजन की तलाश जरूर कर लेगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन हम ध्यान ही नहीं देते हैं, इसलिए हम कभी तलाश ही नहीं कर पाते। हम कभी खोज ही नहीं पाते।
दूसरी बात--भोजन के संबंध में, जो हम खाते हैं, उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि हम उसे किस भाव-दशा में खाते हैं। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। आप क्या खाते हैं, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना यह महत्वपूर्ण है कि आप किस भाव-दशा में खाते हैं। आप आनंदित खाते हैं, या दुखी, उदास और चिंता से भरे हुए खाते हैं। अगर आप चिंता से खा रहे हैं, तो श्रेष्ठतम भोजन के परिणाम भी पायजनस होंगे, जहरीले होंगे। और अगर आप आनंद से खा रहे हैं, तो कई बार संभावना भी है कि जहर भी आप पर पूरे परिणाम न ला पाये। बहुत संभावना है। आप कैसे खाते हैं, किस चित्त दशा में?
रूस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक था पीछे--पावलव। उसने जानवरों पर कुछ प्रयोग किये और वह उस नतीजे पर पहुंचा, जो बड़े हैरानी का है। वह कुछ कुत्तों पर प्रयोग कर रहा था, कुछ बिल्लियों पर प्रयोग कर रहा था। उसने एक बिल्ली को

भोजन दिया और सामने उसके एक्स-रे मशीन लगा रखी थी, जिससे वह देख रहा था कि उस-- उस बिल्ली के पेट में क्या हो रहा है भोजन के बाद। भोजन पेट में गया और भोजन के जाते ही पेट ने उस भोजन को पचाने वाले रस छोड़े। तभी एक कुत्ते को भी खिड़की के भीतर ले आया गया। कुत्ता भौंका, बिल्ली देखकर डर गयी और एक्स-रे की मशीन ने बताया कि उसके रस भीतर छूटने बंद हो गये! पेट बंद हो गया, सिकुड़ गया! फिर कुत्ते को बाहर निकाल दिया गया, लेकिन छह घंटे तक पेट उसी हालत में पड़ा रहा! फिर भोजन के पचाने की क्रिया शुरू नहीं हुई! और छह घंटे में भोजन सब शांत हो गया। और छह घंटे के बाद जब रस छूटने शुरू हुए तो वह भोजन सब ठंडा हो चुका था। उस भोजन को पचाना कठिन हो गया। बिल्ली के मन में चिंता पकड़ गयी कुत्ते की मौजूदगी और पेट ने अपना काम बंद कर दिया।
हमारी हालत क्या होगी? हम तो चिंता में ही चौबीस घंटे जीते हैं। तो हम जो भोजन करते होंगे, वह कैसे पच जाता है यह मिरेकल है, यह बिल्कुल चमत्कार है। यह भगवान कैसे करता है, हमारे बावजूद करता है यह। हमारी कोई इच्छा उसके पचने की नहीं है। यह कैसे पच जाता है, यह बिल्कुल आश्चर्य है! और हम कैसे जिंदा रह लेते हैं, यह भी एक आश्चर्य है!

भावदशा--आनंदपूर्ण, प्रसादपूर्ण निश्चित ही होनी चाहिए।
लेकिन हमारे घरों में हमारे भोजन की जो टेबल है या हमारा चौका जो है, वह सबसे ज्यादा विषादपूर्ण अवस्था में है। पत्नी दिन भर प्रतीक्षा करती है कि पति कब घर खाने आ जाये। चौबीस घंटे का जो भी रोग और बीमारी इकट्ठी हो गयी है, वह पति की थाली पर ही उसकी निकलती है। और उसे पता नहीं कि वह दुश्मन का काम कर रही है। उसे पता नहीं, वह जहर डाल रही है थाली में।
और पति भी घबराया हुआ, दिन भर की चिंता से भरा हुआ थाली पर किसी तरह भोजन को पेट में डालकर हट जाता है! उसे पता नहीं है कि एक अत्यंत प्रार्थनापूर्ण कृत्य था, जो उसने इतनी जल्दी में किया है और भाग खड़ा हुआ है। यह कोई ऐसा कृत्य नहीं था कि जल्दी में किया जाये। यह उसी तरह किये जाने योग्य था, जैसे कोई मंदिर में प्रवेश करता है, जैसे कोई प्रार्थना करने बैठता है, जैसे कोई वीणा बजाने बैठता है। जैसे कोई किसी को प्रेम करता है और उसे एक गीत सुनाता है। यह उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण था। वह शरीर के लिए भोजन पहुंचा रहा था। यह अत्यंत आनंद की भावदशा में ही पहुंचाया जाना चाहिए। यह एक प्रेमपूर्ण और प्रार्थनापूर्ण कृत्य होना चाहिए।

जितने आनंद की, जितने निश्चिंत और जितने उल्लास से भरी भावदशा में कोई भोजन ले सकता है, उतना ही उसका भोजन सम्यक होता चला जाता है।
हिंसक भोजन यही नहीं है कि कोई आदमी मांसाहार करता हो। हिंसक भोजन यह भी है कि कोई आदमी क्रोध से आहार करता हो। ये दोनों ही वायलैंट हैं, ये दोनों ही हिंसक हैं। क्रोध से भोजन करते वक्त, दुख में, चिंता में भोजन करते वक्त भी आदमी हिंसक आहार ही कर रहा है। क्योंकि उसे इस बात का पता ही नहीं है कि वह जब किसी और का मांस लाकर खा लेता है, तब तो हिंसक होता ही है, लेकिन जब क्रोध और चिंता में उसका अपना मांस भीतर जलता हो, तब वह जो भोजन कर रहा है, वह भी अहिंसक नहीं हो सकता है। वहां भी हिंसा मौजूद है।
सम्यक आहार का दूसरा हिस्सा है कि आप अत्यंत शांत, अत्यंत आनंदपूर्ण अवस्था में भोजन करें। और अगर ऐसी अवस्था न मिल पाये, तो उचित है कि थोड़ी देर भूखे रह जायें, उस अवस्था की प्रतीक्षा करें। जब मन पूरा तैयार हो, तभी भोजन पर उपस्थित होना जरूरी है। कितनी देर मन तैयार नहीं होगा? मन के तैयार होने का अगर ख्याल हो, तो एक दिन मन भूखा रहेगा, कितनी देर भूखा रहेगा? मन को तैयार होना पड़ेगा। मन तैयार हो जाता है, लेकिन हमने

कभी उसकी फिक्र नहीं की है। हमने भोजन डाल लेने को बिल्कुल मेकेनिकल, एक यांत्रिक क्रिया बना रखी है कि शरीर में भोजन डाल देना है और उठ जाना है। वह कोई साइकोलाजिकल प्रोसेस, वह कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं रही है। यह घातक बात है।
शरीर के तल पर सम्यक आहार स्वास्थ्यपूर्ण हो, अनुत्तेजनापूर्ण हो, अहिंसक हो और चित्त के आधार पर आनंदपूर्ण चित्त की दशा हो, प्रसादपूर्ण मन हो, प्रसन्न हो, और आत्मा के तल पर कृतज्ञता का बोध हो, धन्यवाद का भाव हो। ये तीन बातें भोजन को सम्यक बनाती हैं।
मुझे भोजन उपलब्ध हुआ है, यह बहुत बड़ी धन्यता है। मुझे एक दिन और जीने को मिला है, यह बहुत बड़ा ग्रेटिट्यूट है। आज सुबह मैं फिर जीवित उठ आया हूं। आज फिर सूरज ने रोशनी दी है। आज फिर चांद मुझे देखने को मिलेगा। आज मैं फिर जीवित हूं। जरूरी नहीं था कि मैं आज जीवित होता। आज मैं कब्र में भी हो सकता था, लेकिन आज मुझे फिर जीवन मिला है। और मेरे द्वारा कुछ भी कमाई नहीं की गयी है, जीवन पाने को। जीवन मुझे मुफ्त में मिला है। इसके लिए कम से कम धन्यवाद का, मन में अनुग्रह का, ग्रेटिट्यूट का कोई भाव होना चाहिए।

भोजन हम कर रहे हैं, पानी हम पी रहे हैं, श्वास हम ले रहे हैं, इस सबके प्रति अनुग्रह का बोध होना चाहिए। समस्त जीवन के प्रति, समस्त जगत के प्रति, समस्त सृष्टि के प्रति, समस्त प्रकृति के प्रति, परमात्मा के प्रति एक अनुग्रह का बोध होना चाहिए कि मुझे एक दिन और जीवन का मिला है। मुझे एक दिन और भोजन मिला है। मैंने एक दिन और सूरज देखा। मैंने आज और फूल खिले देखे। आज मैं और जीवित था।
रवींद्रनाथ की मृत्यु आयी, उसके दो दिन पहले उन्होंने कहा--उन्होंने कहा कि हे परमात्मा, मैं कितना अनुगृहीत हूं, कैसे कहूं! तूने मुझे जीवन दिया, जिसे जीवन पाने की कोई भी पात्रता न थी। तूने मुझे श्वासें दीं, जिसके श्वास पाने का कोई अधिकार न था। तूने मुझे सौंदर्य के, आनंद के अनुभव दिये, जिनके लिए मैंने कोई भी कमाई न की थी। कि मैं धन्य रहा हूं और तेरे बोझ से, अनुग्रह के बोझ से डूब गया हूं। और अगर तेरे इस जीवन में मैंने कोई दुख पाया हो, कोई पीड़ा पायी हो, कोई चिंता पायी हो, तो वह मेरा कसूर रहा होगा। तेरा जीवन तो बहुत-बहुत आनंदपूर्ण था। वह मेरी कोई भूल रही है। तो मैं नहीं कहता हूं तुझसे कि मुझे मुक्ति दे दे जीवन से। अगर तू मुझे फिर से योग्य समझे तो बार-बार मुझे जीवन

में भेज देना। तेरा जीवन अत्यंत आनंदपूर्ण था और मैं अनुगृहीत हूं। यह जो भाव है, यह जो कृतज्ञता का भाव है, वह समस्त जीवन के साथ संयुक्त होना चाहिए। आहार के साथ तो बहुत विशेष रूप से। तभी आहार सम्यक हो पाता है।
दूसरी बात है--सम्यक श्रम। वह भी जीवन से विच्छिन्न हो गया है, वह भी अलग हो गया है। श्रम एक लज्जापूर्ण कृत्य हो गया है, वह एक शर्म की बात हो गयी है। एक--पश्चिम के एक विचारक आल्वेयर कामू ने अपने एक पत्र में मजाक में लिखा है कि एक जमाना ऐसा भी आयेगा कि लोग अपना प्रेम भी नौकर के द्वारा करवा लेंगे। अगर किसी को किसी से प्रेम हो जायेगा, तो एक नौकर लगा देगा बीच में कि तू मेरी तरफ से प्रेम कर आ। यह संभावना किसी दिन घट सकती है। क्योंकि और सब तो हम दूसरों से करवाना शुरू कर दिये हैं, सिर्फ प्रेम भर एक बात रह गयी है, जो हम खुद ही करते हैं।
प्रार्थना हम दूसरे से करवाते हैं। एक पुरोहित को रखवा लेते हैं। कहते हैं, हमारी तरफ से प्रार्थना कर दो, हमारी तरफ से यज्ञ कर दो। मंदिर में एक पुजारी पाल लेते हैं, उससे कहते हैं कि तुम हमारी तरफ से पूजा कर दो। प्रार्थना और पूजा भी हम नौकरों से करवा लेते हैं! तो कोई आश्चर्य नहीं है कि जब परमात्मा से

प्रेम का कृत्य हम नौकरों से करवा लेते हैं, तो कोई बहुत कठिन नहीं है कि किसी दिन समझदार आदमी अपना प्रेम भी नौकरों से करवा लें। इसमें कौन-सी कठिनाई है? और जो नहीं नौकरों से करवा सकेंगे, वे लज्जित होंगे कि हम गरीब आदमी हैं, हमको खुद ही अपना प्रेम करना पड़ता है। ठीक भी है, यह संभव हो सकता है। क्योंकि जीवन में और बहुत कुछ महत्वपूर्ण है, जो हमने नौकरों से करवाना शुरू कर दिया है! और हमें इस बात का पता ही नहीं है कि उसको खोकर हमने क्या खो दिया है।
सारे जीवन की जो भी शक्ति है, वह सब खो गयी है! क्योंकि मनुष्य का शरीर, मनुष्य के प्राण किसी विशिष्ट श्रम के लिए निर्मित हैं और उस सारे श्रम से उसे खाली छोड़ दिया गया है। सम्यक श्रम भी मनुष्य की चेतना और ऊर्जा को जगाने के लिए अनिवार्य हिस्सा है।
अब्राहम लिंकन एक दिन सुबह-सुबह अपने घर बैठा अपने जूतों पर पालिश करता था। उसका एक मित्र आया और उस मित्र ने कहा, लिंकन यह क्या करते हो? तुम खुद ही अपने जूतों पर पालिश करते हो? तो लिंकन ने कहा, तुमने मुझे हैरानी में डाल दिया। तुम क्या दूसरों के जूतों पर पालिश करते हो? मैं अपने ही जूतों पर पालिश कर रहा हूं। तुम क्या दूसरों के जूतों पर पालिश करते हो? उसने कहा कि नहीं, नहीं

मैं तो दूसरों से करवाता हूं। लिंकन ने कहा, दूसरों के जूतों पर पालिश करने से भी बुरी बात यह है कि तुम किसी आदमी से जूते पर पालिश करवाओ।
इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि जीवन से सीधे संबंध हम खो रहे हैं। जीवन के साथ हमारे सीधे संबंध श्रम के संबंध हैं। प्रकृति के साथ हमारे सीधे संबंध हमारे श्रम के संबंध हैं। कन्फ्यूशियस के जमाने में--कोई तीन हजार वर्ष पहले--कन्फ्यूशियस एक गांव में घूमने गया था। उसने एक बगीचे में एक माली को देखा। एक बूढ़ा माली कुएं से पानी खींच रहा है। बूढ़े माली का कुएं से पानी खींचना बड़ा कष्टपूर्ण है। वह बूढ़ा लगा हुआ है पानी को... जहां बैल लगाये जाते हैं, वहां बूढ़ा लगा हुआ है और उसका जवान लड़का लगा हुआ है। वे दोनों पानी खींच रहे हैं! वह बूढ़ा बहुत बूढ़ा है। कन्फ्यूशियस को ख्याल हुआ कि क्या इस बूढ़े को अब तक पता नहीं है कि बैलों या घोड़ों से पानी खींचा जाने लगा है। यह खुद ही लगा हुआ खींच रहा है। यह कहां के पुराने ढंग को अख्तियार किये हुए है। तो वह बूढ़े आदमी के पास कन्फ्यूशियस गया और उससे बोला कि मेरे मित्र! क्या तुम्हें पता नहीं है, नयी ईजाद हो गयी है। लोग घोड़े और बैलों को जोतकर पानी खींचते हैं, तुम खुद लगे हुए हो?

उस बूढ़े ने कहा, धीरे बोलो, धीरे बोलो! क्योंकि मुझे तो कुछ खतरा नहीं है, लेकिन मेरा जवान लड़का न सुन ले। कन्फ्यूशियस ने कहा, तुम्हारा मतलब? "मुझे सब ईजाद का पता है, लेकिन सब ईजाद आदमी को श्रम से दूर करने वाली है। और मैं नहीं चाहता कि मेरा लड़का श्रम से दूर हो जाये। क्योंकि जिस दिन वह श्रम से दूर होगा, उसी दिन जीवन से भी दूर हो जायेगा।"
जीवन और श्रम समानार्थक हैं। जीवन और श्रम एक ही अर्थ रखते हैं। लेकिन धीरे- धीरे हम उनको धन्यभागी कहने लगे हैं, जिनको श्रम नहीं करना पड़ता है और उनको अभागे कहने लगे हैं, जिनको श्रम करना पड़ता है! और यह हुआ भी। एक अर्थ में बहुत-से लोगों ने श्रम करना छोड़ दिया, तो कुछ लोगों पर बहुत श्रम पड़ गया। बहुत श्रम प्राण ले लेता है। कम श्रम भी प्राण ले लेता है। इसलिए मैंने कहा, सम्यक श्रम। श्रम का ठीक-ठीक विभाजन। हर आदमी के हाथ में श्रम होना चाहिए। और जितनी तीव्रता से और जितने आनंद से और जितने अहोभाव से कोई आदमी श्रम के जीवन में प्रवृत्त होगा, उतना ही पायेगा कि उसकी जीवन-धारा मस्तिष्क से उतरकर नाभि के करीब आनी शुरू हो गयी है। क्योंकि श्रम के लिए मस्तिष्क की कोई जरूरत नहीं होती। श्रम के लिए हृदय की

भी कोई जरूरत नहीं होती। श्रम तो सीधा नाभि से ही ऊर्जा को ग्रहण करता है और निकलता है।
थोड़ा श्रम, ठीक आहार के साथ-साथ थोड़ा श्रम अत्यंत आवश्यक है। और यह इसीलिए नहीं कि यह किसी और के हित में है कि आप गरीब की सेवा करें तो यह गरीब के हित में है, कि आप जाकर गांव में खेती-बाड़ी करें, तो यह किसानों के हित में है, कि आप कोई श्रम करेंगे, तो बहुत बड़ी समाज-सेवा कर रहे हैं। झूठी हैं ये बातें। यह आपके हित में है और किसी के हित में नहीं है। किसी और के हित का इससे कोई संबंध नहीं है। किसी और का हित इससे हो जाये, वह बिल्कुल दूसरी बात है, लेकिन यह आपके हित में है।
चर्चिल रिटायर हो गया था पीछे, तो मेरे एक मित्र उससे मिलने गये, और उसके घर गये। वह अपनी बगिया में उस बुढ़ापे में खोदकर कुछ पौधे लगा रहा था। तो मेरे मित्र ने उनसे कुछ राजनीति के प्रश्न पूछे। चर्चिल ने कहा, "छोड़ो भी। वह बात खतम हो गयी। अगर अब मुझसे कुछ पूछना है, तो दो चीजों के बाबत पूछ सकते हो। अगर बाइबिल के बाबत कुछ पूछना है, तो घर में पढ़ता हूं और बागवानी के संबंध में पूछना है, तो इधर मैं बागवानी करता हूं। बाकी अब राजनीति के संबंध में मुझे कोई... कोई मतलब नहीं है। हो गयी वह दौड़

खतम। अब मैं श्रम कर रहा हूं और प्रार्थना कर रहा हूं।"
तो लौटकर मुझसे कहने लगे कि मेरी कुछ समझ में नहीं आया कि चर्चिल कैसा आदमी है। मैं सोचता था, कुछ उत्तर देगा वह। उसने कहा, अब मैं श्रम कर रहा हूं और प्रार्थना कर रहा हूं।
मैंने उनसे कहा, उसने दो शब्द पुनरुक्त किये, रिपीटीशन किया। श्रम और प्रार्थना एक ही अर्थ रखते हैं, दोनों पर्यायवाची हैं। और जिस दिन श्रम प्रार्थना हो जाता है और जिस दिन प्रार्थना श्रम बन जाती है, उस दिन सम्यक श्रम उपलब्ध होता है।
थोड़ा श्रम अत्यंत आवश्यक है। लेकिन श्रम की तरफ ध्यान नहीं गया। नहीं गया भारत के संन्यासियों का भी ध्यान, क्योंकि उन्होंने श्रम से अपने हाथ अलग खींच लिये। श्रम करने का उन्हें सवाल नहीं था। वे दूर हट गये। धनपति इसलिए दूर हट गया कि उसके पास धन था, वह श्रम खरीद सकता था। संन्यासी इसलिए दूर हट गये कि उन्हें संसार से कुछ लेना-देना न था, उन्हें कुछ पैदा न करना था, पैसा न कमाना था, उन्हें श्रम की जरूरत क्या थी। परिणाम यह हुआ कि समाज के दो आदरणीय वर्ग श्रम से दूर हट गये। तो श्रम जिनके हाथ में रह गया, वे धीरे-धीरे अनादरणीय हो गये।

श्रम का--साधक की दृष्टि से कह रहा हूं मैं--अत्यंत बहुमूल्य अर्थ और उपादेयता है। इसलिए नहीं कि उससे आप कुछ पैदा कर लेंगे, बल्कि इसलिए कि जितना आप श्रम में प्रवृत्त होंगे, आपकी चेतना-धारा केंद्रीय होने लगेगी, मस्तिष्क से नीचे उतरनी शुरू होगी। उत्पादक ही हो श्रम यह भी जरूरी नहीं है। अनुत्पादक भी हो सकता है। व्यायाम भी हो सकता है। लेकिन, कुछ श्रम शरीर की पूरी स्फूर्ति और प्राणों की पूरी सजगता के लिए और चित्त की पूरी जागृति के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह दूसरा हिस्सा है।
लेकिन इस हिस्से में भी भूल हो सकती है। जैसी भोजन के हिस्से में भूल होती है, या तो कोई कम भोजन करता है या कोई ज्यादा भोजन कर लेता है। वैसी भूल यहां भी हो सकती है। या तो कोई श्रम नहीं करता है या फिर ज्यादा श्रम कर सकता है। पहलवान ज्यादा श्रम कर लेते हैं। वह रुग्ण अवस्था है। पहलवान कोई स्वस्थ आदमी नहीं है। पहलवान शरीर पर अति भार डाल रहा है और शरीर के साथ बलात्कार कर रहा है। तो शरीर के साथ बलात्कार किया जाये, तो शरीर के कुछ अंग, कुछ मसल्स अधिक विकसित हो सकते हैं। लेकिन कोई पहलवान ज्यादा नहीं जीता! कोई पहलवान स्वस्थ नहीं मरता! यह आपको पता है?

चाहे गामा हो, चाहे सैंडो हो, चाहे दुनिया के कोई बड़े से बड़े शरीर के पहलवान हों, वे सभी अस्वस्थ मरते हैं, जल्दी मरते हैं और खतरनाक बीमारियों से मरते हैं। शरीर के साथ बलात्कार मसल्स को फुला सकता है, शरीर को दर्शनीय बना सकता है, एग्जीबीशन के योग्य बना सकता है, लेकिन एग्जीबीशन, प्रदर्शन और जिंदगी में बड़ा फर्क है। जीने में और स्वस्थ होने में और प्रदर्शन-योग्य होने में बड़ा फर्क है।
न तो कम और न ज्यादा--हर व्यक्ति को खोज लेना चाहिए अपने योग्य, अपने शरीर के योग्य कि वह कितना श्रम करे कि ज्यादा स्वस्थ और ताजा जी सके। जितनी ताजगी होगी, जितनी भीतर स्वस्थ हवा होगी, जितनी श्वास-श्वास आनंदपूर्ण होगी, उतना ही जीवन आंतरिक होने में सक्षम होता है।
सिमनबैल ने, एक फ्रेंच विचारिका ने एक बड़ी अदभुत बात अपनी आत्म-कथा में लिखी है। उसने लिखा है कि मैं तीस वर्ष की उम्र तक हमेशा बीमार थी। मेरे सिर में दर्द था, अस्वस्थ थी। लेकिन यह तो मुझे चालीस साल की उम्र में पता चला कि मैं तीस साल तक साथ-साथ नास्तिक भी थी। और जब मैं स्वस्थ हुई तो मुझे पता नहीं कि मैं कब आस्तिक हो गयी। और यह तो बाद में सोचने पर मुझे दिखायी पड़ा कि मेरे

बीमार और रुग्ण होने का संबंध भी मेरी नास्तिकता से था।
जो आदमी रुग्ण और बीमार है, वह परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भरा हुआ नहीं हो सकता। उसके मन में थैंकफुलनेस नहीं हो सकती परमात्मा के प्रति। उसके मन में क्रोध ही होता है। और जिसके प्रति क्रोध हो, उसको स्वीकार करना असंभव है। और जिसके प्रति क्रोध हो, वह तो न हो, यही भावना होती है कि वह न हो। अगर जीवन ठीक श्रम और ठीक व्यायाम पर एक विशिष्ट स्वास्थ्य के संतुलन को नहीं पाता है, तो आपके चित्त में जीवन के मूल्यों के प्रति एक निषेध का भाव, एक निगेटिव वैल्यु, एक विरोध का भाव, एक विद्रोह का भाव होना स्वाभाविक है। सम्यक श्रम परम आस्तिकता की सीढ़ियों में एक अनिवार्य सीढ़ी है।

तीसरी बात है सम्यक निद्रा। भोजन अव्यवस्थित हुआ है, श्रम अराजक हो गया है और निद्रा की तो बिल्कुल ही हत्या की गई। मनुष्य जाति की सभ्यता के विकास में सबसे ज्यादा जिस चीज को हानि पहुंची है वो निद्रा है। जिस दिन से आदमी ने प्रकाश की ईजाद की उसी दिन से निद्रा के साथ उपद्रव शुरू हो गया है। और फिर जैसे-जैसे आदमी के हाथ में साधन आते गए उसे ऐसा लगने लगा कि निद्रा एक

अनावश्यक बात है। समय खराब होता है, जितनी देर हम नींद में रहते हैं, वह समय फिजूल जाता है। तो जितनी कम नींद से चल जाये उतना अच्छा। क्योंकि नींद का भी कोई जीवन की गहरी प्रक्रियाओं में दान है, कन्ट्रीब्यूशन है, ये तो ख्याल में नहीं आता। नींद का समय तो व्यर्थ गया। तो जितने कम समय सो लें उतना अच्छा। जितने जल्दी ये नींद से निपटारा हो जाये उतना अच्छा।
एक तरफ तो इस तरह के लोग थे जिन्होंने नींद को कम करने की दिशा शुरू की। और दूसरी तरफ साधु-सन्यासी थे। उनको ऐसा लगा कि नींद जो है, मूर्च्छा जो है ये शायद आत्मज्ञान की या आत्मवस्था की उलटी अवस्था है। तो निद्रा लेना ठीक नहीं है। तो जितनी कम नींद ली जाये उतना ही अच्छा है। साधुओं को एक और कठिनाई थी कि उन्होंने बहुत से सप्रेशन इकट्ठे कर लिए, बहुत से दमन इकट्ठे कर लिए, नींद में उनके दमन उठ के दिखाई पड़ने लगे, सपनों में आने लगे। तो नींद से भय पैदा हो गया। क्योंकि नींद में वे सारी बातें होने लगी जिनको दिन में उन्होंने अपने से दूर रखा है। जिन स्त्रियों को छोड़ के वे जंगल में भाग आए, नींद में वे स्त्रियां मौजूद होने लगीं, वे सपनों में दिखाई पड़ने लगीं। जिस धन को, जिस यश को छोड़ के वे चले आए थे, वह सपनों में

उनका पीछा करने लगा। तो उन्हें ऐसा लगा कि नींद तो बड़ी खतरनाक है, हमारे वश के बाहर है। जितनी कम नींद हो उतना अच्छा। तो साधुओं ने सारी दुनिया में एक हवा पैदा की, कि नींद कुछ गैर-आध्यात्मिक, अन-स्पिरिचुअल घटना है। यह अत्यंत मूढ़तापूर्ण बात है।
एक तरफ वे लोग थे जिन्होंने नींद का विरोध किया- क्योंकि उन्हें ऐसा लगा फिजूल है नींद, इतनी सोने की क्या जरूरत है? जितनी देर हम जागेंगे उतना ही ठीक है। क्योंकि गणित और हिसाब लगाने वाले, स्टैटिक्स जोड़ने वाले लोग बड़े अदभुत होते हैं! उन्होंने हिसाब लगा लिया कि एक आदमी आठ घंटे सोता है तो समझो कि दिन का तिहाई हिस्सा तो सोने में चला गया। और एक आदमी अगर साठ साल जीता है तो बीस साल तो फिजूल गए, बीस साल बिल्कुल बेकार चले गए। साठ साल की उम्र चालीस साल की ही रह गई। फिर उन्होंने और हिसाब लगा लिया कि एक आदमी कितनी देर में खाना खाता है, कितनी देर में कपड़े पहनता है, कितनी देर में दाढ़ी बनाता है, कितनी देर स्नान में लगाता है। सब हिसाब लगाकर उन्होंने बताया कि इस प्रकार सारी जिन्दगी बेकार चली जाती है।
वे हर चीज का समय घटाते चले गए... पता चला कि दिखाई पड़ता है कि आदमी साठ साल जीआ, बीस साल नींद में चले गए, कुछ साल

स्नान करने में चले गए, कुछ खाना खाने में चले गए, कुछ अखबार पढ़ने में चले गए। सब बेकार चला गया। जिन्दगी में कुछ बचता नहीं। उन्होंने एक घबराहट पैदा कर दी कि जितनी जिन्दगी बचानी हो उतना इनमें कटौती करो। नींद सबसे ज्यादा समय ले लेती है आदमी का, तो इसमें कटौती कर दो। एक उन्होंने कटौती करवाई और सारी दुनिया में एक नींद विरोधी हवा फैला दी।
दूसरी तरफ साधु-संन्यासियों ने नींद को अन-स्पिरिचुअल कह दिया, कि गैर-आध्यात्मिक है। तो कम से कम सोओ। वो उतना ज्यादा साधु है जो जितना कम सोता है। बिल्कुल न सोओ तो परम साधु! इन दो बातों ने नींद की हत्या की। और नींद की हत्या के साथ ही मनुष्य के जीवन के सारे गहरे केन्द्र हिल गए, अव्यवस्थित हो गए, अपरूटेड हो गए। हमें पता ही न चला कि मनुष्य के जीवन में जो इतना अस्वास्थ आया, इतना असंतुलन आया; इसके पीछे निद्रा की कमी काम कर गई। जो आदमी ठीक से नहीं सो पाता वो आदमी ठीक से जी ही नहीं सकता।
निद्रा फिजूल नहीं हैं। आठ घंटे व्यर्थ नहीं जा रहे। बल्कि आठ घंटे आप सोते हैं इसीलिए आप सोलह घंटे जाग पाते हैं। नहीं तो आप सोलह घंटे जाग नहीं सकते। वो आठ घंटों में जीवन-ऊर्जा

इकट्ठी होती है, प्राण पुनर्जीवित होते हैं; आपके मस्तिष्क के और हृदय के केन्द्र शांत हो जाते हैं और नाभि के केन्द्र से जीवन चलता है आठ घंटे तक। निद्रा में आप वापिस प्रकृति के और परमात्मा के साथ एक हो गए होते हैं इसलिए प्राण पुनर्जीवित होते हैं। अगर किसी आदमी को सताना हो, टॉर्चर करना हो तो उसे नींद से रोकना सबसे बढ़िया तरकीब है- हजारों सालों में ईजाद की हुई। उससे आगे नहीं बढ़ा जा सका अब तक। अभी भी रूस में या हिटलर ने जर्मनी में जिन कैदियों को सताया उनमें सबसे सताने की जो तरकीब काम में लाई गई वो नींद। सोने मत दो किसी कैदी को। बस उसकी जिन्दगी में इतना टॉर्चर पैदा हो जाता है जिसका हिसाब लगाना संभव नहीं! तो कैदियों के पास आदमी लगा छोड़े थे। सबसे पहले चीनियों ने ईजाद की थी ये बात- आज से दो हजार साल पहले कि वो आदमी को सोने नहीं देते थे जिसको सताना है। उन्होंने बड़ी सस्ती तरकीब निकाली थी। एक कोठरी में उसको खड़ा कर देते थे। कोठरी इतनी सकरी होती थी कि वो हिलडुल नहीं सकता था, न बैठ सकता था, न लेट सकता था और उसके सिर पर बूंद-बूंद पानी टपकाते रहते ऊपर से। तो टप, टप, टप... वो उसके सिर पर पड़ता रहता था। वो हिलडुल सकता नहीं, बैठ सकता नहीं, लेट सकता नहीं। ज्यादा से ज्यादा

बारह घंटे, सोलह घंटे, अठारह घंटे और आदमी चिल्लाने लगता, चीखने लगता कि मैं मर जाऊंगा, मुझे बचाओ, मुझे बाहर निकालो। वो कहते फिर बता दो जो बातें तुम छिपा रहे हो। तीन दिन में ज्यादा से ज्यादा साहस वाला आदमी भी थक जाता। जर्मनी में हिटलर ने और स्टेलिन ने भी रूस में यही किया लाखों लोगों के साथ कि उनको जगाए रखो, उनको सोने मत दो। इससे ज्यादा टॉर्चर किया नहीं जा सकता। किसी आदमी की हत्या कर दो, उस वक्त इतनी पीड़ा नहीं होती जितनी उस आदमी को न सोने दो। क्योंकि सो कर ही वो जो खोया है उसे वापिस पाता है। और अगर न सो पाया, न सो पाया, न सो पाया... तो खोता चला जाता है और वापिस कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। वो रिक्त और खाली हो जाता है, एंप्टी हो जाता है।
हम सब लोग करीब-करीब खाली जैसी हालत में हैं। क्योंकि उपलब्ध करने के द्वार हमारे बंद और खोने के द्वार हमारे बढ़ते चले गए। नींद वापिस लौटानी जरूरी है। और अगर सौ, दो सौ वर्षों के लिए सारी दुनिया में कोई कानूनी व्यवस्था की जा सके कि आदमी को मजबूरी में सो ही जाना पड़े, कोई और उपाय न रहे तो मनुष्य जाति के मानसिक स्वास्थ के लिए इससे बड़ा कोई कदम नहीं उठाया जा सकेगा।

साधु के लिए तो बहुत ध्यान देना जरूरी है कि वो ठीक से सोए और काफी सोए।
ये भी समझ लेना जरूरी है कि सम्यक निद्रा हर आदमी के लिए अलग होगी, सभी आदमियों के लिए बराबर नहीं होगी। क्योंकि हर आदमी के शरीर की जरूरत अलग है, उम्र की जरूरत अलग है और कई दूसरे तत्व हैं जिनकी जरूरतें अलग हैं। बच्चा जब मां के पेट में होता है वो चौबीस घंटे सोता है। क्योंकि उस वक्त बच्चे के सब स्नायु बन रहे होते हैं। पूरी नींद की जरूरत है। चौबीस घंटे सोया रहेगा तो ही ठीक से शरीर उसका विकसित हो पाएगा। जो बच्चे लंगड़े-लूले पैदा हो जाते हैं या काने या अंधे; हो सकता है बीच-बीच में जग जाते हों या और कोई गड़बड़ हो जाती हो। हो सकता है किसी दिन विज्ञान इस बात को समझ पाए कि जो बच्चे मां के पेट में ही किसी तरह से जग जाते हैं वो बच्चे अपंग हो जाएंगे, उसके कोई अंग विकसित होने से वंचित रह जाएंगे। चौबीस घंटे पेट में सोया रहना जरूरी है क्योंकि पूरा शरीर निर्मित होता है, पूरा शरीर विकसित होता है। नींद बहुत गहरी जरूरी है तभी शरीर की सारी क्रियाएं काम कर सकती हैं।
फिर बच्चा पैदा होता है, तो वह बीस घंटे सोता है। अभी उसका शरीर बन रहा है। फिर वह अठारह घंटे सोता है, फिर चौदह

घंटे सोता है। अभी उसका शरीर बन रहा है। जैसे-जैसे उसका शरीर परिपक्व होता चला जाता है, वैसे-वैसे नींद कम हो जाती है। आखिर में वह आठ घंटे और छह घंटे के करीब थिर हो जाती है। फिर बूढ़े आदमी की नींद कम हो जाती है और पांच घंटे, चार घंटे भी हो जाती है, तीन घंटे भी हो जाती है, क्योंकि बूढ़े आदमी के शरीर में फिर बनने का उपक्रम बंद हो जाता है। फिर उसे वापिस रोज उतनी नींद की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि अब उसकी मृत्यु करीब आ रही है। अगर वह उतना ही सोता रहे जितना बच्चा सोता है तो बूढ़ा आदमी भी मर नहीं सकता है, मरना मुश्किल हो जायेगा। मरने के लिए जरूरी है कि नींद कम होती चली जाये। और जीवन के लिए जरूरी है कि नींद गहरी हो।
इसलिए बूढ़ा आदमी क्रमशः कम सोने लगता है। बच्चा ज्यादा सोता है। लेकिन अगर बूढ़े भी बच्चों के साथ वही व्यवहार करें जो खुद के साथ करते हैं तो खतरा हो जाता है। और बूढ़े अकसर करते हैं। बूढ़े बच्चों को भी बूढ़ा समझकर व्यवहार करते हैं। उनको भी उठाते हैं कि उठो! तीन बज गये, चार बज गये, उठो! उनको पता नहीं कि तुम बूढ़े हो, तुम चार बजे उठ गये हो, यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन बच्चे चार बजे नहीं उठ सकते और उठाना गलत है। बच्चे की शरीर की प्रक्रियाओं को नुकसान

पहुंचाना है। बच्चे के साथ बहुत अहितकर है यह बात।
एक बच्चा मुझसे कह रहा था कि मेरी मां भी बड़ी अजीब है। जब रात को मुझे नींद नहीं आती है, तब जबरदस्ती मुझे सुलाती है और जब मुझे नींद आती है सुबह, तब जबरदस्ती मुझे उठाती है। मेरी कुछ समझ में नहीं आता है कि जब मुझे नींद नहीं आती है, तब मुझे सुलाया जाता है, और जब मुझे नींद आती है तब मुझे उठाया जाता है! वह मुझसे बोला कि मेरी मां को आप समझा दें, दुनिया को आप समझाते हैं। मेरी मां की कुछ समझ में आ जाये, यह उल्टा ही क्यों करती है?
बच्चों के साथ बूढ़ों जैसा व्यवहार निरंतर होता है, हमें ख्याल ही नहीं है। और फिर किताबों में लिखे हुए, बंधे हुए सूत्र हैं, स्टैंडर्ड सूत्र हैं, उनके अनुसार आदमी जीने लगता है!
आपको शायद पता न हो, नवीनतम खोजबीन यह कहती है कि हर आदमी के लिए उठने का समय भी एक नहीं हो सकता। जैसा हमेशा कहा जाता है कि पांच बजे उठ आना सबके लिए हितकर है। यह बात बिल्कुल ही अवैज्ञानिक और गलत है। सबके हित में नहीं है, कुछ लोगों के हित में हो सकता है, कुछ लोगों के अहित में हो सकता है। चौबीस घंटे में कोई तीन घंटे के लिए शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है हर

आदमी का। और जिन तीन घंटों में तापमान नीचे गिरता है, वे ही तीन घंटे उसके लिये सबसे गहरी नींद के घंटे होते हैं। अगर उन तीन घंटों में उसे उठा दिया जाये तो उसका दिन भर खराब हो जायेगा। उसकी सारी ऊर्जा अस्त-व्यस्त हो जायेगी। आमतौर से ये घंटे दो और पांच के बीच में होते हैं रात को। अधिकतम लोगों के ये तीन घंटे रात के दो बजे से लेकर और पांच बजे के बीच में होते हैं, लेकिन सभी के नहीं होते हैं। किन्हीं का छह बजे तक तापमान नीचे होता है। किन्हीं का सात बजे तक तापमान नीचे होता है। किन्हीं का चार बजे तापमान वापस लौटना शुरू हो जाता है। तो यह तापमान के बीच में अगर कोई उठ जायेगा तो उसके चौबीस घंटे खराब होंगे और दुष्परिणाम होंगे। जब उसका तापमान फिर से उठने लगता है, गिरा हुआ तापमान वापस उठने लगता है, तभी उठने का वक्त है।
आमतौर से यह ठीक है कि आदमी सूरज के उगने के साथ उठ आये, क्योंकि सूरज के उगने के साथ ही सबका तापमान बढ़ना शुरू हो जाता है। लेकिन यह नियम है। कुछ इसके अपवाद होते हैं, जिनके लिए हो सकता है कि सूरज के थोड़ी देर बाद तक भी लेटा रहना जरूरी हो, क्योंकि हर आदमी के शरीर का तापमान अलग क्रम से, अलग मात्रा से उठता है। तो हर आदमी को यह देख लेना

चाहिए कि जितनी देर सोने के बाद और जग उठने के बाद मुझे स्वस्थ मालूम होता है, वही मेरे लिए नियम है--चाहे शास्त्र कुछ भी कहते हों, गुरु कुछ भी बताते हों, किसी की सुनने की जरा भी जरूरत नहीं है। तो सम्यक-निद्रा के लिए जितनी ज्यादा से ज्यादा गहरी और लंबी नींद ले सकें, वह लेना उचित है। लेकिन नींद लेने को कह रहा हूं, बिस्तर पर पड़े रहने को नहीं कह रहा हूं। बिस्तर पर पड़े रहना नींद नहीं है। और जब आपके लिए स्वास्थ्यपूर्ण मालूम पड़े, तभी उठना आपके लिए नियम है। आमतौर से सूरज के उगने के साथ यह घटना घटनी चाहिए। लेकिन हो सकता है कुछ को न घटती हो, तो उसमें घबराने की, चिंतित होने की और अपने आपको पापी समझने की और नर्क चले जाने के डर की, कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि कई जल्दी उठने वाले भी नर्क चले जाते हैं और कई देर से उठने वाले भी स्वर्ग में निवास कर रहे हैं। कोई इससे कोई संबंध आध्यात्मिकता और गैर-आध्यात्मिकता का नहीं है। लेकिन सम्यक-निद्रा का, राइट-स्लीप का जरूर संबंध है। तो वह हर व्यक्ति को अपना आयोजन खोज लेना चाहिये। एक तीन महीने तक हर व्यक्ति को श्रम पर, निद्रा पर और आहार पर प्रयोग करने चाहिए, और देखना चाहिए कि मेरे लिए सर्वाधिक स्वास्थ्यपूर्ण, सर्वाधिक शांतिपूर्ण,

सर्वाधिक आनंदपूर्ण कौन-से सूत्र हो सकते हैं।
और प्रत्येक व्यक्ति को अपने सूत्र खोज लेने चाहिए। कोई दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं, इसलिए कोई सामान्य नियम किसी के लिए कभी लागू नहीं होता है। और जब भी कोई सामान्य नियम लागू करने की कोशिश करता है तो उसके दुष्परिणाम होते हैं। एक-एक व्यक्ति इंडीवीजुअल है। एक-एक व्यक्ति अनूठा, अद्वितीय और यूनीक है। उस जैसा वही है, उस जैसा कोई दूसरा आदमी जमीन पर कहीं भी नहीं है। इसलिए कोई नियम उसके लिए नियम नहीं हो सकता है, जब तक कि वह अपनी ही जीवन-प्रक्रिया के नियम को न खोज ले।
तो किताबें, शास्त्र और गुरु खतरनाक सिद्ध होते हैं, क्योंकि उनके पास रेडीमेड फार्मूला होते हैं, तैयार फार्मूला होते हैं। वे बता देते हैं कि इतने बजे उठना चाहिए, यह खाना चाहिए, यह नहीं खाना चाहिए, ऐसा सोना चाहिए, ऐसा करना चाहिए। यह रेडीमेड फार्मूला खतरनाक है। वे समझने के लिए ठीक हैं, लेकिन हर आदमी को अपने जीवन में, अपनी व्यवस्था खोजनी पड़ती है।
हर आदमी को अपनी साधना खोजनी पड़ती है। हर आदमी को साधना का पथ स्वयं चलकर निर्मित करना होता है। कोई राजपथ नहीं है जो बना-बनाया है, जिस पर आप गये और

चलने लगे। ऐसा कहीं कोई राजपथ नहीं है। साधना बिल्कुल पगडंडी की भांति है और वह भी ऐसी पगडंडी की भांति, जो पहले से तैयार नहीं है; आप चलते हैं, जितना चलते हैं, उतनी ही तैयार होती है। और जितना आप चल लेते हैं, उतना आगे की समझ बढ़ जाती है और आगे के लिए निर्मित हो जाती है। तो यह तीन सूत्र और ध्यान में ले लेने जरूरी हैं--सम्यक आहार, सम्यक श्रम और सम्यक निद्रा। अगर इन तीन सूत्रों पर ठीक से--ठीक-ठीक इन सूत्रों पर जीवन की गति हो तो वह जिसे मैं नाभि-केंद्र कह रहा हूं, जो कि द्वार है आत्मिक जीवन का, उसके खुलने की संभावना बहुत बढ़ जाती है। और वह खुल जाये, उस द्वार के निकट हम पहुंच जायें तो एक बहुत ही अभिनव घटना घटती है, जिसका हमें सामान्य जीवन में कोई भी अनुभव नहीं है।
सांझ को मैं यहां से गया और एक मित्र मिले और उन्होंने कहा कि आप कहते हैं, वह तो ठीक है, लेकिन जब तक हमें संतोष न मिल जाये, तब तक बड़ा मुश्किल है। मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। वे शायद सोचते हों कि मेरे कहने से संतोष मिल जायेगा तो बिल्कुल गलती में हैं और समय खराब कर रहे हैं। अपनी तरफ से जो मुझे मेहनत करनी है, वह मैं कर देता हूं। लेकिन आपकी तरफ उससे बहुत बड़ी मेहनत शेष रह जाती है। वह अगर आप नहीं करते हैं तो

मेरे कहने का कोई प्रयोजन नहीं, कोई अर्थ नहीं है।
मुझे निरंतर लोग कहते हैं कि हम यह चाहते हैं--शांति चाहते हैं, आनंद चाहते हैं, आत्मा चाहते हैं! आप तो सब चाहते हैं, लेकिन चाहने से जगत में कुछ भी नहीं मिलता है। अकेली चाह बिल्कुल इंपोटेंट है, बिल्कुल नपुंसक है, उसमें कोई शक्ति नहीं है। चाह के पीछे संकल्प और श्रम भी तो चाहिए। आप चाहते हैं यह तो ठीक है, लेकिन उस चाह के लिए आप कितना श्रम करते हैं, उस चाह के लिए आप कितने कदम उठाते हैं--आप क्या करते हैं अपनी चाह के लिए?
मेरे हिसाब में तो आप चाहते हैं, इसका एक ही सबूत है कि आप उस चाह के लिए क्या करके बताते हैं। नहीं तो कोई सबूत नहीं है कि आप चाहते भी हैं। जब कोई आदमी किसी चीज को चाहता है तो उसके लिए कुछ श्रम करके दिखाता है। वह श्रम ही इस बात की गवाही होता है कि उस आदमी ने चाहा कुछ। लेकिन आप कहते हैं कि चाहते तो हम हैं, लेकिन श्रम, उसके लिए कोई संकल्प, वह सब हमारे ख्याल में नहीं है।
अंत में एक बात और दोहरा दूं। तीन केंद्रों की मैंने बात कही है--बुद्धि का केंद्र मस्तिष्क, भाव का केंद्र हृदय। और नाभि? नाभि किसका केंद्र है? विचार का केंद्र है बुद्धि, भाव का

केंद्र है हृदय। नाभि किस का केंद्र है?--नाभि संकल्प का केंद्र है, विल पावर का केंद्र है। नाभि जितनी सजग होगी, उतना ही संकल्प तीव्र होगा, विल फोर्स तीव्र होगा। उतना ही करने की दृढ़ता और बल और आत्म-ऊर्जा उपलब्ध होगी।
या इससे उल्टा सोच लें। जितना आप संकल्प करेंगे, जितना करने का बल लेंगे, उतनी ही आपकी नाभि का केंद्र भी विकसित होगा। ये दोनों अंतर्निभर हैं, ये एक-दूसरे से संबंधित बातें हैं। जितना आप विचार करेंगे, उतनी बुद्धि विकसित होगी। जितना आप प्रेम करेंगे, उतना हृदय विकसित हेगा। जितना आप संकल्प करेंगे, उतना आपकी--आपकी अंतर ऊर्जा का केंद्रीय चक्र, वह जो केंद्रीय कमल है नाभि का, वह विकसित होगा।
एक छोटी-सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
एक फकीर--अंधा फकीर एक गांव में भीख मांग रहा था। उसके पास तो आंखें नहीं थीं, भीख मांगते हुए वह मस्जिद के द्वार पर पहुंच गया। मस्जिद के द्वार पर उसने हाथ फैलाया और मांगा कि मुझे कुछ मिल जाये, मैं भूखा हूं। पास से निकलते हुए लोगों ने कहा पागल! यह ऐसा घर नहीं है, जहां कोई भीख मिल सकेगी। यह तो मस्जिद है, यह तो मंदिर है। यहां कोई रहता ही

नहीं है, तू कहां भीख मांग रहा है, यह तो मस्जिद है, यहां कुछ भी नहीं मिलेगा, और कहीं आगे बढ़।
वह फकीर हंसने लगा। और उसने कहा कि अगर भगवान के घर से कुछ नहीं मिलेगा तो फिर किस घर से मिलेगा? यह तो अंतिम घर आ गया, भूल से मैं अंतिम मकान के सामने आ गया। अब यहां से कैसे हटूं, हटूं तो कहां जाऊं, क्योंकि इसके आगे कोई घर नहीं है। अब मैं यहीं रुक जाऊंगा और यहां से लेकर ही हटूंगा।
लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, पागल, यहां कोई रहता ही नहीं, तुझे देगा कौन? उसने कहा, यह सवाल नहीं है। लेकिन भगवान के घर से अगर खाली हाथ लौटना पड़ेगा, तो फिर हाथ कहां भरे जा सकेंगे। फिर तो कहीं हाथ नहीं भरे जा सकेंगे। अब आ ही गया हूं इस द्वार पर तो हाथ भर के ही लौटूंगा।
वह फकीर वहीं रुक गया। और एक वर्ष तक उसके हाथ वैसे ही फैले रहे और उसके प्राण वैसे ही पुकार करते रहे। और गांव के लोग उसे पागल कहने लगे। और गांव के लोग उससे कहने लगे कि तू बिल्कुल नासमझ है, तू कहां हाथ फैलाये हुए बैठा है? यहां कुछ भी मिलने को नहीं है। लेकिन वह फकीर भी एक था, वह बैठा ही रहा, बैठा ही रहा, और बैठा ही रहा!

और एक वर्ष बीत जाने के बाद उस गांव के लोगों ने देखा कि शायद उस फकीर को कुछ मिल गया है। उसके चेहरे की रौनक बदल गयी है। उसके आसपास एक शांति की हवा उठने लगी, उसके आसपास एक रोशनी खड़ी हो गयी, एक सुगंध बहने लगी। वह आदमी नाचने लगा। जिसकी आंखों में आंसू थे, वहां मुस्कुराहट आ गयी। वह जैसे मुर्दा हो गया था। इस एक वर्ष में उसके प्राण फिर से खिल उठे, वह नाचने लगा।
लोगों ने पूछा कि क्या तुम्हें मिल गया?
उसने कहा कि यह असंभव था कि न मिलता, क्योंकि मैंने तय ही कर लिया था कि या तो मिलेगा और या फिर मैं नहीं रह जाऊंगा। जो मैंने चाहा था वह मुझे उपलब्ध हो गया है। और मैंने तो शरीर के लिए रोटी चाही थी और मुझे आत्मा के लिए रोटी भी मिल गयी है। और मैंने तो शरीर की भूख मिटानी चाही थी और मेरी आत्मा की भूख भी मिट गयी है। लेकिन वे पूछने लगे कि तुझे मिला कैसे, तूने कैसे पाया? उसने कहा, मैंने कुछ भी नहीं किया, लेकिन मैंने अपनी प्यास के पीछे अपने पूरे संकल्प को खड़ा कर दिया। और मैंने कहा अगर प्यास है तो उसके साथ पूरा संकल्प भी चाहिए। मेरा पूरा संकल्प साथ था, मेरी प्यास पूरी हो गयी। मैं उस जगह पहुंच गया, जहां वह पानी मिल जाता है,

जिसे पीने से फिर कोई प्यास नहीं रह जाती।
संकल्प का अर्थ हैः जो हम चाहते हैं, जो हमें ठीक दिखायी पड़ता है, जो हमें मालूम होता है कि रास्ता है, उस पर चलने का आत्मबल भी जुटाना और साहस जुटाना और दृढ़ता जुटानी। अगर वह नहीं होती तो मेरे कहने से या किसी के कहने से कुछ भी नहीं हो सकता है। और अगर मेरे कहने से होता, तब तो बड़ी आसान बात थी। इस दुनिया में बहुत लोग हो चुके हैं, जिन्होंने बहुत अच्छी बातें कही हैं। अब तक सारी दुनिया को सब-कुछ हो गया होता। लेकिन न महावीर कुछ कर सकते हैं, न बुद्ध कुछ कर सकते हैं; न क्राइस्ट, न कृष्ण, न मुहम्मद। कोई कुछ नहीं कर सकता है, जब तक कि आप ही करने को तैयार न हों। गंगा बही जाती है, सागर भरे पड़े हैं, लेकिन आपके हाथ में पात्र ही नहीं है! और आप चिल्लाते हैं कि मुझे पानी चाहिए। गंगा कहती है, पानी है, लेकिन पात्र कहां है? आप कहते हैं, पात्र की बात मत करो, तुम तो गंगा हो, इतना पानी है इसमें, तो कुछ हमें दे दो। गंगा के द्वार बंद नहीं हैं, गंगा के द्वार खुले हैं, लेकिन पात्र तो चाहिए।
संकल्प का पात्र जहां नहीं है, वहां साधना की कोई तृप्ति, कोई संतोष कभी उपलब्ध नहीं होता है।

मेरी बातें इतनी शांति से सुनीं। आज हमारी पहले दिन की तीन बैठकें पूरी होती हैं। कल से हम दूसरे दो तत्वों पर विचार करना शुरू करेंगे। और अब इस बैठक के बाद हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे कोई दस मिनट के लिए।
रात्रि के ध्यान के संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी हैं। लेटने का उपाय हो सकेगा। लेटने का उपाय हो सकेगा... तो लेटने की जगह बन जाएगी न! पहले समझ लें और फिर रात्रि का ध्यान हम करेंगे। सुबह का ध्यान तो बैठकर करने के लिए है। सुबह तो जीवन उठता है, जागता है इसलिए बैठकर ध्यान करना उपयोगी है। और रात्रि का ध्यान तो आप बिस्तर पर जब सोने चले जाते हैं तभी बिस्तर पर सोकर ही करने का है और फिर करने के बाद चुपचाप सो जाना है। वह अंतिम है। सुबह का ध्यान प्रथम जागने के बाद। रात्रि का ध्यान अंतिम, सोने के पहले।
सोने के पहले अगर ठीक से ध्यान में उतर जायें तो सारी नींद परिवर्तित हो जाती है। पूरी नींद ध्यान बन सकती है, क्योंकि नींद के कुछ नियम हैं। इसमें पहला नियम यह है कि रात्रि में जो हमारा अंतिम विचार होता है वह हमारी निद्रा में केंद्रीय होता है, और वही सुबह उठने पर हमारा प्रथम विचार होता है।

रात्रि में सोते समय चित्त में जो अंतिम विचार होता है वह निद्रा में केंद्रीय हो जाता है, और सुबह उठते वक्त पहला विचार वही होता है। रात अगर आप क्रोध में सो गये हैं तो रात भर आपके सपने, आपका चित्त क्रोध के आसपास मंडराता रहेगा और सुबह जब आप उठेंगे तो आप पायेंगे कि पहला भाव और पहला विचार क्रोध ही आपके सामने खड़ा होगा। रात भर हम संजोते हैं उसे जिसे हम रात लेकर सो जाते हैं।
इसलिए मेरा कहना है कि रात अगर कुछ लेकर ही सोना है तो ध्यान को लेकर सो जाना चाहिए ताकि रात पूरी नींद ध्यान के आसपास, उसी शांति के आसपास मंडराती रहे। धीरे-धीरे आप कुछ ही दिनों में पायेंगे कि सपने शून्य हो जाते हैं, नींद एक गहरी नदी बन जाती है और सुबह जब आप उठते हैं छह घंटे या आठ घंटे की गहरी निद्रा के बाद--इस ध्यान के बाद फिर तो जो पहला ख्याल होता है वह भी शांति का, आनंद का और प्रेम का ही होगा।
तो सुबह की यात्रा शुरू करनी है सुबह के ध्यान से और रात्रि की यात्रा शुरू करनी है रात्रि के ध्यान से। रात्रि का ध्यान लेटकर करने का है--बिस्तर पर लेटकर करने का है। यहां हम प्रयोग के लिए अभी लेटकर के करेंगे। लेटकर तीन बातें ध्यान में लेनी हैं।

पहली बात तो, कि शरीर को बिल्कुल ही शिथिल छोड़ देना है। जैसे बिल्कुल शरीर में कोई प्राण ही न हो। इतना ढीला, इतना ढीला छोड़ देना है जैसे कोई प्राण नहीं है और तीन मिनिट तक मन में यह भाव करते रहना है कि मेरा शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है... जैसे-जैसे मन भाव करेगा, शरीर वैसा ही होता चला जायेगा।
शरीर बिल्कुल सेवक है, अनुगामी है। हम जो भी भाव करते हैं, शरीर वही करता है। अगर आप क्रोध से भरते हैं, शरीर पत्थर उठा लेता है; आप प्रेम से भरते हैं, शरीर किसी को हृदय से लगा लेता है। आप जो चाहते हैं, जो होना चाहते हैं, जो करना चाहते हैं, मन में भीतर विचार उठता है और शरीर क्रिया में उसे परिवर्तित कर देता है।
हम रोज देखते हैं यह चमत्कार घटते हुए कि भीतर विचार उठता है और शरीर उसे रूपांतरण दे देता है। हमने कभी शिथिल होने का विचार नहीं किया, अन्यथा शरीर बिल्कुल शिथिल भी हो जाता। शरीर तो इतना शिथिल हो जाता है कि पता ही नहीं चलता है कि शरीर है भी या नहीं, लेकिन थोड़े दिन के प्रयोग से यह हो जाता है। तो तीन मिनट तक सोचते रहना है, भाव करते रहना है।

अभी तो मैं आपको सुझाव दे दूंगा ताकि आपको ख्याल में आ जाये। तो जब मैं सुझाव दूं कि शरीर शिथिल हो रहा है, तो आप मन में भाव करते जायेंगे कि शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो जायेगा!
शरीर के शिथिल होते ही सांस शांत हो जायेगी। शांत होने का मतलब बंद नहीं, लेकिन धीमी, आहिस्ता और गहरी हो जायेगी। फिर तीन मिनट तक मन में भाव करना है कि मेरी श्वास भी शांत होती जा रही है, श्वास भी शिथिल होती जा रही है... तब धीरे-धीरे श्वास भी बिल्कुल शांत और सम हो जाती है। जब श्वास शांत हो जाती है और इन तीनों का संबंध है, जब शरीर शिथिल होगा तो श्वास अपने आप शांत होगी, जब श्वास शांत होगी तो मन अपने आप शांत होगा।
तो पहले हम शरीर पर शिथिलता का भाव करेंगे, उससे श्वास शांत होगी। फिर श्वास की शिथिलता का भाव करेंगे, उससे मन शांत होगा।
और फिर तीसरा सुझाव मैं आपको दूंगा कि अब आपका मन भी शांत और शून्य होता जा रहा है। ऐसा थोड़ी-थोड़ी देर तीनों सुझावों को करने के बाद दस मिनट के लिए मैं कहूंगा कि अब मन बिल्कुल शांत हो गया है तो जैसे हम सुबह बैठे रहे थे वैसे ही चुपचाप शांति में लेटे रहेंगे।

कुत्ते की आवाज आयेगी, कोई पक्षी चिल्लायेगा, कोई और कुछ आवाज होगी, उसे चुपचाप सुनते रहना, जैसे कोई सूना कमरा हो, कोई आवाज आती हो, गूंजती हो और चली जाती हो! न तो उस आवाज के लिए यह सोचना है कि यह मुझे क्यों सुनायी दे रही है, न यह सोचना है कि कुत्ता क्यों भौंक रहा है, क्योंकि आपका कुत्ते से कोई संबंध नहीं है। आपको कोई सोचने की जरूरत भी नहीं है कि क्यों भौंक रहा है। या हम ध्यान कर रहे हैं, यह दुष्ट हमारे पीछे क्यों पड़ा हुआ है, इससे भी कोई संबंध नहीं है। उस कुत्ते को आपका बिल्कुल पता नहीं कि आप ध्यान कर रहे हैं। उसे कुछ मालूम नहीं है इसका, वह बिल्कुल अनजान है, वह अपने काम में लगा हुआ है। आपसे कुछ लेना-देना नहीं है, वह भौंक रहा है--उसे भौंकने देना है। वह विघ्न नहीं है आपके लिए।
मैं एक छोटे-से गांव में ठहरा हुआ था-- एक छोटे-से विश्राम-गृह में। एक राजनीतिक नेता भी मेरे साथ ठहरे हुए थे। रात उस रेस्ट हाउस में न मालूम क्या हुआ कि गांव भर के कुत्ते इकट्ठे हो गये, वे बहुत चिल्लाने लगे। वह नेता बहुत परेशान हो गये। वह उठकर मेरे कमरे में आये और कहा कि आप सो गये हैं क्या? मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ा हुआ हूं। इन

कुत्तों को मैं दो बार भगा आया हूं, लेकिन ये वापस लौट आते हैं!
मैंने कहा, किसी को भी भगाइये, वह हमेशा वापस लौट आयेगा। कुत्ते रोज ही यहां आते होंगे। आप यह व्यर्थ का अपने मन में भाव न लें कि मेरे कारण यहां ये सब इकट्ठे हो गये हैं। उनको बिल्कुल पता भी नहीं होगा। रह गयी आपके न सोने की बात तो कुत्ते आपको नहीं जगा रहे हैं, आप खुद ही जाग रहे हैं। आप व्यर्थ ही यह सोच रहे हैं कि कुत्तों को नहीं भौंकना चाहिए। कुत्तों को भौंकने का हक है, आपको सोने का हक है। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है, इनमें कोई टकराव नहीं है। कुत्ते भौंकते रहें, आप सोते चले जायें। तो मैंने उनसे कहा कि आप स्वीकार कर लें कि कुत्ते भौंक रहे हैं। और चुपचाप सुनें, स्वीकार कर लें और स्वीकार करते ही आप पायेंगे कि कुत्तों का भौंकना भी संगीतपूर्ण हो जाता है।
फिर वे पता नहीं कब सो गये। सुबह उठकर उन्होंने कहा, पता नहीं, मैं सच में हैरान रह गया। जब कोई रास्ता नहीं रहा... पहले तो आपकी बात मुझे नहीं जंची। मेरी बात एकदम से किसी को भी नहीं जंचती है। उनको भी नहीं जंची।
लेकिन जब कोई रास्ता नहीं रहा और मजबूरी आ गयी और देखा कि अब कोई उपाय

नहीं है--या तो नींद खराब करूं या आपकी बात मानूं, दो ही विकल्प रह गये हैं। तो फिर मैंने सोचा कि कुत्ते की तरफ तो मैंने ध्यान दे दिया, अब आपकी बात पर भी ध्यान देकर देख लूं। तो फिर मैं चुपचाप लेट गया और सुनता रहा और मैंने स्वीकार कर लिया। और मुझे पता नहीं कब नींद आ गयी। और कुत्ते पता नहीं, कब तक भौंकते रहे और कब बंद हो गये। मैं सचमुच पूरी तरह रात सो पाया।
आप विरोध न करें, जो भी चारों तरफ है उसे चुपचाप सुनते रहें। यह जो चुपचाप सुनते रहना है, यह बड़ी अदभुत बात है, यह जो अप्रतिरोध है, नान-रे.जस्टेंस है, यह जो अविरोध है जीवन के प्रति, वही ध्यान में जाने का सूत्र है। तो पहले हम शिथिल होंगे, फिर हम अविरोध के भाव में चुपचाप सुनते रहेंगे। यह प्रकाश बुझा दिया जायेगा, ताकि आपको ख्याल न रह जाये कि दूसरे लोग मौजूद हैं। कुत्तों को भूलना आसान है, पास-पड़ोस के आदमियों को भूलना और भी कठिन है।

अंतर्यात्रा-सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन
प्रवचन-4
मन-साक्षात्कार के सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य का मन, उसका मस्तिष्क एक रुग्ण घाव की तरह निर्मित हो गया है। वह एक स्वस्थ केंद्र नहीं है, एक अस्वस्थ फोड़े की भांति हो गया है। और इसीलिए हमारा सारा ध्यान मस्तिष्क के आसपास ही घूमता रहता है। शायद आपको यह ख्याल न आया हो कि शरीर का जो अंग रुग्ण हो जाता है, उसी अंग के आसपास हमारा ध्यान घूमने लगता है। अगर पैर में दर्द हो तो ही पैर

का पता चलना शुरू होता है और पैर में दर्द न हो तो पैर का कोई भी पता नहीं चलता। हाथ में फोड़ा हो तो उस फोड़े का पता चलता है। फोड़ा न हो तो हाथ का कोई पता नहीं चलता है। हमारा मस्तिष्क जरूर किसी न किसी रूप में रुग्ण हो गया है, क्योंकि चौबीस घंटे हमें मस्तिष्क का ही पता चलता है और किसी चीज का कोई पता नहीं चलता।
शरीर जितना स्वस्थ होगा, उतना ही उसका बोध नहीं होगा। जो अंग अस्वस्थ होता है, उसी का बोध होता है। मस्तिष्क का ही हमें बोध होता है शरीर में, उसके आसपास ही हमारी चेतना घूमती है और जानती है और पहचानती है। जरूर वहां कोई रुग्ण घाव पैदा हो गया है। इस रुग्ण घाव से मुक्त हुए बिना, मस्तिष्क की अत्यंत अशांत और तनाव से भरी हुई स्थिति से मुक्त हुए बिना कोई व्यक्ति जीवन के केंद्र की ओर गति नहीं कर सकता है। इसलिए आज मस्तिष्क की इस स्थिति और उसमें परिवर्तन के लिए कुछ विचार हम करेंगे। पहली तो बात है, हम मस्तिष्क की स्थिति को ठीक से समझ लें। यदि दस मिनट को आप एकांत में बैठ जायें और आपके मन में जो विचार चलते हों उन्हें एक कागज पर ईमानदारी से लिख लें, तो उस कागज को आप अपने निकटतम मित्र को भी बताने को राजी न होंगे। क्योंकि आप पायेंगे,

उसमें ऐसे पागल विचार हैं जिनकी आपसे कोई भी अपेक्षा नहीं करता। आप स्वयं भी अपने से अपेक्षा नहीं करते। इतने असंगत, इतने व्यर्थ, इतने एक-दूसरे से असंबद्ध विचार हैं कि आपको प्रतीत होगा, आप पागल तो नहीं हो गये! ईमानदारी से दस मिनट आप के मन में जो भी चलता है उसे वैसा ही लिख लें तो आप खुद ही आश्चर्य से भर जायेंगे कि मेरे मन के भीतर यह क्या चलता है! मैं स्वस्थ हूं या विक्षिप्त हूं? लेकिन कभी हम दस मिनट के लिए भी मन के भीतर झांककर नहीं देखते कि वहां क्या चल रहा है। हो सकता है हम इसीलिए न झांकते हों कि हमें बहुत गहरे में इस बात का पता है कि वहां क्या चल रहा है।
शायद हम भयभीत हैं। इसीलिए आदमी
अकेले में होने से डरता है और चौबीस घंटे किसी न किसी का साथ खोजता रहता है-- कोई मित्र मिल जाये, कोई क्लब हो, कहीं भीड़ हो। नहीं कोई मिले तो अखबार मिल जाये, रेडियो मिल जाये, लेकिन अकेला कोई भी नहीं होना चाहता, क्योंकि अकेले होते से ही स्वयं की जो वास्तविक दशा है, उसकी खबरें मिलनी शुरू हो जाती हैं। दूसरे की मौजूदगी में हम दूसरे में उलझे रहते हैं और खुद का कोई भी पता नहीं चलता। दूसरे की जो तलाश है, वह अपने से दूर भागने की तलाश के सिवाय और

कुछ भी नहीं है। वह स्वयं से पलायन है, स्वयं से एस्केप है।
हम जो दूसरे लोगों में इतने उत्सुक होते हैं उसका बुनियादी कारण यह है कि हम अपने से डरते हैं। और हमें भली-भांति पता है कि अगर हमने पूरी तरह अपने को जान लिया तो हम पायेंगे कि हम बिल्कुल पागल हैं। इस स्थिति से बचने के लिए आदमी साथ खोजता हैं, संगी खोजता है, मित्र खोजता है, समाज खोजता है, भीड़ खोजता है।
एकांत से आदमी डरता है, एकांत से भयभीत होता है, क्योंकि एकांत में उसकी वास्तविक स्थिति का प्रतिफलन मिल सकता है। उसके खुद के चेहरे की छाया उसे दिखायी पड़ सकती है। और वह बहुत घबराने वाली होगी, वह बहुत डराने वाली होगी। इसलिए सुबह उठने के बाद सोने तक हम अपने से भागने के सब उपाय करते रहते हैं, कि कहीं स्वयं से मिलना न हो जाये। कहीं ऐसा न हो कि खुद से मुलाकात हो जाये। और हजारों तरकीबें आदमी ने विकसित की हैं स्वयं से भागने की। और जितनी मनुष्य की मस्तिष्क की स्थिति बिगड़ती गयी है उतने ही हमने स्वयं से भागने के लिए नये-नये आविष्कार किये हैं। अगर हम पिछले पचास वर्षों की मानसिक दशा का आकलन करें तो हम पायेंगे कि पचास वर्षों में आदमी ने स्वयं से भागने की

जितनी ईजादें की हैं, इसके पहले कभी भी नहीं की थीं। हमारे सिनेमा-गृह, हमारे रेडियो, हमारे टेलीविजन, सब स्वयं से भागने के उपाय हैं। और आदमी इतना परेशान होता जा रहा है।
मनोरंजन की इतनी खोज, स्वयं को थोड़ी देर के लिए भुलाने के लिए इतना आयोजन इसीलिए किया जा रहा है कि भीतर स्थिति बिगड़ती जा रही है। दुनिया भर में सभ्यता के बढ़ने के साथ-साथ नशों का प्रयोग बढ़ता चला गया है। और अभी नये-नये नशे खोजे गये हैं जिनकी यूरोप और अमरीका में जोर से धूम है। लिसर्जिक एसिड है, मेस्कलीन है, मारिजुआना है, सारे यूरोप और अमरीका के सारे सभ्य नगरों में, सारे शिक्षित लोगों में जोर से नये-नये नशों की खोज चल रही है कि आदमी के लिए स्वयं को भूल जाने का कोई सुव्यवस्थित उपाय होना चाहिए, नहीं तो बहुत मुश्किल हो जायेगी।
क्या कारण इस सबके पीछे होगा? क्यों हम अपने को भूलना चाहते हैं? सेल्फ-फारगेटफुलनेस के लिए, आत्म-विस्मरण के लिए हम इतने आतुर क्यों हैं? और आप ऐसा न सोचें कि सिनेमा में जाने वाले लोग ही स्वयं को भूलते हैं। मंदिर में जाने वाले भी इसीलिए मंदिर में जाते हैं, कोई फर्क नहीं है। मंदिर स्वयं को भूल जाने का पुराना उपाय है, सिनेमा नया उपाय है।

एक आदमी बैठकर राम-राम जपता रहता है, तो आप यह न सोचें कि वह कोई भिन्न काम कर रहा है। वह राम-राम के शब्द में स्वयं को भूलने की उसी भांति कोशिश कर रहा है जैसे कोई आदमी फिल्मी गीत सुनकर कर रहा हो। इन दोनों बातों में फर्क नहीं है। अपने से बाहर किसी भी चीज में उलझने
की कोशिश, वह चाहे राम हो, चाहे सिनेमा हो, चाहे संगीत हो--अपने से बाहर किसी भी चीज में उलझे रहने की कोशिश बहुत बुनियाद में, गहरे में अपने से बचने की कोशिश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह आत्म-पलायन चल रहा है और हम सब इसमें किसी न किसी रूप में संलग्न हैं। यह इस बात की सूचना है कि भीतर स्थिति बहुत बिगड़ती जा रही है और वहां झांकने का साहस भी हम खोते जा रहे हैं। वहां देखने का साहस भी हम खोते जा रहे हैं। वहां आंख ले जाने के लिए भी हम भयभीत हो गये हैं।
हम उन शुतुरमुर्गों की तरह काम कर रहे हैं जिनके बाबत आपने सुना होगा कि वे दुश्मन को देखकर रेत में मुंह छिपा कर खड़े हो जाते हैं। दुश्मन को देखना खतरनाक है। दुश्मन सामने है, शुतुरमुर्ग अपने सिर को रेत में गपा लेता है और निश्चिंत हो जाता है। क्योंकि जब दुश्मन दिखायी नहीं पड़ता तो तर्क उसका कहता है कि जो नहीं दिखाई

पड़ता वह नहीं है। लेकिन यह भूल भरा तर्क है। और शुतुरमुर्ग माफ किये जा सकते हैं, आदमी माफ नहीं किया जा सकता। नहीं दिखायी पड़ने से कोई चीज मिट नहीं जाती। दिखायी पड़ने से तो मिटने का कोई उपाय भी हो सकता है, लेकिन न दिखायी पड़ने से तो मिटने का उपाय भी नहीं किया जा सकता। हम भूलना चाहते हैं भीतर जो स्थिति है उसे। उस स्थिति को हम देखना नहीं चाहते। शायद हम मन में यह संतोष कर लेते होंगे कि जो नहीं दिखायी पड़ रहा है वह नहीं है। जो नहीं दिखायी पड़ रहा वह पूरी तरह है। न दिखायी पड़ने से न हो जाने का कोई संबंध नहीं है। और अगर दिखायी पड़ता तो शायद हम उसे बदल भी सकते। लेकिन नहीं दिखाई पड़ रहा है इसलिए हम उसे बदलने में भी असमर्थ हो गये हैं। वह भीतर बढ़ता जायेगा, एक ऐसे घाव की तरह, एक ऐसे फोड़े की तरह जिसे हमने छिपा लिया है और जिसे हम देखने को तैयार नहीं हैं।
मस्तिष्क एक फोड़ा हो गया है। अगर किसी दिन ऐसा संभव हो सका कि कोई मशीन ईजाद हो सकी और हम एक-एक आदमी के भीतर क्या चलता है उसे देखने में समर्थ हो सके तो शायद दुनिया में हर आदमी उसी क्षण आत्मघात कर लेगा। क्योंकि कोई भी इस बात के लिए तैयार नहीं होगा कि उसके भीतर क्या चलता है, उसे कोई और देख ले। यह किसी न किसी दिन संभव हो जायेगा। और

यह परमात्मा की बड़ी दया है कि उसने ऐसी खिड़की नहीं बनायी हमारे मस्तिष्क में, जिसमें से हम झांककर एक-दूसरे के भीतर क्या चलता है उसे देख लें।
आदमी भीतर दबाये बैठे हुए हैं कुछ और, बाहर वे जो कहते हैं वह बहुत और है। बाहर जो उनके चेहरे पर दिखायी पड़ता है वह कुछ और है, भीतर जो उनके चलता है वह बिल्कुल और है। हो सकता है, बाहर वे प्रेम की बातें कर रहे हों और भीतर घृणा के विचार चल रहे हों। हो सकता है, वे सुबह से मिलकर किसी आदमी से कह रहे हों कि नमस्कार! आपको देखकर बहुत आनंद हुआ। सुबह से आप मिल गये बड़ी खुशी हुई। और भीतर वे कह रहे हों कि इस दुष्ट का चेहरा सुबह से कैसे दिखायी पड़ गया! अगर एक विन्डो हो, एक खिड़की हो और हम आदमी के सिर के भीतर झांक सकें तो बड़ी मुश्किल पड़ जाये, जीना कठिन हो जाये। जिससे हम मित्रता की बातें कर रहे हों, भीतर सोच रहे हों कि यह आदमी कब खतम हो जाये। ऊपर कुछ और है, भीतर कुछ और है और भीतर की तरफ हम देखने की हिम्मत भी नहीं करते कि भीतर हम झांकें और देखें।
एक रात ऐसा हुआ। एक घर में एक मां थी और उसकी बेटी थी। और उन दोनों को रात में उठकर नींद में चलने की बीमारी और आदत थी। कोई तीन बजे होंगे रात में, तब वह मां उठी और मकान के पीछे बगिया में

पहुंच गयी। नींद में ही स्लीप वाकिंग की आदत थी, नींद में चलने की और बात करने की। वह मकान के पीछे बगिया में पहुंच गयी। उसकी लड़की भी उठी, और वह भी थोड़ी देर बाद बगिया में पहुंच गयी। जैसे ही उस बूढ़ी ने अपनी लड़की को देखा, वह जोर से चिल्लायी, "चांडाल, तूने ही मेरी युवा अवस्था छीन ली है। तूने ही मेरी जवानी छीन ली है। तू जब से पैदा हुई तब से मैं बूढ़ी होनी शुरू हो गयी। तू मेरी शत्रु है, तू न होती तो मैं अभी भी जवान होती।" उस लड़की ने जैसे ही अपनी बूढ़ी मां को देखा, वह जोर से चिल्लायी कि "दुष्ट, तेरे ही कारण मेरा जीवन एक संकट और बंधन बन गया है। मेरे जीवन के हर प्रवाह में तू रोड़े की तरह खड़ी हुई है। मेरे जीवन के लिए तू एक जंजीर बन गयी है।"
और तभी मुर्गे ने बांग दी और उन दोनों की नींद खुल गयी। बूढ़ी ने लड़की को देखते ही कहा, "बेटी! इतनी सुबह क्यों उठ आयी? कहीं तुझे सर्दी न लग जाये। चल, भीतर चल!" और उस लड़की ने जल्दी से अपनी बूढ़ी मां के पैर पड़े। सुबह से पैर पड़ने का उसका रोज का नियम था। और उसने कहा, कि "मां! तुम इतनी जल्दी उठ आयीं। तुम्हारी तबियत ठीक नहीं रहती है। इतनी जल्दी नहीं उठना चाहिए। आप चलिये और विश्राम करिये।" और नींद में उन्होंने यह कहा और जागकर उन्होंने यह कहा!

नींद में आदमी जो कहता है वह जागने के बजाय ज्यादा सच्चा होता है, क्योंकि ज्यादा भीतरी होता है। सपने में जो आप देखते हैं, वह आपकी कहीं ज्यादा असलियत है, बजाय उसके जो रोज आप बाजार और भीड़ में देखते हैं। भीड़ का चेहरा बनाया हुआ कृत्रिम चेहरा है। आप अपने गहरे में बिल्कुल दूसरे आदमी हैं।
ऊपर से आप कुछ अच्छे-अच्छे विचार चिपकाकर काम चला लेते हों, लेकिन भीतर विचारों की आग जल रही है। ऊपर से आप बिल्कुल शांत और स्वस्थ मालूम होते हो, भीतर सब अस्वस्थ और विक्षिप्त है। ऊपर से आप मुस्कुराते मालूम होते हैं, और हो सकता है कि सारी मुस्कुराहट भीतर आंसुओं के ढेर पर खड़ी हो। बल्कि बहुत संभावना यही है कि भीतर जो आंसू हैं, उनको छिपाने के लिए ही मुस्कुराहट का आपने अभ्यास कर लिया हो। आमतौर से आदमी यही करता है।
नीत्शे से किसी ने एक बार पूछा कि तुम हमेशा हंसते रहते हो! इतने प्रसन्न हो! सच में ही क्या! नीत्शे ने कहा, "अगर तुमने पूछ ही लिया है तो मैं असलियत भी बता दूं। मैं इसलिए हंसता रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। इसके पहले कि रोना शुरू हो जाये, मैं हंसी से उसको दबा लेता हूं, भीतर ही रोक लेता हूं। मेरी हंसी दूसरों को धोखा दे देती होगी कि

मैं खुश हूं। और मैं सिर्फ इसलिए हंसता हूं कि मैं इतना दुखी हूं कि हंसने से ही राहत मिल जाती है। अपने को समझा लेता हूं।"
बुद्ध को किसी ने हंसते नहीं देखा, महावीर को किसी ने हंसते नहीं देखा, क्राइस्ट को किसी ने हंसते नहीं देखा। कोई बात होनी चाहिए। शायद भीतर अब आंसू नहीं रहे जिन्हें छिपाने के लिए हंसने की जरूरत हो। शायद भीतर दुख नहीं रहा, जिसे ढांकने के लिए मुस्कुराहट सीखनी पड़ती हो। भीतर जो उल्टा था, वह विसर्जित हो गया है, इसलिए बाहर अब हंसी के फूल लगाने की कोई जरूरत नहीं रह गयी। जिसके शरीर से दुर्गंध आती हो उसे सुगंध छिड़कने की जरूरत होती है, और जिसका शरीर कुरूप हो उसे सुंदर दिखायी पड़ने के लिए चेष्टा करनी पड़ती है। और जो भीतर दुखी है उसे हंसी सीखनी पड़ती है, और जिसके भीतर आंसू भरे हैं उसे मुस्कुराहट लानी पड़ती है। और जो भीतर कांटे ही कांटे से भरा है उसे बाहर से फूल चिपकाने पड़ते हैं।
आदमी बिल्कुल वैसा नहीं है जैसा दिखायी पड़ता है, उससे बिल्कुल उल्टा है। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और है। और यह बाहर जो हमने चिपका लिया है इससे दूसरे धोखे में आ जाते तो भी ठीक था, हम खुद ही धोखे में आ जाते हैं। यह जो बाहर

हम दिखायी पड़ते हैं इससे दूसरे लोग धोखे में आते तो ठीक था, वह कोई बड़े आश्चर्य की बात न थी, क्योंकि लोग बाहर से ही देखते हैं। लेकिन हम खुद ही धोखे में आ जाते हैं, क्योंकि हम भी दूसरों की आंखों में अपनी बनी हुई तस्वीर को अपना होना समझ लेते हैं। हम भी दूसरों के जरिये अपने को देखते हैं, कभी सीधा नहीं देखते--जैसा कि मैं हूं, जैसा कि मेरे भीतर मेरा वास्तविक होना है। दूसरों की आंखों में बनी हुई हमारी तस्वीर हमको भी धोखा दे जाती है और इसीलिए हम भीतर देखने से डरते हैं। हम लोगों की आंखों में, हम अपनी तस्वीर देखना चाहते हैं, अपने को नहीं देखना चाहते। लोग क्या कहते हैं। इसीलिए हम इतने उत्सुक होते हैं इस बात को जानने के लिए कि लोग मेरे बाबत क्या कहते हैं। इसके जानने की उत्सुकता के पीछे और कुछ भी नहीं है। उनकी आंखों में जो मेरी तस्वीर बनती है, उससे ही मैं अपने को पहचान लूंगा कि मैं कैसा हूं। बड़े आश्चर्य की बात है! स्वयं को पहचानने के लिए भी मुझे दूसरों की आंखों में झांकना पड़ेगा।
आदमी डरता है कि मेरे संबंध में लोग कुछ बुरा तो नहीं कहते। आदमी प्रसन्न होता है, लोग अगर उसके संबंध में अच्छा कहते हैं, क्योंकि उसका खुद का अपना

ज्ञान, उनकी कही गयी बातों पर, उनके ओपीनियन पर निर्भर करता है। उसका अपना सीधा, इमीजियेट कोई ज्ञान नहीं है। उसे स्वयं अपने को जानने का सीधा-सीधा कोई अनुभव नहीं है। यह अनुभव हो सकता है, लेकिन यह अनुभव होता नहीं, हम तो इस अनुभव से बचने की कोशिश करते हैं। मस्तिष्क के संबंध में पहली बात जाननी जरूरी हैः दूसरे क्या कहते हैं-- यह नहीं; दूसरों को मैं कैसा दिखायी पड़ता हूं--यह भी नहीं; मैं कैसा हूं--इसे सीधा, इसका सीधा साक्षात, इसका सीधा एनकाउंटर करना जरूरी है। मुझे अपने एकांत में, अपने मन को पूरी तरह खोलकर देखना जरूरी है कि वहां क्या है। यह अत्यंत दुस्साहस का काम है। यह अपने हाथ से अपने भीतर छिपे हुए नर्क में प्रवेश करने का साहस है। यह अपनी नग्नता में स्वयं को देखने की हिम्मत, बड़ी हिम्मत है।
एक सम्राट था। उसके परिवार के लोग, उसके घर के लोग, उसके मित्र, उसके वजीर, सभी एक बात से बहुत हैरान थे। वह रोज महल के मध्य में बने एक कक्ष में प्रवेश करता। चाबी अपने पास ही रखता उस कक्ष की। भीतर से जाकर द्वार बंद कर लेता। और एक ही द्वार था उसमें, कोई खिड़की भी न थी। सब तरफ से दीवालें बंद थीं। एक घंटे वह रोज चौबीस घंटे में उस भवन के भीतर

रहता। न उसकी पत्नियां जानती थीं, क्योंकि उसने कभी किसी को नहीं बताया। कोई पूछता तो वह हंसकर चुप रह जाता और न वह किसी को चाबी देता था। सारे घर में विस्मय था और आश्चर्य था। और सारे लोगों की उत्सुकता निरंतर बढ़ती चली गयी, वह वहां करता क्या है! यह किसी को भी पता नहीं था कि वह वहां करता क्या है! एक घंटे वह उस बंद घर में होता था, फिर चुपचाप बाहर निकल आता, चाबी अपने पास रख लेता, दूसरे दिन फिर उस बंद घर में जाता। आखिर उत्सुकता अपनी चरम अवस्था पर पहुंच गयी और सारे घर के लोगों ने मिलकर साजिश की कि जानना ही पड़ेगा कि बात क्या है! वजीर, उसकी पत्नियां, उसके लड़के, उसकी बेटियां, सब सम्मिलित थे उस साजिश में। और उन्होंने दीवाल में रात को एक छेद किया ताकि कल सुबह वे जान सकें कि वह आदमी करता क्या है! वहां जाकर भीतर होता क्या है रोज एक घंटा! फिर दूसरे दिन जब वह सम्राट भीतर गया तो उन सबने उस छेद पर एक-एक ने आंख रखकर देखी। जिसने भी आंख रखी, वह तत्काल वहां से हट आया और कहने लगा--यह क्या कर रहे हैं! यह क्या करते हैं! लेकिन कोई भी नहीं कहता था, सम्राट वहां क्या कर रहा था। जो भी आंख छेद पर ले आता, जल्दी हट आता और कहता कि यह क्या करते हैं!

सम्राट ने वहां भीतर जाकर अपने सारे वस्त्र फेंक दिये और नग्न हो गया। और उसने हाथ आकाश की तरफ जोड़े और उसने कहा, "हे परमात्मा! वह जो कपड़े पहने हुए आदमी था, वह मेरी असलियत नहीं थी--वह मैं नहीं था--असलियत तो अब है।" और वह कूदने लगा और चिल्लाने लगा और गालियां बकने लगा और पागल की तरह व्यवहार करने लगा। तो जिसने भी आंख रखकर उस छेद पर देखा वह जल्दी हट आया और उसने कहा कि यह सम्राट क्या करते हैं! हम तो सोचते थे शायद कोई प्रार्थना करते होंगे, कोई योग-साधन करते होंगे। यह क्या करते हैं!
और वह सम्राट कहने लगा ईश्वर से कि, "वह जो मैं अब तक वस्त्र पहने हुए चुपचाप और शांत दिखायी पड़ता था वह बिल्कुल झूठा आदमी था। वह साधा हुआ आदमी था, वह कल्टीवेटेड था। वह मैंने कोशिश कर-करके बना रखा था। असली अब मैं यह हूं। यह है मेरी असलियत, यह मेरी नग्नता, और यह मेरा पागलपन! यह है मेरी असलियत। और अगर मेरी असलियत तुझे स्वीकार हो जाये तो ठीक है, क्योंकि मैं आदमियों को तो धोखा दे सकता हूं, तुझे मैं कैसे धोखा दे सकता हूं? आदमियों को तो मैं वस्त्र पहनकर दिखा सकता हूं कि मैं नग्न नहीं हूं, लेकिन तू तो जानता है भली-भांति कि मैं नग्न हूं, मैं तुझे कैसे धोखा दे सकता हूं? मैं आदमियों को

तो दिखा सकता हूं कि बहुत शांत और आनंदित हूं, लेकिन तू तो मेरे भीतर तक जानता है। तुझे मैं कैसे धोखा दे सकता हूं? तेरे सामने तो मैं एक पागल हूं।" परमात्मा के सामने हम सब एक पागल की भांति हैं। परमात्मा को छोड़ दें एक तरफ, अगर हम भी अपने भीतर आंख ले जायेंगे तो हम अपने सामने ही एक पागल की भांति प्रगट होंगे। मस्तिष्क बिल्कुल विक्षिप्त हो गया है, लेकिन इस तरफ हमारा कोई ध्यान नहीं है, इसलिए इसे बदलने का हम उपाय भी नहीं कर पाते हैं। पहली बात है, स्वयं के मस्तिष्क का सीधा साक्षात्कार। कैसे यह साक्षात्कार हो सकता है, उसके दो-तीन सूत्र समझ लेने उपयोगी हैं। फिर इस मस्तिष्क को कैसे बदला जा सकता है, उसके बाबत भी विचार किया जा सकता है। मस्तिष्क के सीधे साक्षात्कार के लिए पहली तो बात यह है कि हम सब तरह का भय छोड़ दें अपने को जानने में। भय क्या है स्वयं को जानने में? भय यह है कि कहीं हम बुरे आदमी न हों। भय यह है कि कहीं हम बुरे आदमी न हों--हम तो अपने को अच्छे आदमी बनाये हुए हैं। हम तो अच्छे आदमी दिखायी पड़ते हैं। हम तो साधु हैं, हम तो सरल चित्त हैं। हम तो ईमानदार हैं, हम तो सत्यवादी हैं। भय यह है कि कहीं भीतर यह पता न चले कि हम बेईमान हैं। भय यह है

कि कहीं यह पता न चल जाये कि हम झूठे हैं। भय यह है कि कहीं यह पता न चल जाये कि हम असाधु हैं, जटिल हैं, कपटी हैं, पाखंडी हैं। कहीं यह पता न चल जाये कि हम सज्जन नहीं हैं। भय यह है कि कहीं हम जो अपने को समझे हुए हैं वह तस्वीर झूठी न साबित हो जाये।
जिस आदमी को यह भय है, यह फियर है वह कभी मन का साक्षात नहीं कर सकता है। जंगल में जाना आसान है, अंधेरे में जाना आसान है, जंगली जानवरों के पास भी निर्भय होकर बैठ जाना आसान है, लेकिन हमारे भीतर जो जंगली आदमी छिपा है, उसके सामने निर्भय होकर खड़ा होना बहुत कठिन है, बहुत आरडुअस है, बहुत तपश्चर्यापूर्ण है। धूप में खड़े होने में कोई तपश्चर्या नहीं है, कोई भी बेवकूफ खड़ा हो सकता है। सिर के बल खड़े हो जाने में भी कोई कठिनाई नहीं है, कोई भी जड़-बुद्धि को सरकस के खेल सिखाये जा सकते हैं।
और न कांटों पर लेट जाना बहुत कठिन है--चमड़ा बहुत जल्दी तैयार हो जाता है, कांटों पर लेटने के लिए भी तैयार हो जाता है, एडजस्ट हो जाता है। लेकिन कठिनाई अगर मनुष्य के जीवन में तो कोई एक है, और वह यह है कि वह जैसा है भीतर सीधा और साफ--चाहे बुरा, चाहे पागल, उसे वैसा ही जानने की हिम्मत और साहस।

इसलिए पहली बात है भय को छा.ेडकर साहस-पूर्वक स्वयं को देखने की तैयारी। यह तैयारी जिसके पास नहीं है, वह कठिनाई में पड़ जाता है। आत्मा पाने के लिए तो हम उत्सुक होते हैं, परमात्मा के दर्शन के लिए भी उत्सुक होते हैं, लेकिन अपने सीधे और सच्चे दर्शन का साहस भी हममें नहीं है तो परमात्मा और आत्मा दूर की बातें हो जाती हैं। सबसे पहली सचाई हमारा मन है, हमारा मस्तिष्क है। सबसे पहली सचाई हमारे विचारों का केंद्र है जिससे हम निकटतम संबंधित हैं। पहले तो उसे ही देखना और जानना होगा, पहचानना होगा।
पहला सूत्र है, निर्भयता से स्वयं के मन को एकांत में जानने की कोशिश। आधा घंटे के लिए कम से कम रोज, मन जैसा है उसको वैसा ही सहज रूप से प्रगट होने का मौका देना चाहिए। बंद कर लें उस सम्राट की तरह एक कमरे में अपने को, और मन में जो भी उठता हो उसे मुक्त कर दें और उससे कहें कि जो भी तुझे सोचना है और जो भी तुझे विचारना है, वह सब उठने दें। सारा सेंसर जो हम बिठाये हुए हैं अपने ऊपर कि कोई चीज बाहर न निकल आए, वह सब छोड़ दें। और मन को एक फ्रीडम, एक मुक्ति दे दें कि जो भी उठता हो उठे, जो भी प्रगट होना चाहता हो प्रगट हो। न तो हम कुछ दबायेंगे, न हम कुछ रोकेंगे। हम तो यह

जानने को तत्पर हुए हैं कि भीतर क्या है! बुरे और भले का निर्णय भी नहीं करना है, क्योंकि निर्णय करते ही दमन शुरू हो जाता है। जिस चीज को आप बुरा कहते हैं उस चीज को मन दबाने लगता है और जिसको आप अच्छा कहते हैं उसको ओढ़ने लगता है।
तो न तो बुरा कहना है, न भला कहना है। जो भी है मन में, जैसा भी है, उसे वैसा ही जानने के लिए हमारी तैयारी होनी चाहिए। तो इस भांति अगर मन को पूरा मुक्त छोड़ दिया जाए और वह जो भी सोचना चाहता हो, वह जो भी विचारना चाहता हो, जिन भी भावों में बहना चाहता हो, उनमें उसे बहने दिया जाये। बहुत घबराहट होगी, लगेगा कि हम पागल हैं क्या?
लेकिन जो भीतर छिपा है, उसे जान लेना अत्यंत जरूरी है, उससे मुक्त हो जाने के लिए। उससे मुक्त हो जाने के लिए पहली बात उसकी जानकारी और उसकी पहचान है। और उसकी पहचान न हो, उसकी जानकारी न हो तो जिस शत्रु को हम जानते नहीं, उससे हम जीत भी नहीं सकते। उससे जीतने का कोई रास्ता नहीं है। छिपा हुआ शत्रु--पीठ के पीछे खड़ा हुआ शत्रु--खतरनाक है उस शत्रु से, जो आंख के सामने हो, जिससे हम परिचित हों, जिसे हम पहचानते हों।
पहली बात है, मन के ऊपर से सारा सेंसर, सारा प्रतिबंध, जो हमने लगा रखा है, सब तरफ से कि मन को हम कहीं उसकी सहजता में

प्रगट नहीं होने देते। मन की जितनी स्पॉनटेनिटी है, यूटिलिटी है, सब असहज हो गया है, सब झूठा कर डाला है, सब परदे ओढ़ लिये हैं, सब झूठे मुंह पहन लिये हैं, और कहीं से भी उसकी सीधी बात को हम प्रगट नहीं होने देते। उसे उसकी सीधी बात में प्रगट होने देना, अपने सामने कम से कम शुरू में, ताकि हम परिचित हो सकें मन के एक-एक अंश से, मन के जो भीतर छिपे हैं और दबा दिये गये हैं।
मन का बहुत हिस्सा अंधकार में दबाया हुआ है। वहां हम कभी दीया नहीं ले जाते। अपने ही घर के बाहर के बरामदे में जीते हैं, भीतर के सारे कमरों में अंधकार छाया हुआ है और वहां कितने कीड़े-मकोड़े और कितने जाल और कितने सांप-बिच्छू इकट्ठे हो गये हैं, इसका कोई सवाल नहीं। अंधकार में वे इकट्ठे हो ही जाते हैं। और हम डरते हैं वहां रोशनी ले जाने से, कि हमारा घर ऐसा है यह हम सोचना भी नहीं चाहते, यह हम कल्पना भी नहीं करना चाहते। यह भय छोड़ देना अत्यंत आवश्यक है, साधक के लिए।
मस्तिष्क, मन और विचारों के जगत में क्रांति लाने के लिए पहला काम है, वह भय छोड़कर, निर्भय होकर स्वयं को जानने के लिए तैयार हो जाना।
दूसरी बात है, इन में से सारा सेंसर, सारा प्रतिबंध उठा लेना। और हमने बहुत

प्रतिबंध लगा रखे हैं। हमारी शिक्षा ने, नैतिक शिक्षा ने, सभ्यता और संस्कृति ने बहुत प्रतिबंध लगा रखे हैं कि यह सोचना ही मत, इस तरह का विचार ही मत करना, यह बुरा विचार है, इसे आने ही मत देना। जब हम रोक लगा देते हैं तो बुरे विचार नष्ट नहीं हो जाते, केवल हमारे प्राणों के और गहरे में प्रविष्ट हो जाते हैं। रोक लगा देने से कोई विचार हमसे बाहर नहीं हो जाता और हमारे भीतर गहरे खून में प्रविष्ट हो जाता है। क्योंकि जिस पर हम रोक लगाते हैं वह भीतर से उठ रहा था, कहीं बाहर से नहीं आ रहा था।
ध्यान रहे, जो भी आपके मन में है वह कहीं बाहर से नहीं आ रहा है, आपके भीतर से आ रहा है। जैसे कोई झरना प्रकट हो रहा हो किसी पहाड़ से हम उसका दरवाजा बंद कर दें तो झरना इससे नष्ट नहीं हो जायेगा, और रास्ते खोजेगा पहाड़ में, और प्रवेश करेगा, और नये रास्ते खोजेगा प्रगट होने के। एक झरना होता, शायद दस झरने हो जायेंगे अब, दस टुकड़ों में धाराएं टूटकर प्रगट होने की कोशिश करेंगी। और अगर हम दस जगह से बंद कर दें तो सौ झरने हो जायेंगे।
हमारे भीतर से कुछ आ रहा है, बाहर से नहीं। तो इस पर जितनी रोक हम लगाते हैं उतना ही यह कुरूप होकर, विकृत होकर नये-

नये रास्ते लेता है, नयी-नयी ग्रंथियां निर्मित करता है, लेकिन हम निरंतर रोक लगाते रहते हैं। बचपन से ही हमारी शिक्षा की बुनियाद यह है कि मन में फलां चीज बुरी है, उसे रोक लेना है। वह रुकी हुई चीज नष्ट नहीं हो जाती, हमारे प्राणों में गहरे प्रविष्ट हो जाती है। और जितना हम रोकते जाते हैं वह उतनी ही गहरी होती चली जाती है, उतना हमें पकड़ती चली जाती है।
क्रोध बुरा है तो हम क्रोध को रोक
देते हैं। फिर क्रोध का झरना हमारे सारे खून में फैल जाता है। काम बुरा है, लोभ बुरा है, यह बुरा है, वह बुरा है। जो- जो बुरा है उसे रोक देते हैं, अंत में हम पाते हैं कि जिसे-जिसे हमने रोका था वही हम हो गये हैं। रुका हुआ, छेड़ा गया, बांधे गये बांध वे जो झरने थे, उन्हें कहां ले जायेंगे?
और मन के कुछ नियम हैं--उनमें एक नियम यह है कि जिस चीज को हम रोकना चाहते हैं, जिस चीज से हम हटना चाहते हैं, जिससे हम बचना चाहते हैं, वही चीज हमारे चित्त का केंद्र बन जाती है, वह सेंट्रल हो जाती है। जिस चीज से हम बचना चाहते हैं वह हमारे केंद्र का आकर्षण बन जाती है, मन हमारा उसके पास चक्कर काटने लगता है। आप कोशिश करके देख लें किसी चीज से बचने

की, रोकने की और आप पायेंगे, चित्त आपका वहीं घूमने लगा है।
तिब्बत में एक फकीर था मिलारेपा। उसके पास एक युवक आया और उसने कहा कि "मुझे कोई मंत्र सिद्धि करनी है, मुझे कोई शक्ति अर्जित करनी है, मुझे कोई मंत्र दे दें।" मिलारेपा ने कहा कि मंत्र हमारे पास कहां! हम तो फकीर हैं। मंत्र तो जादूगरों के पास होते हैं, मदारियों के पास होते हैं, तुम उनके पास जाओ। हमारे पास मंत्र कहां? हमारे पास सिद्धि का क्या संबंध?
लेकिन वह युवक जितना ही उस साधु ने मना किया, उतना ही उस युवक को लगा कि जरूर यहां कुछ होना चाहिए, इसीलिए यह मना करता है। जितना साधु रोकने लगा और इनकार करने लगा उतना ही वह युवक साधु के पास जाने लगा।
जो साधु डंडे से किन्हीं को भगाते
हैं, उनके पास बहुत भीड़ इकट्ठी हो जाती है। जो गाली देते हैं और पत्थर मारते हैं, उनके पास भीड़ और बढ़ जाती है। क्योंकि जरूर यहां कुछ होना चाहिए, नहीं तो यह पत्थर मारेगा और डंडे मारेगा? लेकिन हमें पता नहीं है कि चाहे अखबार में खबर निकलवाकर बुलावाया जाए लोगों को, चाहे पत्थर मारकर, तरकीब एक ही है, प्रोपेगेंडा दोनों में ही एक है। और दूसरी तरकीब ज्यादा कनिंग से भरी

है। जब पत्थर मारकर लोगों को भगाया जाये, तो लोगों के यह भी ख्याल में नहीं आता कि हमें बुलाया जा रहा है। लेकिन पत्थर मारकर भगाना भी बुलाने की विधि है। और तब आदमी आता भी है और उसे ख्याल में भी नहीं आता है कि मैं बुलाया गया। उस युवक ने समझा कि यह शायद कुछ छिपाना चाहता है, इसलिए वह और रोज आने लगा। आखिर में मिलारेपा परेशान हो गया तो उसने एक कागज पर मंत्र लिखकर दे दिया और कहा, इसे ले जाओ और आज अमावस की रात है तो अंधेरे में पांच बार इसको पढ़ लेना। बस पांच बार तुमने पढ़ लिया कि सिद्धि हो जायेगी। फिर तुम जो भी चाहते हो, वह कर सकोगे। जाओ और मेरा पीछा छोड़ो।
वह युवक भागा। उसने धन्यवाद भी नहीं दिया। वह सीढ़ियां उतर भी नहीं पाया था मंदिर की कि मिलारेपा ने कहा कि मेरे मित्र! एक बात बताना मैं भूल गया। एक कंडीशन भी है, एक शर्त भी है। जब उस मंत्र को पढ़ो तो बंदर का स्मरण नहीं आना चाहिए। उस युवक ने कहा--"बेफिक्र रहिये, आज तक जिंदगी में कभी नहीं आया। कोई आने का कारण नहीं है। पांच ही बार तो पढ़ना है न, कोई हर्जा नहीं है।"
लेकिन भूल हो गयी उससे। वह पूरी सीढ़ियां उतर भी नहीं पाया था कि बंदर आना शुरू हो गया। वह बहुत घबराया। आंख

बंद करता है तो बंदर हैं, बाहर देखता है तो जहां बंदर नहीं हैं वहां भी दिखाई पड़ते हैं, मालूम होते हैं कि बंदर हैं। रात है, वृक्षों पर हलचल होती तो लगता है कि बंदर हैं। घर पहुंचा, बहुत परेशान हुआ कि यह मामला क्या है! यह आज तक मुझे बंदर कभी ख्याल ही नहीं आया। मेरा कोई नाता-रिश्ता बंदरों से नहीं रहा, कोई पहचान नहीं रही।
घर पहुंचा, स्नान किया, लेकिन स्नान करता जा रहा है और बंदर साथ हैं। एक ही तरफ ख्याल रह गया है--बंदरों की तरफ। फिर मंत्र पढ़ने बैठता है। हाथ में कागज लेता है, आंख बंद करता है और बंदरों की भीड़ उसको चिढ़ा रही है, भीतर बंदर मौजूद हैं। वह बहुत घबरा गया। रात भर उसने कोशिश की। सब भांति करवट बदलीं, इस भांति बैठा, उस पद्मासन में बैठा, इस सिद्धासन में बैठा, भगवान के नाम लिये, हाथ जोड़े, गिड़गिड़ाया, रोया, कि पांच मिनट के लिये केवल इन बंदरों से छुटकारा दिला दो। लेकिन वे बंदर थे कि उस रात उसका पीछा छोड़ने को राजी नहीं हुए।
सुबह तक वह बिल्कुल पागल हो उठा। घबरा गया और समझ गया कि यह मामला हल होने का नहीं है। यह सिद्धि नहीं हो सकती। मैं समझता था बड़ी सरल है, साधु होशियार है। उसने शर्त कठिन लगा दी। पागल है लेकिन...

अगर बंदरों के कारण ही रुकावट होती थी तो कम से कम बंदरों का नाम न लेता। तो शायद यह मंत्र सिद्ध भी हो जाता। लेकिन सुबह वह साधु के पास गया रोता हुआ और उसने कहा, वापस ले लें अपना मंत्र। बड़ी गलती की है आपने, अगर बंदर ही इसकी रुकावट थे इस मंत्र में तो कृपा कर के कल न कहते, आज कह देते तो कोई हर्ज न होता था आपका? मुझे कभी बंदर याद भी नहीं आये थे। लेकिन रात भर बंदरों ने मेरा पीछा किया। अब अगले जन्म में आऊंगा, फिर हो सकता है कि यह मंत्र सिद्ध हो सके; क्योंकि अब इस जनम में तो यह मंत्र और बंदर संयुक्त हो गये हैं। अब इनसे छुटकारा संभव नहीं है।
यह जो बंदर संयुक्त हो गये मंत्र के साथ, यह कैसे संयुक्त हो गये? उसके मन ने आग्रह किया कि बंदर नहीं होने चाहिए और बंदर हो गये। उसके मन ने बंदरों से छूटना चाहा और बंदर मौजूद हो गये। उसका मन बंदरों से बचना चाहा और बंदर आ गये। निषेध आकर्षण है, इनकार आमंत्रण है, रोकना बुलाना है।
हमारे चित्त की जो इतनी रुग्ण दशा हो गयी है, वह इस सीधे-से सूत्र को न समझने की वजह से हो गयी है। क्रोध को हम नहीं चाहते कि आये और फिर क्रोध बंदर बन जाता है और आने लगता है। सेक्स को हम नहीं चाहते कि आये और फिर वह आता है और चित्त

को पकड़ लेता है। लोभ को हम नहीं चाहते कि वह आये, अहंकार को हम नहीं चाहते कि वह आये, फिर वे सब आ जाते हैं। और जिन-जिनको हम चाहते हैं कि परमात्मा आये, आत्मा आये, मोक्ष आये, उनका कोई पता नहीं चलता कि वे आये। जिनको हम नहीं चाहते वे आते हैं और जिन्हें हम बुलाते हैं उनकी कोई खबर नहीं मिलती है। मन के इस सीधे-से सूत्र को न समझने से सारी विकृति पैदा हो जाती है।
तो दूसरी बात ध्यान में रखने की है कि मन में क्या आये और क्या न आये, इसका कोई आग्रह लेने की जरूरत नहीं है। जो भी आये उसे हम देखने को तैयार हैं। जो भी आये, हमारी तैयारी उसे सिर्फ देखने की है। हमारा आग्रह नहीं है कि क्या आये और क्या न आये। हमारी कोई शर्त नहीं, हमारी कोई कंडीशन नहीं, अनकंडीशनल, बेशर्त हम मन को देखने के लिए तत्पर हुए। हम सिर्फ जानना चाहते हैं कि मन अपनी वस्तुस्थिति में क्या है। हमारा कोई आग्रह नहीं है कि कौन आये और कौन न आये। हमारा कोई प्रयोजन नहीं है।
दुनिया भर के विज्ञापनदाता इस सीधी- सी बात को समझते हैं, लेकिन धर्मगुरु अब तक नहीं समझ पाये। दुनिया भर के प्रोपेगेंडिस्ट इस बात को समझते हैं, लेकिन धर्मगुरु अब तक नहीं समझ पाये। और समाज को शिक्षा देने वाले लोग भी

नहीं समझ पाये। एक फिल्म के ऊपर लिख दिया जाता है, फार अडल्ट्स ओनली, सिर्फ प्रौढ़ लोगों के लिए। और बच्चे एक आने की मूंछ खरीदकर लगाकर पहुंच जाते हैं देखने के लिए। जानते हैं विज्ञापनदाता कि अगर बच्चों को बुलाना हो तो फिल्म के ऊपर लिखना जरूरी है कि सिर्फ प्रौढ़ों के लिए। स्त्रियों की पत्रिका है, "फार वीमेन ओनली"। उसको सिवाय पुरुषों के और कोई भी नहीं पढ़ता है, स्त्रियां तो कभी नहीं पढ़ती हैं। पुरुष ग्राहक हैं, मैंने पता लगवाया तो पता चला उसके अधिकतम ग्राहक पुरुष हैं! और बाजार में मैंने पत्रिका बेचने वाले एजेंटों से भी पूछा, तो उन्होंने कहा कि स्त्रियां कभी कोई मुश्किल से खरीदती हैं। स्त्रियां दूसरी पत्रिका खरीदती हैं उसका नाम है, "फार मैन ओनली।" विज्ञापनदाता इस तरकीब को समझ गये कि आदमी का मन किस बात के प्रति आकर्षित होता है, लेकिन धर्मगुरु अब तक नहीं समझे! नीतिशास्त्री अब तक नहीं समझे! वे आदमी को अब भी बेवकूफियां सिखाये जाते हैं कि तुम क्रोध मत करो, क्रोध से लड़ो। क्रोध से लड़ने, और क्रोध से बचने वाला आदमी जीवन भर क्रोध के चक्कर में रहेगा। क्रोध से कभी मुक्त नहीं हो सकता। क्रोध से वह मुक्त होता है, जो

क्रोध को जानने को उत्सुक होता है, लड़ने को उत्सुक नहीं।
दूसरा सूत्र है, मन के किन्हीं भी रूपों के प्रति संघर्ष का भाव छोड़ दें, द्वंद्व का भाव छा.ेड दें, कांफ्लिट छोड़ दें, लड़ाई छोड़ दें। सिर्फ जानने का, सिर्फ समझने का, सिर्फ अंडरस्टैडिंग का... । मैं समझ लूं यह मेरा मन क्या है? इतने सरल भाव से मन में प्रवेश करना जरूरी है--दूसरी बात!
और तीसरी बातः मन में जो भी रूप उठे, उनका कोई जजमेंट, कोई निर्णय नहीं लेना है। कोई निर्णय नहीं लेना है कि यह जो उठ रहा है यह बुरा है, यह जो उठ रहा है यह अच्छा है। हमें इस बात का पता ही नहीं है कि बुराई और अच्छाई एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां बुराई है उसके ही दूसरी तरफ अच्छाई है। जहां अच्छाई है, उसके ही दूसरी तरफ बुराई है।
अच्छे आदमी के भीतर बुरा आदमी छिपा होता है, बुरे आदमी के भीतर अच्छा आदमी छिपा होता है। अच्छे आदमी का सिक्का अच्छाई का ऊपर की तरफ है, बुराई का भीतर की तरफ है। इसलिए कभी अच्छा आदमी अगर बुरा हो जाये तो बुरे से बुरे आदमी से भी बुरा आदमी सिद्ध होगा। और कभी बुरा आदमी अच्छा हो जाये तो अच्छे आदमी उसके सामने फीके पड़ जाते हैं, क्योंकि उसके भीतर बुरे आदमियों के भीतर अच्छाई

बिल्कुल साबित छिपी रहती है, बुराई ऊपर होती है। अगर कभी वह करवट ले ले और अच्छा आदमी हो जाये, तो अच्छे आदमी फीके पड़ जाते हैं उसके सामने। बड़ी ताजी और छिपी हुई ताकत अच्छाई की उसके भीतर से प्रगट हो जाती है। वाल्मीकि या अंगुलीमाल इसी तरह के बुरे आदमी हैं जो एक दिन अच्छे आदमी हो जाते हैं तो सारे संत फीके पड़ जाते हैं उनके सामने। अच्छा और बुरा आदमी अलग-अलग नहीं है, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और इसलिए जो साधु है वह तीसरी ही तरह का आदमी है। उसके भीतर न अच्छाई होती है, न बुराई होती है, वह पूरे सिक्के को फेंक देता है। साधु अच्छा आदमी नहीं है, सज्जन संत नहीं है। सज्जन के भीतर दुर्जन छिपा ही होता है। दुर्जन के भीतर सज्जन हमेशा मौजूद होता है। संत बिल्कुल तीसरे तरह की घटना है। वह न अच्छा है, न बुरा है। वह तटस्थ हो गया है। उसका न अच्छाई से कोई संबंध है, न बुराई से। वह एक भिन्न ही दिशा में प्रविष्ट हो गया है। वहां अच्छे और बुरे का कोई सवाल नहीं है। एक फकीर था। एक युवा फकीर था जपान के एक गांव में। उसकी बड़ी कीर्ति थी, उसकी बड़ी महिमा थी। सारा गांव उसे पूजता और आदर करता। उसके सम्मान में सारे गांव में गीत गाये जाते। लेकिन एक दिन सब बात बदल गयी। गांव की एक युवती को गर्भ रह

गया और उसे बच्चा हो गया। और उस युवती को घर के लोगों ने पूछा कि किसका बच्चा है, तो उसने उस साधु का नाम ले दिया कि उस युवा फकीर का यह बच्चा है। फिर देर कितनी लगती है प्रशंसक शत्रु बनने में? कितनी देर लेते हैं? जरा सी भी देर नहीं लेते, क्योंकि प्रशंसक के मन में हमेशा भीतर तो निंदा छिपी रहती है। मौके की तलाश करती है, जिस दिन प्रशंसा खतम हो जाये उस दिन निंदा शुरू हो जाये। आदर देने वाले लोग, एक क्षण में अनादर देना शुरू कर देते हैं। पैर छूने वाले लोग, एक क्षण में सिर काटना शुरू कर देते हैं, इसमें कोई भेद नहीं है इन दोनों में। यह एक ही आदमी की दो शक्लें हैं। वे सारे गांव के लोग फकीर के झोपड़े पर टूट पड़े। इनते दिनों का सप्रेस था भीतर, इतनी श्रद्धा दी थी तो दिल में तो क्रोध इकट्ठा हो ही गया था कि यह आदमी बड़ी श्रद्धा लिये जा रहा है! आज अश्रद्धा देने का मौका मिला था तो कोई भी पीछे नहीं रहना चाहता था। उन्होंने जाकर उस फकीर के झोपड़े पर आग लगा दी। और जाकर उस बच्चे को, एक दिन के बच्चे को उस फकीर के ऊपर फेंक दिया।
उस फकीर ने पूछा कि बात क्या है? तो उन लोगों ने कहा, यह भी हमसे पूछते हो कि बात क्या है? यह बच्चा तुम्हारा है, यह भी हमें बताना पड़ेगा कि बात क्या है?

अपने जलते मकान को देखो, और अपने भीतर दिल को देखो, और इस बच्चे को देखो, और इस लड़की को देखो। हमसे पूछने की जरूरत नहीं, यह बच्चा तुम्हारा है।
वह फकीर बोला: "इज इट सो? ऐसी बात है, बच्चा मेरा है!" वह बच्चा रोने लगा तो उस बच्चे को चुप कराने के लिए गीत गाने लगा और वे लोग उसका मकान जलाकर वापस लौट गये। फिर वह अपने रोज के समय पर, दोपहर हुई और भीख मांगने निकला। लेकिन आज उस गांव में उसे कौन भीख देगा? आज जिस द्वार पर भी वह खड़ा हुआ, वह द्वार बंद हो गया। आज उसके पीछे बच्चों की टोली और लोगों की भीड़ चलने लगी, मजाक करती, पत्थर फेंकती। वह उस घर के सामने पहुंचा जिस घर की वह लड़की थी और जिस लड़की का वह बच्चा था। उसने वहां आवाज दी और उसने कहा कि मेरे लिए भीख मिले न मिले, लेकिन इस बच्चे के लिए तो दूध मिल जाये! मेरा कसूर भी हो सकता है, लेकिन इस बेचारे का क्या कसूर हो सकता है?
वह बच्चा रो रहा है, भीड़ वहां खड़ी है। उस लड़की के सहनशीलता के बाहर हो गयी बात। वह अपने पिता के पैर पर गिर पड़ी और उसने कहा, "मुझे माफ करें, मैंने साधु का नाम झूठा ही ले दिया। उस बच्चे के असली बाप को बचाने के लिए मैंने सोचा कि साधु का नाम ले दूं। साधु से मेरा कोई परिचय भी नहीं है।"

बाप तो घबरा गया। यह तो बड़ी दुर्घटना हो गयी। वह नीचे भागा हुआ आया, फकीर के पैर पर गिर पड़ा और उससे बच्चा छीनने लगा।
और उस फकीर ने पूछा, "बात क्या है?" उसके बाप ने कहा, "माफ करें, भूल हो गयी, यह बच्चा आपका नहीं है।" उस फकीर ने पूछा "इज इट सो। ऐसी बात है कि यह बच्चा मेरा नहीं है!" तो उस बाप से उस गांव के लोगों ने कहा, "पागल हो तुम! तुमने सुबह ही क्यों नहीं इनकार किया?" तो उस फकीर ने कहा, "इससे क्या फर्क पड़ता था? बच्चा किसी न किसी का होगा ही। और एक झोपड़ा तुम जला ही चुके थे। अब तुम दूसरा जलाते। और एक आदमी को तुम बदनाम करने का मजा ले ही चुके थे, तुम एक आदमी को और बदनाम करने का मजा लेते। इससे क्या फर्क पड़ता था? बच्चा किसी न किसी का होगा, मेरा भी हो सकता है; इसमें क्या हर्जा! इसमें क्या... फर्क क्या पड़ गया।" तो लोगों ने कहा, "तुम्हें इतनी भी समझ नहीं है कि तुम्हारी इतनी निंदा हुई! इतना अपमान हुआ! इतना अनादर हुआ!"
उस फकीर ने कहा, "अगर तुम्हारे आदर की मुझे कोई फिक्र होती तो तुम्हारे अनादर की भी मुझे कोई फिक्र होती। मुझे तो जैसा ठीक लगता है वैसा मैं जीता हूं, तुम्हें जैसा ठीक लगता है, तुम करते हो। कल तक तुम्हें ठीक लगता था आदर करो तो

तुम आदर करते थे। आज तुम्हें ठीक लगा, अनादर करें, तुम अनादर करते थे। लेकिन न तुम्हारे आदर से मुझे प्रयोजन है, न तुम्हारे अनादर से।" तो उन लोगों ने कहा, "भले आदमी, इतना तो सोचता कम से कम कि तू भला आदमी है और बुरा हो जायेगा।" तो उसने कहा, "न मैं बुरा हूं, और न भला हूं। अब तो मैं वही हूं, जो मैं हूं। अब मैंने यह बुरे-भले के सिक्के छोड़ दिये। अब मैंने यह फिक्र छोड़ दी है कि मैं अच्छा हो जाऊं, क्योंकि मैंने अच्छा होने की जितना कोशिश की, मैंने पाया कि मैं बुरा होता चला गया। मैंने बुराई से बचने की जितनी कोशिश की, मैंने पाया कि भलाई उतनी दूर होती चली गयी। मैंने वह ख्याल ही छोड़ दिया। मैं बिल्कुल तटस्थ हो गया। और जिस दिन मैं तटस्थ हो गया, उसी दिन मैंने पाया कि न बुराई भीतर रह गई, न भलाई भीतर रह गई। और एक नयी चीज का जन्म हो गया है, जो सभी भलाइयों से ज्यादा भली है और जिसके पास बुराई की छाया भी नहीं होती।"
तो संत एक तीसरी तरह का व्यक्ति है। साधक की दिशा सज्जन होने की दिशा नहीं है। साधक की दिशा संत होने की दिशा है। इसलिए तीसरा सूत्र है, निर्णय न लें कि कौन-सी बात मन में अच्छी उठ रही है, कौन-सी बुरी उठ रही है। न कंडेमनेशन, न एप्रिसिएशन--न प्रशंसा और न निंदा। न तो

यह कि यह बुरा है, न यह कि यह अच्छा है। मन की धारा के किनारे तटस्थ बैठ जायें, जैसे कोई नदी के किनारे बैठा हो और नदी बहती जाती है और देख रहा है--नदी में पानी भी बह रहा है, पत्थर भी बह रहे हैं, पत्ते भी बह रहे हैं, लकड़ियां भी बह रही हैं। वह चुपचाप देख रहा है किनारे बैठा हुआ।
ये तीन सूत्र सुबह की इस बैठक में मुझे आपसे कह देने थे। पहली बातः मन के साक्षात के लिए अत्यंत अभय। दूसरी बातः मन के ऊपर कोई भी प्रतिबंध नहीं-- अप्रतिबंध, बेशर्त। तीसरी बातः मन में जो विकल्प और विचार उठें उनके प्रति कोई निर्णय नहीं, कोई शुभ-अशुभ का भाव नहीं, एक तटस्थ दृष्टि। ये पहले तीन सूत्र हैं, मन की विकृति के साक्षात के लिए। फिर हम दोपहर और सांझ बात करेंगे इस विकृति के बाहर और ऊपर उठ जाने के लिए क्या किया जा सकता है, लेकिन इसमें बुनियादी बातें ख्याल में रखनी जरूरी हैं।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। सुबह के ध्यान के संबंध में दो बातें समझ लें। फिर हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे।
सुबह का ध्यान बड़ी सीधी और सरल-सी प्रक्रिया है। असल में जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वे सभी प्रक्रियाएं बड़ी

सरल और सीधी होती हैं। जीवन में जितनी व्यर्थ बात होती है, उतनी ही जटिल और कान्फ्लिक्ट होती है। जीवन में जितनी श्रेष्ठ बात होती है, अत्यंत सरल और सीधी होती है, बिल्कुल सिंपल होती है। बड़ी सीधी और सरल-सी प्रक्रिया है। इतना ही करना है कि चुपचाप बैठकर, मौन बैठकर चारों तरफ जो ध्वनियों का संसार है उसे चुपचाप सुनते रहना है। सुनते रहने के कुछ अदभुत परिणाम हैं। हम कभी सुनते ही नहीं। जब मैं यहां बोल रहा हूं तो आप सोचते होंगे, आप सुन रहे हैं तो आप बड़ी गलती में हैं। कान पर आवाज पड़ जाना ही सुनने के लिए पर्याप्त अर्थ नहीं है।
जब मैं बोल रहा हूं, अगर मेरे साथ-साथ आप सोच भी रहे हैं तो आप सुन नहीं रहे हैं, क्योंकि मन एक ही साथ एक ही क्रिया कर पाता है, दो क्रिया कभी भी नहीं। या तो आप सुन सकते हैं या सोच सकते हैं। जितनी देर आप सोचते हैं उतनी देर के लिए सुनना बंद हो जायेगा। जितनी देर आप सुनते हैं उतनी देर के लिए सोचना बंद हो जायेगा। तो जब मैं कह रहा हूं कि सुनना बड़ी अदभुत प्रक्रिया है। अगर आप सिर्फ शांति से सुनें तो भीतर सोचना अपने आप बंद हो जायेगा; क्योंकि मन के अनिवार्य नियमों में से एक है कि एक ही साथ मन दो

काम करने में असमर्थ है--एकदम असमर्थ है।
एक आदमी बीमार पड़ा था। एक वर्ष से
उसके पैर में लकवा लगा हुआ था। डाक्टर उसे कहते थे कि लकवा शरीर में मालूम नहीं पड़ता, आपके मन को भ्रम हो गया है। लेकिन वह आदमी कैसे मानता, उसे लकवा था! फिर उसके मकान में आग लग गयी और आग लगी सारे घर के लोग भागे। वह लकवे में पड़ा हुआ आदमी भी भागकर बाहर निकल आया। वह साल भर से उठा ही नहीं था अपने बिस्तर से। जब वह बाहर आ गया तभी उसे ख्याल आया कि अरे! यह क्या मामला हो गया! मैं तो उठ भी नहीं सकता था। यह पैर चले कैसे?
उस आदमी ने मुझसे पूछा तो मैंने कहा, मन एक ही साथ दो बातें नहीं सोच सकता। लकवा लगा हुआ है, यह मन का एक ख्याल था, लेकिन मकान में आग लग गयी, मन पूरी तरह मकान की आग में संलग्न हो गया और वह पहला ख्याल खिसक गया मन से कि पैर में लकवा लगा हुआ है। और आदमी भागकर बाहर आ गया। मन एक ही चीज में तीव्रता से जाग सकता है।
यह जो सुबह का प्रयोग है, वह चारों तरफ पक्षियों के, हवाओं के गीत चलते हैं, सारी दुनिया के ध्वनियों का जाल बिछा हुआ है उसको चुपचाप सुनने का है। इतनी शांति से सुनते रहने का है, एक ही बात पर ध्यान देने का है कि मैं सुन रहा हूं।

और जो भी हो रहा है उसे पूरी तरह सुन रहा हूं। टोटल लिसनिंग, कुछ भी नहीं कर रहा हूं, सिर्फ सुन रहा हूं।
मैं सुनने पर इसलिए जोर दे रहा हूं कि जैसे ही आप पूरी तरह सुनेंगे भीतर वह सोच-विचार का जो निरंतर जाल है वह एकदम शांत हो जायेगा। क्योंकि ये दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते। तो आप पूरी फिक्र सुनने की तरफ लें। और यह पाजिटिव फिक्र है।
अगर आप विचार को निकालने की कोशिश करेंगे तो जो गलती मैंने अभी आपसे कही, वह शुरू हो जायेगी। यह निगेटिव फिक्र है। विचार को निकालने की कोशिश से कभी विचार नहीं निकल सकते, लेकिन मन की जो ताकत विचार करने में लगती है अगर वह ताकत किसी और धारा में प्रवाहित हो जाये तो विचार अपने-आप क्षीण हो जाते हैं। उनको... ।
उस आदमी को उसके डाक्टर कहते थे, कि तू यह ख्याल निकाल अपने मन से कि तुझे लकवा लगा हुआ है। तुझे लकवा लगा हुआ नहीं है। शरीर तेरा ठीक है। लेकिन वह आदमी जितनी कोशिश करता होगा निकालने की कि मुझे लकवा नहीं लगा हुआ है, जितनी बार यह कहता होगा कि मुझे लकवा नहीं लगा हुआ है, उतनी ही बार लकवे की याद आयेगी। उतनी बार वह जानता है कि लकवा मुझे लगा हुआ है। अगर नहीं लगा हुआ होता तो मैं

दोहराता ही क्यों कि मुझे लकवा नहीं लगा हुआ है? वह जितनी बार दोहरायेगा कि मुझे लकवा नहीं लगा है उतनी ही बार वह अपने इस भाव को गहरा कर रहा है कि मुझे लकवा लगा हुआ है। वह मजबूत हो रहा है। इस आदमी के चित्त को डायवर्शन चाहिए था, उस आदमी को लकवे को रोकने की जरूरत नहीं थी। उसका चित्त पूरी तरह से कहीं और चला जाता तो लकवा विलीन हो जाता, क्योंकि चित्त का लकवा था। चित्त पूरा हट जाता तो लकवा विलीन हो जाता।
मकान में आग लग गयी भाग्य से। कई बार ऐसा होता है कि किन्हीं के घर में दुर्भाग्य से आग लगती है, किन्हीं के घर में भाग्य से भी आग लग जाती है। उस आदमी के घर में भाग्य से आग लग गयी थी, तो सारा मन मकान से लगी आग पर चला गया। मन हट गया उस बात से जिसको पकड़े हुए था, वह ग्रंथि विलीन हो गयी। क्योंकि वह विचार की गं्रथि थी, उससे ज्यादा कोई ग्रंथि नहीं थी। असली में वहां कोई जंजीरें नहीं थीं, केवल विचार का जाल था। पूरा मन वहां से हट गया, विचार का जाल सूखकर निर्जीव हो गया, क्योंकि विचार के जो भी प्राण हैं वह हमारे ध्यान से उपलब्ध होते हैं।
विचार में अपने आप में कोई प्राण नहीं हैं। हम जितना ध्यान देते हैं विचार पर उतना ही वह जीवंत हो जाता है। जितना

हमारा ध्यान हट जाता है उतना ही वह मुर्दा हो जाता है। अगर ध्यान बिल्कुल हट जाये, विचार निर्जीव हो जाते हैं, मर जाते हैं, उसी समय समाप्त हो जाते हैं। तो इसीलिए मैं कह रहा हूं कि सुनने पर सारे ध्यान को जाने दें। पाजिटिवली, विधायक रूप से यह ख्याल करें कि एक चिड़िया की छोटी-सी आवाज भी मेरे बिना सुने न व्यतीत हो जाये, न निकल जाये। सब सुन लूं मैं। इंटीग्रेटिव चारों तरफ जो हो रहा है, वह मुझे सुनाई में आ जाये। तो आप अचानक पायेंगे कि मन एक गहरी शांति में उतरता जा रहा है, विचार क्षीण होते चले जा रहे हैं।
एक ही काम करना है। शरीर को शिथिल छोड़कर बैठ जाना है। कल मैंने आपसे कहा था कि मस्तिष्क को पहले जोर से खींचें। शायद वह आपकी समझ में नहीं आया, उसे शिथिल छोड़ दें, उसको मत खींचें। कोई जरूरी नहीं है। क्योंकि उसी में परेशान हो जायेंगे आप तो पीछे और गड़बड़ होगी, उसे छोड़ दें।
नहीं, वह कोई ध्यान का हिस्सा नहीं था। वह तो सिर्फ मैंने इसलिए आपको कहा था कि आपको यह ख्याल में आ सके कि खिंचा हुआ मस्तिष्क क्या है, और शिथिल मस्तिष्क क्या है? इसकी कोई फिक्र करने की बहुत जरूरत नहीं है, उसे छोड़ दें, शिथिल छोड़ें। मन को शांत छोड़ दें। सिर

के जितने भी स्नायु खिंचे हुए हों, सिर की जो भी नसें खिंची हुई हों उनको रिलेक्स छोड़ दें, ढीला छोड़ दें। सवाल ढीला छोड़ने का है। सवाल यह नहीं है कि आप उसको खींचने की कला सीखें। खींचने की कला भूलनी है। वह मैंने सिर्फ इसलिए कहा था कि आपको दोनों कंट्रास्ट समझ में आ जायें कि खिंचा हुआ यह है और ढीला यह है। जो नहीं समझ में आता है, उसको छोड़ दें फिलहाल। शिथिल ही छोड़ें सीधा।
... तो सब लोग थोड़े एक-दूसरे पर फासले पर बैठ जायेंगे। एक-दूसरे को कोई छूता हुआ न हो। यह आगे की जगह का उपयोग कर लें। इधर... इधर आ जायें, इधर पीछे चले जायें। लेकिन कोई किसी को छूता हुआ न हो।
शरीर को बिल्कुल आराम से ढीला छोड़ देंगे और फिर आंख आहिस्ता से बंद कर लेंगे। आंख इतने धीमे-से बंद करनी है कि आंख पर कोई भार न पड़े। बीच में लेनी है आंख कि उस पर भार न पड़ जाये। आंख के स्नायुओं का संबंध मस्तिष्क से बहुत ज्यादा है, इसे बहुत ढीला छोड़ दें। जैसे छोटे-से बच्चे अपनी पलक बंद कर लेते हैं, ऐसे पलक को गिरा दें। पलक को धीरे- से गिर जाने दें शिथिल। फिर, फिर से सारे तंतुओं को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। जैसे एक छोटे-से बच्चे का चेहरा होता है बिल्कुल शिथिल, कोई भी फिक्र नहीं है।

बिल्कुल ढीला, रिलेक्स छोड़ दें। शरीर को भी ढीला छोड़ दें। जैसे ही आंख को ढीला छोड़ देंगे, श्वास अपने आप ढीली हो जायेगी, शांत हो जायेगी।
फिर अब एक ही काम करें कि चारों तरफ जो आवाजें हो रही हैं, चुपचाप सुनते रहें। कोई कौवा बोलेगा, कोई पक्षी आवाज करेगा, कोई बच्चा रास्ते पर बोलेगा। चुपचाप सुनते रहना है, सुनते रहना है, सुनते रहना है और भीतर कुछ शांत होता जा रहा है।
सुनें... दस मिनट के लिए चुपचाप सुनते रहें... सारा ध्यान सुनने पर फैल जाये। बस सुन रहे हैं और कुछ भी नहीं कर रहे हैं।
... सुनें, पक्षी बोल रहे हैं, हवायें वृक्षों को हिलायेंगी, और कोई आवाज न हो। चुपचाप सुनते रहें। सुनते-सुनते ही भीतर एक शांति का नाद शुरू हो जाएगा। ... मन शांत हो रहा है। सुनते रहें, सुनते रहें। मन शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है।... मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन बिल्कुल शांत हो गया। एक गहरा सन्नाटा भीतर मौजूद है। सुनते रहें, आप सिर्फ सुनते रहें। सुनते-सुनते मन शांत हो जायेगा।
... मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है। सुनते रहें,

सुनते रहें, मन बिल्कुल सन्नाटे में उतर रहा है। मन शांत हो रहा है।...

अंतर्यात्रा-सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन
प्रवचन-5
ज्ञान के भ्रम से छुटकारा

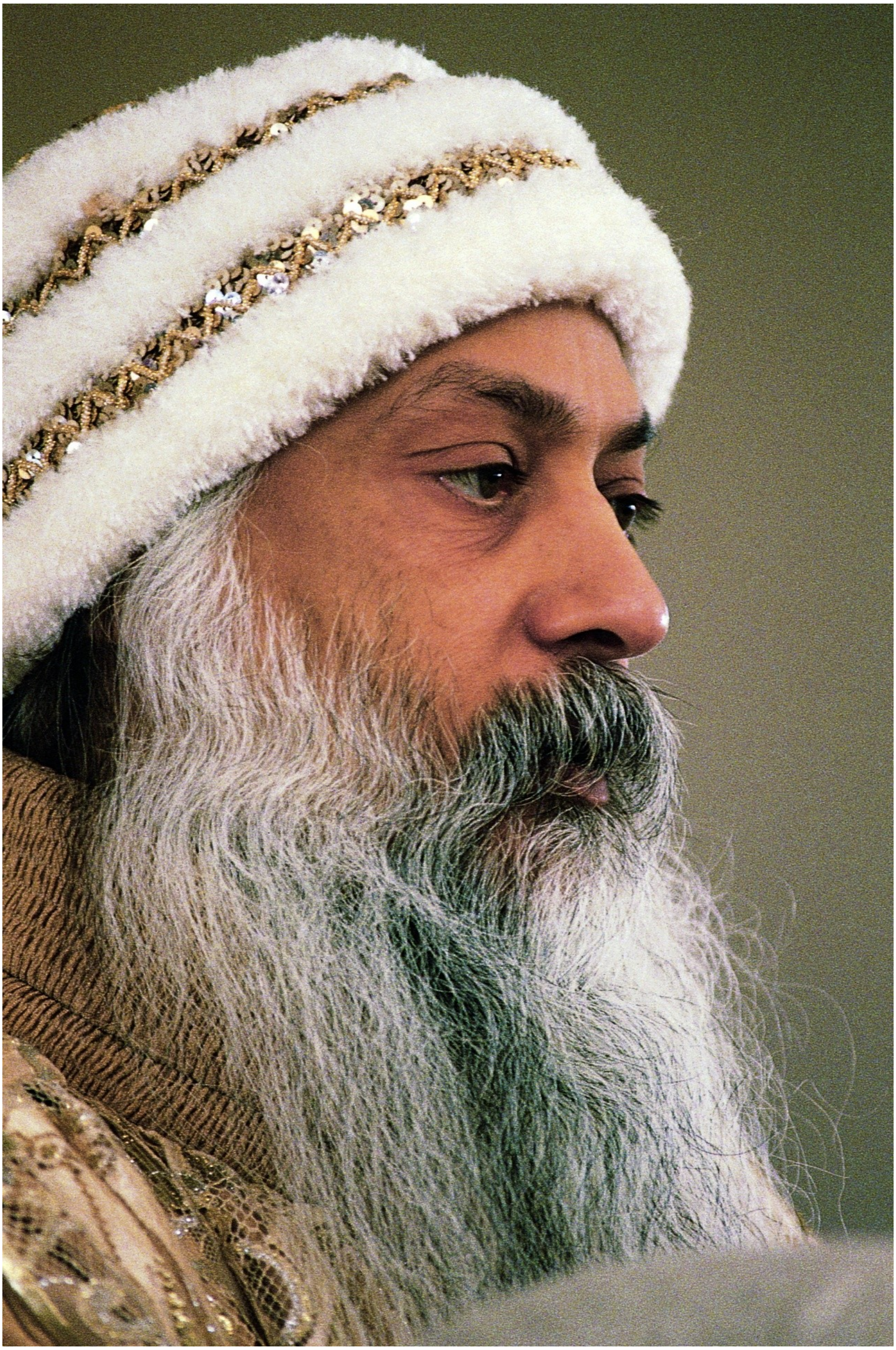

□□□□ □□□□□ □□□□□□!

मनुष्य के मन की दशा--छेड़े गये छत्ते की भांति मनुष्य के मन की दशा है। विचार और विचार और विचार और विचारों की यह भिनभिनाहट मक्खियों की तरह मनुष्य के मन को घेरे रहती है। इन विचारों में घिरा हुआ मनुष्य अशांति में, तनावों में और चिंता में जीता है। जीवन को जानने और पहचानने के लिए मन चाहिए एक झील की भांति शांत, जिस पर कोई लहर न उठती हो। जीवन से परिचित होने के लिए मन चाहिए एक दर्पण की भांति निर्मल, जिस पर कोई धूल न जमी हो।
और हमारे पास मन है एक मधुमक्खियों के छत्ते की भांति। न तो वह दर्पण है, न वह एक शांत झील है। और ऐसे मन को लेकर अगर हम सोचते हों कि हम कुछ जान सकेंगे, हम कुछ पा सकेंगे या हम कुछ हो सकेंगे तो हम ब.ड़ी भूल में हैं।
विचारों की इस अति तीव्र धारा से मुक्त होना अत्यंत आवश्यक है। विचार और विचार और विचार, स्वास्थ्य के लक्षण नहीं हैं, रुग्ण चित्त की दशा है। जब किसी का मन परिपूर्ण रूप से शुद्ध और स्वच्छ होता है, और स्वस्थ होता है तो विचार शून्य हो जाते हैं। विवेक शेष रह जाता है, और विचार शून्य हो जाते हैं। और जब कोई मन अस्वस्थ और बीमार होता है तो विवेक शून्य हो जाता है और केवल विचारों की भीड़ रह जाती है। हम विचारों

की भीड़ में ही जीते हैं। सुबह से सांझ, सांझ से सुबह, जन्म से लेकर मृत्यु तक हम विचारों की एक भीड़ में ही जीते हैं। इस भीड़ से कैसे मुक्त हुआ जाये? सुबह कुछ बातें हमने की हैं। कुछ उस संबंध में प्रश्न पूछे गये हैं, उन प्रश्नों के मैं अभी उत्तर दूंगा।
पहली बात, विचारों से मुक्त होना दूसरा कदम है। पहला कदम तो यह है कि हम विचारों का संग्रह न करें। क्योंकि एक आदमी एक तरफ विचारों का संग्रह करता चला जाये और दूसरी तरफ विचारों से मुक्त होना चाहे तो कैसे मुक्त हो सकेगा? एक आदमी वृक्ष के पत्तों से मुक्त होना चाहे और वृक्ष की जड़ों को पानी पिलाता चला जाये, तो कैसे वृक्ष के पत्तों से मुक्त हो सकेगा? लेकिन जड़ों को पानी पिलाते वक्त हमें यह ख्याल में ही नहीं आता है कि जड़ों और पत्तों का कोई संबंध है--कोई गहरा संबंध है। जड़ें अलग मालूम होती हैं, पत्ते अलग मालूम होते हैं, लेकिन पत्ते जड़ों से अलग नहीं हैं और जड़ों को दिया गया पानी पत्तों को ही मिलता है।
तो विचार हम संगृहीत करते हैं और विचार की जड़ों को पानी देते हैं और फिर जब विचार मन को बहुत बेचैन और अशांत करते हैं तो हम उनको शांत करने का उपाय भी करना चाहते हैं। इसके पहले कि किसी

वृक्ष में पत्ते आने बंद हो जायें, हमें उसकी जड़ों को पानी देना बंद कर देना होगा।
हम विचारों की इस भीड़ को पानी देते हैं, वह हमें समझ लेना चाहिए कि हम किस भांति पानी देते हैं। और अगर वह समझ में आ जाये तो हम पानी देना बंद कर देंगे। फिर वृक्ष के कुम्हला जाने में बहुत देर नहीं है।
किस तरह हम पानी देते हैं?
पहली बात, हजारों वर्ष से आदमी के मन में यह भ्रम पैदा किया गया है कि तुम दूसरों के विचारों को संग्रह करके ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हो। यह सरासर झूठी और एकदम गलत बात है। कोई मनुष्य किसी दूसरे के विचारों के संग्रह से कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सका है। ज्ञान आता है भीतर से और विचार आते हैं बाहर से। ज्ञान होता है अपना और विचार होते हैं हमेशा पराये, हमेशा बारोड, हमेशा उधार। ज्ञान है निज की स्फुरणा, वह जो स्वयं के भीतर छिपा है उसका प्रगट हो जाना और विचार हैं दूसरों की जूठन को इकट्ठा करना--चाहे गीता से इकट्ठा कर लें, चाहे कुरान से, चाहे बाइबिल से, चाहे धर्मगुरुओं से इकट्ठा कर लें, चाहे शिक्षकों से।
जो भी हम दूसरे से इकट्ठा कर लेते हैं वह हमारा ज्ञान नहीं बनता, बल्कि वह

हमारे अज्ञान को छिपाने का मार्ग और उपाय बन जाता है। और जिस आदमी का अज्ञान छिप जाता है वह आदमी जीवन में कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता। चूंकि हमें यह ख्याल है कि यह हमारा ज्ञान है इसलिए उसे हम प्राणपन से पकड़े रहते हैं। विचारों को हम पकड़े हुए हैं। हम उन्हें छोड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। नीचे से हम उनको सम्हाले हुए हैं, क्योंकि हमें यह ख्याल है यही हमारा ज्ञान है। अगर यह छूट गये तो, हम तो अज्ञानी हो जायेंगे; लेकिन स्मरण रखिये, विचारों को कोई कितना ही पकड़े रहे उससे ज्ञानी नहीं होता।
एक आदमी एक कुआं बनाता है--जमीन खोदता है, पत्थर निकालता है, मिट्टी निकालता है और फिर नीचे झरने फूटते हैं कुएं के और कुएं में पानी भर जाता है। कुएं में पानी मौजूद था, पानी कहीं से लाना नहीं पड़ा। केवल बीच में कुछ पत्थर और मिट्टी की पर्ते थीं उन्हें अलग कर देना पड़ा। कोई अवरोध थे, कोई बाधाएं थीं, उनको अलग कर दिया और पानी प्रगट हो गया। कुएं में पानी लाना नहीं पड़ता है, पानी आता है, लेकिन जो चीज बीच में रुकावट थी उसको दूर कर देना होता है।
ज्ञान भीतर मौजूद है, उसे कहीं से लाना नहीं है, उसके झरने भीतर छिपे हैं, केवल बीच की बाधाएं--पत्थर और मिट्टी

अलग कर देनी है खोदकर और फिर ज्ञान के झरने प्रगट होने शुरू हो जायेंगे। लेकिन कुआं भी बनता है और हौज भी बनती है। हौज के बनने का रास्ता अलग है। हौज बनाने में कहीं झरने नहीं खोजने पड़ते पानी के। हौज बनाने का रास्ता कुएं से बिल्कुल विपरीत है। हौज बनाने के लिए, मिट्टी-पत्थर खोदने नहीं पड़ते, लाकर जोड़ने पड़ते हैं और मिट्टी-पत्थर की दीवाल उठानी पड़ती है। फिर दीवाल भी बन जाती है, लेकिन पानी नहीं आता है। फिर तुम्हें दूसरों के कुओं से पानी उधार लाकर उस हौज में भर लेना पड़ता है। ऊपर से देखने पर हौज कुएं का धोखा देने लगती है। ऐसा लगता है कि कुआं आ गया। हौज में पानी दिखायी पड़ता है, कुएं में भी पानी दिखायी पड़ता है। लेकिन हौज और कुएं के पानी में जमीन-आसमान का फर्क है।
पहला फर्क तो यह है कि हौज के पास अपना कोई पानी नहीं है। और जो पानी अपना नहीं, उससे दुनिया में कभी कोई प्यास नहीं बुझती। हौज के पास जो भी है, उधार है। और उधार बहुत जल्दी बासा हो जाता है और सड़ जाता है। क्योंकि जो उधार है वह जीवंत नहीं होता, वह मृत होता है। हौज अगर भरी रहेगी तो सड़ जायेगी, बहुत जल्दी बदबू फेंकने लगेगी।
लेकिन कुएं के पास अपने जल के स्रोत होते हैं, कुआं सड़ नहीं जाता। और कुएं

के पास अपना पानी होता है। इसलिए हौज और कुएं के प्राणों में दो अलग प्रक्रियाएं चलती हैं। हौज चाहती है कि मेरे पानी को कोई छीन न ले, क्योंकि मेरा पानी गया कि मैं खाली हो जाऊंगी। और कुआं चाहता है कि कोई मेरे पानी को उलीच ले, कोई मेरे पानी को ले ले ताकि मुझमें और नया पानी भर जाये--ताजा और ज्यादा जीवंत। कुआं पुकारता है कि मेरे पानी को ले लो और बांट लो! और हौज पुकारती है कि दूर रहना, मेरे पानी को मत छूना, मेरे पानी को मत लेना। हौज चाहती है कि किसी के पास पानी हो तो वह भी यहां लाकर डाल दो मुझमें, ताकि मेरी संपदा बढ़ जाये। और कुआं चाहता है कि किसी के पास पात्र हो तो पानी ले जाये, ताकि जो पानी बासा पड़ गया है--बहुत दिन का भरा हुआ हो गया है, उससे मैं मुक्त हो जाऊं और नया पानी मुझे उपलब्ध हो जाये। कुआं बांटना चाहता है, हौज संग्रह करना चाहती है। कुएं के पास झरने हैं जो सागर से जुड़े हैं। कुआं छोटा-सा दिखायी पड़ता है, लेकिन गहरे में अनंत से जुड़ा हुआ है। हौज कितनी ही बड़ी दिखायी पड़ती हो, उसका संबंध किसी से भी नहीं है, वह अपने में ही समाप्त है और बंद है। उसके पास कोई झरने नहीं है। उसके पास कोई दूर से जोड़ने वाले कोई मार्ग नहीं हैं, इसीलिए अगर कोई हौज से जाकर कहे कि सागर

भी होता है। हौज हंसेगी--कहेगी "कहीं सागर होता है! सब हौजें होती हैं। कहीं कोई सागर नहीं है।" क्योंकि हौज को सागर का कोई पता नहीं है!
लेकिन अगर कोई कुएं से कहे कि कुआं तू बहुत अच्छा है तो कुआं सोचेगा कि मेरा अपना क्या है--सब सागर का है, मैं हूं कहां? मेरे पास जो भी आता है वह दूर किसी और से जुड़ा है। कुएं का अपना कोई अहंकार नहीं हो सकता कि "मैं हूं।" हौज का अपना अहंकार होता है कि "मैं हूं"। और बड़े मजे की बात तो यह है कि कुआं बहुत बड़ा है और हौज बहुत छोटी। कुएं के पास अपनी संपदा है और हौज के पास अपनी कोई संपदा नहीं है।
आदमी का मन भी कुआं बन सकता है या हौज बन सकता है--ये दो ही रास्ते हैं आदमी की बुद्धि के बन जाने के। और जिस आदमी की बुद्धि हौज बन जाती है वह आदमी धीरे- धीरे पागल हो जाता है।
और हम सबकी बुद्धि हौज बन गयी है।
हमने कुआं बनाया नहीं, हमने हौज बनायी है। हम दुनिया भर से बातों को इकट्ठा कर लेते हैं--किताबों से, शास्त्रों से, उपदेशों से और उन सबको इकट्ठा कर लेते हैं और सोचते हैं हम ज्ञानी हो गये हैं। हम हौज की गलती में पड़ गये। हौज समझ ली कि हम कुआं हो गये। भ्रम पैदा हो सकता

है, क्योंकि दोनों में पानी दिखायी पड़ता है।
एक पंडित के पास भी ज्ञान दिखायी पड़ता है, एक ज्ञानी के पास भी ज्ञान दिखायी पड़ता है। लेकिन पंडित हौज है और ज्ञानी कुआं है। इन दोनों में फर्क है। और यह फर्क इतना गहरा और बुनियादी है जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि पंडित का ज्ञान उधार और बासा और सड़ा हुआ ज्ञान है। दुनिया में जितना उपद्रव हुआ है वह पंडित के ज्ञान से हुआ है। हिंदू और मुसलमान के बीच जो झगड़ा है वह किसका झगड़ा है? दो ज्ञानियों का झगड़ा है। जैन और हिंदू के बीच जो विरोध है, वह दो ज्ञानियों का विरोध है। वह पंडितों का विरोध है, वह उन मस्तिष्कों का विरोध है जो हौज हैं, सड़े हुए हैं, उधार और बासे। सारी दुनिया में जो इतने उपद्रव हुए हैं, वे हौज बन गये मस्तिष्कों के कारण हैं। नहीं तो आदमी हैं दुनिया में--न कोई ईसाई है, न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान है, न कोई जैन है; लेकिन हौजों के लेबल हैं। क्योंकि जिस हौज ने जिस-जिस कुएं से पानी उधार भरा है वह उसी... उसी कुएं का लेबल अपने ऊपर चिपकाये हुए हैं कि मैंने तो गीता से पानी लिया है तो मैं हिंदू हूं; मैंने कुरान से पानी लिया है तो मैं मुसलमान हूं। लेकिन ज्ञानी तो किसी से पानी लेता नहीं है,

पानी उसके भीतर से आता है, परमात्मा से आता है। इसलिए न वह हिंदू हो सकता है, न वह मुसलमान हो सकता है, न वह ईसाई हो सकता है।
ज्ञानी किसी संप्रदाय का नहीं हो सकता। लेकिन पंडित बिना संप्रदाय के होना असंभव है। पंडित जब भी होगा, संप्रदाय का ही होगा। हमने अपने मन को एक बासी, उधार चीज बना लिया है। फिर इसको हम पकड़ते हैं। जैसा मैंने कहा--हौज चिल्लाती है मेरे पानी को मत छीन लेना। पानी गया तो मैं खाली और रिक्त और एम्पटी हो जाऊंगी, मेरे भीतर तो कुछ भी नहीं बचेगा। मेरी संपदा तो उधार इकट्ठी की हुई है, इसलिए कोई छीन न ले।
स्मरण रहे, जो संपदा छीनने से कम हो जाती है, वह हमेशा उधार और झूठी होती है। जो संपदा छीनने से और बढ़ जाती हो, वही संपदा केवल सत्य होती है। जो संपत्ति बंट जाने से समाप्त हो जाती है वह संपत्ति ही नहीं, केवल संग्रह है। और जो संपत्ति बंटने से और बढ़ जाती हो, वही संपत्ति है। संपत्ति का लक्षण ही यह है कि वह बंटने से बढ़नी चाहिए। बंटने से घटती हो तो वह संपत्ति नहीं है और जिस संपत्ति में यह भय है कि यह बंटने से घट जायेगी, उसको सम्हालने में इतनी विपत्ति पैदा हो जाती है जिसका कोई हिसाब नहीं।

तो सब उधार संपत्ति विपत्ति बन जाती है, संपत्ति कभी भी नहीं बन पाती। फिर डर पैदा होता है कि यह कहीं घट न जाये; तो उसे हम जोर से पकड़ते हैं। हम अपने विचारों को जोर से पकड़े हुए हैं। हम उनको प्राणों से भी ज्यादा सम्हाले हुए हैं। यह मन में जितना कचरा इकट्ठा हो गया है, यह आकस्मिक नहीं है। यह हमने योजना की है, इसको इकट्ठा किया है और इसको सम्हाले हुए हैं।
तो अगर हम यह सोचते हों कि विचारों के संग्रह से ज्ञान उत्पन्न हो सकता है तो हम विचारों से कभी मुक्त नहीं हो सकते। कैसे मुक्त हो सकेंगे? जड़ों को पानी देंगे और पत्ते काटेंगे, यह नहीं हो सकता। इसलिए पहली बुनियादी बात यह समझ लेनी जरूरी है कि ज्ञान बात ही अलग है और विचारों का संग्रह बिल्कुल ही अलग बात है। संग्रह ज्ञान नहीं है, दूसरों से लिये गये विचार ज्ञान नहीं है। दूसरों से इकट्ठे किये गये विचार, मनुष्य को सत्य के या स्वयं के निकट नहीं ले जाते। यह ज्ञान झूठा है, यह स्यूडो नालेज है, यह मिथ्या ज्ञान है जो हम दूसरे से इकट्ठा कर लेते हैं। इससे भ्रम पैदा होता है कि ज्ञान मिल गया और ज्ञान मिलता भी नहीं, ज्ञान से हम वंचित ही रह जाते हैं।

यह ज्ञान वैसा ही है जैसे तैरने के संबंध में कोई शास्त्र पढ़ लें और तैरने के संबंध में इतना जान लें कि अगर उसे प्रवचन करना हो तो प्रवचन कर दे, अगर किताब लिखनी हों तो किताब लिख दे, लेकिन कोई आदमी उसे नदी में धक्का दे दे तो हमें पता चल जाये कि वह तैरना कितना जानता था। उसने किताबों से तैरने के संबंध में सब बातें पढ़ ली थीं। वह तैरने के बाबत ज्ञानी मालूम पड़ता था, लेकिन तैरने का उसे कोई भी पता नहीं।
एक मुसलमान फकीर हुआ नसरुद्दीन। वह एक नदी पार कर रहा था एक नाव में बैठकर। मल्लाह ने उससे... रास्ते में दोनों की कुछ बातचीत हुई। नसरुद्दीन बड़ा ज्ञानी आदमी समझा जाता था। ज्ञानियों को हमेशा यह कोशिश रहती है कि किसी को अज्ञानी सिद्ध करने का मौका मिल जाये तो वह छोड़ नहीं सकते हैं। तो उसमें मल्लाह अकेला था, मल्लाह से पूछा कि भाषा जानते हो? उस मल्लाह ने कहा, "भाषा! बस जितना बोलता हूं, उतना ही जानता हूं। पढ़ना- लिखना मुझे कुछ पता नहीं है।" नसरुद्दीन ने कहा, "तेरा चार आना जीवन बेकार हो गया, क्योंकि जो पढ़ना नहीं जानता उसकी जिंदगी में क्या उसे ज्ञान मिल सकता है? बिना पढ़े, पागल! कहीं ज्ञान मिला है?" लेकिन मल्लाह चुपचाप हंसने लगा।

फिर आगे थोड़े चले और नसरुद्दीन ने पूछा, कि तुझे गणित आता है? उस मल्लाह ने कहा, "नहीं, गणित मुझे बिल्कुल नहीं आता है, ऐसे ही दो और दो चार जोड़ लेता हूं, यह बात दूसरी है।"
नसरुद्दीन ने कहा, "तेरा चार आना जीवन और बेकार चला गया, क्योंकि जिसे गणित ही नहीं आता, जिसे जोड़ ही नहीं आता है वह जिंदगी में क्या जोड़ सकेगा, क्या जोड़ पायेगा। अरे, जोड़ना तो जानना चाहिए, तो कुछ जोड़ भी सकता था। तू जोड़ेगा क्या? तेरा आठ आना जीवन बेकार हो गया।"

फिर जोर का तूफान आया और आंधी आयी और नाव उलटने के करीब हो गयी। उस मल्लाह ने पूछा, "आपको तैरना आता है?" नसरुद्दीन ने कहा, "मुझे तैरना नहीं आता।" उसने कहा, "आपकी सोलह आना जिंदगी बेकार जाती है। मैं तो चला। न मुझे गणित आती है और न मुझे भाषा आती है, लेकिन मुझे तैरना आता है। तो, मैं तो जाता हूं और आपकी सोलह आना जिंदगी बेकार हुई जाती है।" जिंदगी में कुछ जीवंत सत्य हैं जो स्वयं ही जाने जाते हैं, जो किताबों से नहीं जाने जा सकते हैं, जो शास्त्रों से नहीं जाने जा सकते हैं। आत्मा का सत्य या परमात्मा का; स्वयं ही जाना जा सकता है और कोई जानने का उपाय नहीं है।

लेकिन शास्त्रों में सब बातें लिखी हैं, उनको हम पढ़ लेते हैं, उनको हम समझ लेते हैं, वे हमें कंठस्थ हो जाती हैं, वे हमें याद हो जाती हैं। दूसरों को बताने के काम भी आ सकती हैं, लेकिन उससे कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। विचार का संग्रह ज्ञान का लक्षण नहीं है अज्ञान का ही लक्षण है। क्योंकि जिस आदमी के पास अपने विवेक की शक्ति जाग्रत हो जाती है, वह विचार के संग्रह से मुक्ति पा लेता है। फिर उसे संग्रह करने का कोई सवाल नहीं रह जाता, वह स्वयं ही जानता है। और जो स्वयं जानना है, वह... वह मन को मधुमक्खियों का छत्ता नहीं रहने देता है--मन को एक दर्पण बना देता है, एक झील बना देता है।
हमारा मन मधुमक्खियों का भिनभिनाता छत्ता है। इसलिए कि इन मधुमक्खियों को हमने पाला है और हमने ज्ञान समझकर इन विचारों को जगह दी है। अपने घर में इनको ठहराया है, इनको निवासी बनाया है। और हमने अपने मन को एक धर्मशाला बना दी है कि जो भी आए ठहर जाये। बस एक बात का ख्याल लेकर आ जाए, वह ज्ञान के वस्त्र पहन कर आ जाए, फिर हमारी धर्मशाला में ठहरने का उसे हक है। यह धर्मशाला में भीड़ बढ़ती चली गयी है। और यह भीड़ इतनी बढ़ गयी है कि मालिक कौन है, तय करना मुश्किल हो गया है इस भीड़ के बीच। और वे

जो मेहमान बन गये हैं, वे इतना शोरगुल मचाते हैं--जो सबसे ज्यादा चिल्लाता है वही मालिक मालूम होता है। और मालिक कौन है इसका हमें कोई पता नहीं चलता है।
हर विचार जोर से चिल्लाता है कि मैं मालिक हूं और भीतर जो मालिक है वह धर्मशाला की भीड़ में, उसका हमें कोई पता चलना संभव नहीं रह गया। कोई विचार निकलने के लिए राजी नहीं है। जिसको हमने ठहरा लिया है वह कैसे निकले? जिसको हमने बुलाया है वह कैसे निकले? जिसको हमने निमंत्रण देकर बुलाया था आज वह कैसे निकल जायेगा? मेहमान को बुला लेना आसान है, निकालना उतना आसान नहीं है। और मेहमान आ गए हैं हजारों साल से। मेहमान आदमी के मन में इकट्ठे होते चले गये हैं। आज इनको विदा करने को अगर मैं आपसे कहूं तो ये एकदम से विदा नहीं हो सकते, लेकिन अगर बुनियाद हम समझ लें तो ये विदा हो सकते हैं।
पहली बुनियाद, दूसरों का सीखा हुआ सारा विचार व्यर्थ है, अगर हमें यह स्पष्ट हो जाये तो हमने जड़ काट दी विचारों के इकट्ठे होने की। फिर हमने जड़ काट दी। फिर हमने जड़ में पानी देना बंद कर दिया। क्योंकि यह भ्रम कि यह ज्ञान है, इसीलिए हम सोचते हैं!
एक संन्यासी, एक वृद्ध संन्यासी अपने एक युवा भिक्षु के साथ एक जंगल पार कर

रहा था। रात उतर आयी, अंधेरा घिरने लगा। तो उस बूढ़े संन्यासी ने युवा संन्यासी को पूछा कि बेटे रास्ते में कोई डर तो नहीं है, कोई भय तो नहीं है? रास्ता बड़ा जंगल का बीहड़... अंधेरी रात उतर रही है, कोई भय तो नहीं है?
युवा संन्यासी बहुत हैरान हुआ, क्योंकि संन्यासी को... और भय का सवाल ही नहीं उठना चाहिए। संन्यासी को भय का कहां सवाल है! चाहे रात अंधेरी हो और चाहे उजाली, और चाहे जंगल हो और चाहे बाजार हो। संन्यासी को भय उठे, यही आश्चर्य की बात है! और इस बूढ़े को आज तक कभी भी नहीं उठा था। आज क्या गड़बड़ हो गयी है, इसे भय क्यों उठता है? कुछ न कुछ मामला गड़बड़ है!
फिर और थोड़ा आगे बढ़े। रात और गहरी होने लगी। उस बूढ़े ने फिर पूछा कि कोई भय तो नहीं है? हम जल्दी दूसरे गांव तो पहुंच जायेंगे? रास्ता... कितना फासला है?
फिर वे एक कुएं पर हाथ-मुंह धोने को रुके। उस बूढ़े ने अपने कंधे पर डाली हुई झोली उस युवक को दी और कहा, संभाल कर रखना। उस युवक को ख्याल हुआ कि झोली में कुछ न कुछ होना चाहिए, अन्यथा न भय का कारण है और न संभालकर रखने का कारण है। संन्यासी भी कोई चीज संभालकर रखे तो गड़बड़ हो गई। फिर संन्यासी होने का कोई

मतलब ही न रहा। संभालकर जो रखता है, वही तो गृहस्थ है। सब संभाल-संभालकर रखता है, इसीलिए गृहस्थ है। संन्यासी को क्या संभालकर रखने की बात है?
बूढ़ा हाथ-मुंह धोने लगा। और उस युवक ने उस झोली में हाथ डाला, और देखा सोने की एक ईंट झोली में है। वह समझ गया कि भय किस बात में है। उसने ईंट उठाकर जंगल में फेंक दी और एक पत्थर का टुकड़ा उतने ही वजन का झोली के भीतर रख दिया। बूढ़ा जल्दी से हाथ-मुंह धोकर आया और उसने जल्दी से झोली ली, टटोला, वजन देखा, और झोली कंधे पर रखी और चल पड़ा।
और फिर कहने लगा थोड़ी दूर चलकर कि "रात बड़ी हुई जाती है, रास्ता हम कहीं भटक तो नहीं गये हैं? कोई भय तो नहीं है?"
उस युवक ने कहा, "अब आप निर्भय हो जाइये, भय को मैं पीछे फेंक आया।"
वह तो घबड़ा गया। उसने जल्दी से झोली में हाथ डाला--देखा, वहां तो एक पत्थर का टुकड़ा रखा हुआ था। एक क्षण को तो वह ठगा- सा खड़ा रह गया और फिर हंसने लगा और उसने कहा, "मैं भी खूब पागल था। इतनी देर पत्थर के टुकड़े को लिए था तब भी मैं भयभीत हो रहा था, क्योंकि मुझे यह ख्याल था कि यह सोने की ईंट भीतर है। था पत्थर का वजन, लेकिन ख्याल था कि सोने की ईंट भीतर है तो उसे सम्हाले हुए था।" फिर जब

पता चल गया कि पत्थर है, उठाकर उसने पत्थर फेंक दिया। झोली एक तरफ रख दी और युवक से कहा, "अब रात यहीं सो जायें, अब कहां परेशान होंगे, कहां रास्ता खोजेंगे।" फिर रात वे वहीं सो गये।
तो जिस विचार को आप सोने की ईंट समझे हुए हैं, अगर वह सोने की ईंट दिखायी पड़ती है तो आप उसको सम्हाले रहेंगे, सम्हाले रहेंगे, उससे आप मुक्त नहीं हो सकते। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं वह सोने की ईंट नहीं है। वहां बिल्कुल पत्थर का वजन है। जिसको आप ज्ञान समझे हैं, वह जरा भी ज्ञान नहीं है, वह सोना नहीं है, वह बिल्कुल पत्थर है।
दूसरों से मिला हुआ ज्ञान बिल्कुल पत्थर है। खुद से आया हुआ ज्ञान ही सोना होता है। जिस दिन आपको यह दिखायी पड़ जायेगा कि झोली में ईंट सम्हाले हुए हैं, पत्थर सम्हाले हुए हैं, उसी दिन मामला खतम हो गया। अब उस ईंट को उठाकर फेंकने में कठिनाई नहीं रह जायेगी। कचरे को फेंकने में कठिनाई नहीं रह जाती, सोने को फेंकने में कठिनाई होती है। जब तक आपको लग रहा है कि यह विचार ज्ञान है, तब तक आप इसे नहीं फेंक सकते हैं। यह मन आपका एक उपद्रव का स्थल बना ही रहेगा, बना ही रहेगा, बना ही रहेगा। आप लाख उपाय करेंगे, कोई उपाय काम नहीं करेगा। क्योंकि आप बहुत गहरे में चाहते

हैं कि यह बना रहे, क्योंकि आप समझते हैं यह ज्ञान है। जीवन में सबसे बड़ी कठिनाइयां इस बात से पैदा होती हैं कि जो चीज जो नहीं है, वह उसको हम समझ लें, तो सारी कठिनाइयां पैदा होनी शुरू हो जाती हैं। पत्थर को कोई सोना समझ ले तो मुश्किल शुरू हो गयी। पत्थर को कोई पत्थर समझ ले, मामला खतम हो गया।
तो हमारे विचार की संपदा वास्तविक संपदा नहीं है--इस बात को समझ लेना जरूरी है। कैसे समझें! क्या मेरे कहने से आप समझ लेंगे? अगर मेरे कहने से समझ लिए तो यह समझ उधार हो जायेगी, यह समझ बेकार हो जायेगी। क्योंकि यह मैं कह रहा हूं और आप समझ लेंगे। मेरे कहने से समझने का सवाल नहीं है, आपको देखना पड़े, खोजना पड़े, पहचानना पड़े।
वह युवक अगर उस बूढ़े से कहता कि चले चलिये, कोई फिक्र नहीं है, आपके झोले में ईंट है, पत्थर है, कोई सोना नहीं है, तो इससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं था, जब तक कि बूढ़ा देख न ले कि उसके झोले में ईंट है, सोने की है या पत्थर की! युवक कहता तो कोई बात ख्याल में आने वाली न थी। हंसता लड़के पर कि लड़का है, नासमझ है, कुछ पता नहीं। या हां भी भर देता तो वह हां झूठी होती, भीतर गहरे में वह ईंट को सम्हाले ही रहता। लेकिन खुद देखा तो फर्क पड़ गया।

तो अपने मन की झोली में देखना जरूरी है कि जिन्हें हम ज्ञान समझ रहे हैं, वह विचार-ज्ञान है, उनमें ज्ञान जैसा कुछ भी है या कि सब फिजूल कचरा हमने इकट्ठा कर रखा है। गीता के श्लोक इकट्ठे कर रखे हैं, वेदों के वचन इकट्ठे कर रखे हैं, महावीर, बुद्ध के शब्द इकट्ठे कर रखे हैं और उन्हीं को लिये बैठे हुए हैं और उन्हीं का हिसाब लगाते रहते हैं। उनका अर्थ निकालते रहते हैं, टीकायें पढ़ते रहते हैं और टीकायें लिखते रहते हैं और एक-दूसरे को समझाते रहते हैं और समझते रहते हैं।
यह बिल्कुल पागलपन पैदा हो गया है। इससे कोई संबंध नहीं है ज्ञान का। इससे जीवन में कोई ज्योति नहीं फूटेगी, कोई किरण पैदा नहीं होगी। और इस कचरे को इकट्ठा करके आप इस भ्रम में पड़ जायेंगे कि हमने ब.हुत संपदा इकट्ठी कर ली है, हम बड़े मालिक हैं, हमारे पास बहुत-कुछ है, हमारी तिजोरी भरी हुई है और इसी के साथ आप जीवन को व्यतीत कर देंगे और नष्ट कर देंगे।
एक संन्यासी, एक युवा संन्यासी एक आश्रम में ठहरा था। एक बूढ़े संन्यासी के निकट सान्निध्य को आया था, लेकिन दो- चार दिन में ही उसे लगा कि इस बूढ़े को कुछ भी पता नहीं है। रोज वही बातें, रोज वही बातें सुन-सुनकर हैरान हो गया।

सोचा छोड़ दूं इस आश्रम को, कहीं और खोजूं, यह मेरे लिए जगह नहीं है। किसी और गुरु की तलाश करूं।
लेकिन जिस दिन छोड़ने को था, उसी दिन एक संन्यासी और उस आश्रम में मेहमान हुआ। और रात आश्रम के अंतेवासी इकट्ठे हुए और उनकी बातें हुईं। उस नये संन्यासी ने इतनी ज्ञान की बातें कीं, ऐसी सूक्ष्म और बारीक, ऐसी गहरी और प्रगाढ़ कि छोड़ने वाले युवा संन्यासी को लगा कि गुरु हो तो ऐसा हो। दो घंटे में उसने मंत्र-मुग्ध कर दिया। उसके मन को यह भी ख्याल हुआ कि हमारे बूढ़े गुरु के मन को बड़ी पीड़ा होती होगी। आज बड़ी आत्म-ग्लानि लगती होगी कि मैं बूढ़ा हो गया और मैं कुछ भी नहीं जान पाया और यह आगंतुक इतना जानता है।
दो घंटे बाद जब बात बंद हुई तो उस आये हुए संन्यासी ने बूढ़े गुरु की तरफ देखा और उस वृद्ध से पूछा कि, "आपको मेरी बातें कैसी लगीं?" उस बूढ़े ने कहा, "मेरी बातें? बातें तुम करते थे, लेकिन तुम्हारी उसमें कोई भी बात नहीं थी। और मैं तो बहुत गौर से सुनता था कि तुम कुछ बोलो, लेकिन तुम कुछ बोलते ही नहीं हो!" तो उस युवक ने कहा, "दो घंटे मैं नहीं तो और कौन बोलता था?"
तो उस बूढ़े ने कहा, "अगर मुझसे पूछते हो सचाई और ईमानदारी की बात, तो

तुम्हारे भीतर से किताबें बोलती थीं, शास्त्र बोलते थे, लेकिन तुम जरा भी नहीं बोलते थे। तुमने एक शब्द भी नहीं बोला। जो तुमने इकट्ठा कर लिया है उसी का वमन करते थे, उसी को तुम उल्टी करते थे, उसी को तुम बाहर निकालते थे। और तुम्हारे वमन और उल्टी से मैं बहुत घबरा गया कि तुम बड़े बीमार आदमी हो। तुम दो घंटे तक उलटते ही रहे, जो तुम्हारे पेट में इकट्ठा था। और सारा कमरा तुमने गंदगी और बदबू से भर दिया। मुझे तो ज्ञान की सुगंध जरा भी नहीं आयी, क्योंकि बाहर से जो भीतर ले जाया जाये और फिर बाहर फेंक दिया जाये, उसमें वमन की दुर्गंध हो जानी बिल्कुल ही निश्चित है। तुम तो कुछ भी नहीं बोले, एक शब्द भी तुम्हारा अपना नहीं था।
वह जो युवा संन्यासी छोड़ना चाहता था आश्रम, उसी आश्रम में रुक गया। आज उसे पहली दफा पता चला कि जानने और जानने में बहुत फर्क है। एक जानना वह है जो हम बाहर से इकट्ठा कर लेते हैं। एक जानना वह है जिसका भीतर से जन्म होता है। बाहर से जो इकट्ठा कर लेते हैं वह हमारा बंधन हो जाता है, वह हमें मुक्त नहीं करता है और भीतर से जो आता है वह हमें मुक्त करता है।
तो, पहली बात भीतर खोज कर लेने की है कि मैं जो जानता हूं, वह मैं जानता हूं?

यह अपने जानने के एक-एक विचार और एक-एक शब्द से पूछ लेना जरूरी है यह मैं जानता हूं? और अगर उत्तर आये कि यह मैं नहीं जानता हूं तो आपकी जिंदगी में सोने की ईंट धीरे-धीरे पत्थर की ईंट हो जायेगी। और उत्तर आयेगा कि आप नहीं जानते, क्योंकि दुनिया में सबको धोखा देना संभव है, अपने को धोखा देना संभव नहीं है।
कोई आदमी खुद को धोखा नहीं दे सकता। जो आप नहीं जानते वह आप नहीं जानते। अगर मैं आपसे पूछूं, आप ईश्वर को जानते हैं? और अगर आप सिर हिलायें कि हां मैं जानता हूं, तो आप बेईमान हैं। अपने से पूछें भीतर कि मैं ईश्वर को जानता हूं या कि मैंने सुनी-सुनाई बातें मान ली हैं कि ईश्वर है? मैं जानता हूं! और अगर नहीं जानता तो ऐसे ईश्वर का दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। जिसको मैं नहीं जानता वह मेरी जिंदगी को थोड़े ही बदल सकता है। जिस ईश्वर को मैं जानता हूं वही ईश्वर मेरी जिंदगी की क्रांति बन सकता है।
जिस ईश्वर को मैं नहीं जानता वह दो कौड़ी का मूल्य नहीं रखता, वह ईश्वर झूठा है, वह ईश्वर है ही नहीं, क्योंकि वह सब उधार है, उससे मेरी जिंदगी में कोई परिवर्तन होने वाला नहीं है। अगर मैं आपसे पूछूं, आप आत्मा को जानते हैं और आप कहें हां हम जानते हैं, क्योंकि हमने

किताब में पढ़ा हुआ है, क्योंकि हमारे मंदिर में जो पंडित जी पढ़ाते हैं वे समझाते हैं कि हां, आत्मा होती है। आदमी को जो भी सिखा दिया जाये वह तोतों की तरह याद कर लेता है। इस याद कर लेने से जानने का कोई संबंध नहीं है। अगर आप हिंदू घर में पैदा हुए हैं तो आप दूसरे तरह के तोते हो जाते हैं और जैन घर में पैदा हुए हैं तो दूसरी तरह के तोते हो जाते हैं। और मुसलमान घर में हुए हैं तो तीसरी तरह के तोते हो जाते हैं, लेकिन सब जगह आप तोते बन जाते हैं। जो-जो आपको सिखा दिया जाता है, उसी को आप जिंदगी भर दोहराये चले जाते हैं। और चूंकि आपके आसपास भी आप ही जैसे तोते होते हैं, इसलिए कोई ऐतराज भी नहीं करता है, कोई इनकार भी नहीं करता है। तोते सिर हिलाते हैं कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप, क्योंकि यही उन्होंने भी सीखा है जो आपने सीखा है।
धर्म सभाओं में जाइए, वहां धर्मगुरु समझा रहे हैं और बाकी लोग सिर हिलाते हैं कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। क्योंकि जो वे सीखे बैठे हैं, वही वे भी सीखे बैठे हैं। और दोनों सीखे बैठे हुए हैं और दोनों सिर हिला रहे हैं कि हां! बिल्कुल ठीक बात कही जा रही है, हमारी किताब में भी यही लिखा हुआ है, हमने भी यही पढ़ा हुआ है।

सारी मनुष्य-जाति को ज्ञान का धोखा दिया गया है। एक साजिश, एक शड्यंत्र है आदमी के साथ ज्ञान के धोखे का। इस सारे ज्ञान को झाड़-पोंछकर बाहर फेंक देने की जरूरत है, तो कभी आपकी जिंदगी में वह ज्ञान भी आ सकता है जिसके आलोक में ईश्वर का अनुभव हो जाये और आत्मा की ज्योति दिखाई पड़ जाये। इस झूठे ज्ञान से वह संभावना नहीं है। यह रोशनी ही नहीं है, घर अंधेरा पड़ा है, दीया बुझा हुआ है और समझा-समझाकर लोग कह रहे हैं, दीया जला हुआ है। और बार-बार सुनने और समझने के कारण हम भी कहने लगे हैं कि दीया जला हुआ है, क्योंकि कहीं डर भी है! वे कहते हैं कि अगर दीया जला हुआ नहीं दिखा तो नर्क चले जाओगे। तो दीया जला हुआ दिखता है, हमको भी दिखने लगता है धीरे-धीरे।
एक सम्राट था। एक अदभुत, अजनबी आदमी ने एक दिन सुबह ही आकर उस सम्राट को कहा, क्या आपने सारी पृथ्वी जीत ली है? आपको आदमियों जैसे वस्त्र शोभा नहीं देते। मैं आपके लिए देवताओं के वस्त्र ला दूंगा। सम्राट के मन को लोभ पकड़ा। बुद्धि तो कहती थी कि देवताओं के वस्त्र कहां होंगे? देवता भी कहीं होंगे, इस पर भी बुद्धि को शक होता है, लेकिन राजा को लोभ पकड़ा, कि हो सकता है देवता कहीं हों और वस्त्र आ जायें तो

मैं पृथ्वी पर पहला आदमी रहूंगा मनुष्य के इतिहास में जिसने देवताओं के वस्त्र पहने। और यह आदमी अगर धोखा भी देगा तो क्या धोखा देगा!
वह बड़ा सम्राट था। अरबों-खरबों रुपये उसके पास ऐसे ही पड़े थे। दस-पचास हजार रुपये ले भी जायेगा तो हर्ज क्या है। उसने उस आदमी को कहा, अच्छा ठीक है। क्या खर्च होगा?
उस आदमी ने कहा, कम से कम एक करोड़ रुपया लग जायेगा, क्योंकि देवी-देवताओं तक पहुंचने में बड़ी रिश्वत खिलानी पड़ती है। कोई आदमी ही था.ेडे रिश्वत लेता है, देवी-देवता भी बड़े होशियार हैं, वे भी रिश्वत मांगते हैं। और आदमी थोड़े-बहुत पैसे से राजी हो जाता है, गरीब आदमी है! देवी-देवता थोड़े पैसे से राजी नहीं होते। भारी ढेर हो तभी उनकी नजर में पड़ता है, नहीं तो नजर में नहीं पड़ता। तो बड़ी मुश्किल है लेकिन एक करोड़ कम से कम खर्च होगा!
राजा ने कहा, "अच्छा कोई हर्ज नहीं, लेकिन ध्यान रहे, धोखा दोगे तो जिंदगी से हाथ धो बैठोगे। और तुम्हारे मकान पर आज से तलवारों का पहरा रहेगा।" एक करोड़ रुपया उस आदमी को दे दिया गया और उसके मकान पर पहरा बिठा दिया गया। सारी बस्ती में लोग चकित थे और हैरान थे और विश्वास नहीं आता था--कहां देवी, कहां

देवता, कहां देवताओं का स्वर्ग! और यह आदमी न कहीं जाता दिखता था, न कहीं आता दिखता था। मकान के भीतर था और उसने कहा, छह महीने के भीतर मैं वस्त्र ले आऊंगा। शक तो सभी को था, लेकिन राजा निश्चिंत था, क्योंकि नंगी तलवारों का पहरा था। वह आदमी भाग नहीं सकता था, धोखा नहीं दे सकता था। लेकिन वह आदमी राजा से बहुत ज्यादा समझदार था।
छह महीने बाद ठीक दिन पर वह एक बहुत खूबसूरत पेटी लेकर बाहर निकला और उसने सैनिकों से कहा कि, "राजमहल चलें, दिन आ गया और वस्त्र आ गये।"
सारी राजधानी इकट्ठी हो गई। दूर-दूर के राजे-महाराजे देखने इकट्ठे हो गए। भारी जलसा मनाया गया। वह आदमी जब दरबार में ही पेटी लेकर आ गया तब तो शक का कोई कारण ही नहीं रहा। उसने लाकर पेटी रख दी। पेटी का ढक्कन खोला, हाथ भीतर डाला और खाली हाथ बाहर निकाला और राजा से कहा, "यह पगड़ी लें।" राजा ने देखा, "पगड़ी तो कुछ दिखाई नहीं पड़ती, हाथ खाली है।" और तभी उस आदमी ने कहा, "एक स्मरण आप को दिला दूं, देवताओं ने कहा है कि जो अपने ही बाप से पैदा हुआ होगा उसी को पगड़ी और वस्त्र दिखाई पड़ेंगे। आपको पगड़ी दिखाई पड़ती है न?"
राजा ने कहा, "बिल्कुल दिखायी पड़ती है। वह पगड़ी वहां थी नहीं, हाथ खाली था

और सारे दरबारी ताली बजाने लगे। उनको भी पगड़ी नहीं दिखायी पड़ती थी, लेकिन वे सभी कहने लगे आगे बढ़कर, "ऐसी सुंदर पगड़ी तो हमने कभी देखी नहीं थी। पगड़ी बहुत सुंदर है, बड़ी अदभुत है, आदमी ने कभी देखी नहीं यह पगड़ी तो!"
अब जब सभी दरबारी कहने लगे कि पगड़ी बहुत सुंदर है, राजा मुश्किल में पड़ गया। और उस आदमी ने कहा, "अच्छा अपनी पगड़ी निकालिये और यह पगड़ी पहन लीजिये।" वह पगड़ी उसने अलग कर दी और वह झूठी पगड़ी जो थी ही नहीं, वह राजा ने पहन ली। पगड़ी तक ही बात होती तो ठीक थी, लेकिन राजा दिक्कत में पड़ गया। धीरे-धीरे कोट भी उतर गया, फिर आखिरी वस्त्र भी उतरने का वक्त आ गया। राजा नंगा होने लगा, लेकिन सारे दरबारी चिल्ला रहे हैं, कि बहुत सुंदर वस्त्र हैं! अदभुत! ऐसे वस्त्र कभी देखे नहीं। क्योंकि जो दरबारी जोर से नहीं कहेगा, लोग शक करेंगे कि पता नहीं अपने पिता से पैदा हुआ है या किसी और से पैदा हुआ है!
और जब सारी भीड़ चिल्लाती हो तो एक-एक आदमी को यह लगा कि मेरी आंखें गलत देखती होंगी। या मैं ही अपने पिता के बाबत गलती में रहा अब तक। बाकी सारे लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। इतने लोग गलत तो नहीं कह सकते। इतनी मेजॉरिटी, इतना बहुमत! जब सभी कहते हैं तो ठीक कहते

होंगे। इतना लोकतांत्रिक है कि सभी ठीक कह रहे हैं। जब इतने लोग कह रहे हैं! सभी तो गलती में नहीं हो सकते। मैं अकेला गलती में हो सकता हूं, इसलिए अगर चुपचाप रह जाऊं तो लोग समझेंगे कि मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा।
राजा डरा, अब अंतिम वस्त्र उतारे या न उतारे? एक तरफ यह था कि सारा दरबार नग्न देख लेगा और दूसरी तरफ यह डर था कि यह नग्नता तो फिर भी ठीक है, लेकिन अगर दुनिया को यह पता चल गया कि मैं अपने बाप से पैदा नहीं हुआ तो और मुश्किल हो जायेगी। अब बड़ी मुश्किल थी--इधर गिरे तो कुआं, उधर गिरे तो खाई। आखिर नग्नता को ही स्वीकार करना ठीक था। कम से कम पिता तो बचते थे, वंश तो बचता था। नंगा ही देख लेंगे लोग और क्या! जब सबको वस्त्र दिखायी पड़ रहे हैं तो हो सकता है दिखाई पड़ रहे हों। और मैं ही गलती में हूं और व्यर्थ की झंझट हो जाये। तो उसने अंतिम वस्त्र भी छोड़ दिया। वह नंगा का नंगा खड़ा हो गया।
फिर उस आदमी ने कहा कि, महानुभाव, देवताओं के वस्त्र पहली दफा पृथ्वी पर उतरे हैं। आपकी शोभा-यात्रा निकलनी चाहिए। रथ पर आपको गांव में घुमाया जाना चाहिए। राजा बहुत डरा, लेकिन अब कोई रास्ता न था।

जब आदमी पहली कड़ी पर गलती कर जाता है, तो फिर किसी भी कड़ी पर रुकना बहुत मुश्किल हो जाता है। फिर लौटना मुश्किल हो जाता है। ईमानदारी पहली कड़ी पर अगर नहीं की गयी तो फिर आगे की कड़ियों पर आदमी और बेईमानी, और बेईमानी में गिरता चला जाता है, फिर उसे मुश्किल हो जाता है कहां से लौटे, क्योंकि हर कड़ी और कड़ी में बांधने का रास्ता बन जाती है।
अब वह मुश्किल में पड़ गया था, अब इनकार नहीं कर सकता था। रथ पर बैठकर उसकी शोभा-यात्रा निकली है। हो सकता है आप भी उस नगर में रहे हों, क्योंकि बहुत लोग उस नगर में थे और सबने वह शोभा-यात्रा देखी और आप भी रहे होंगे तो आपने भी उन वस्त्रों की तारीफ की होगी; क्योंकि कौन चूकता है, कौन मौका छोड़े। सब लोग जोर से तारीफ करने लगे कि वस्त्र बहुत सुंदर हैं। सुनते ही सुनते एक बच्चे ने जो अपने बाप के कंधे पर बैठा हुआ भीड़ में आ गया था, उसने भर यह कहा था कि "पिताजी, राजा तो नंगा मालूम होता है।" उसके बाप ने कहा, "नासमझ चुप रह, अभी तेरी उम्र कम है, अभी तुझे अनुभव नहीं है। जब तुझे अनुभव होगा, तुझे भी वस्त्र दिखायी पड़ने शुरू हो जायेंगे। मुझको वस्त्र दिखायी पड़ते हैं।"
बच्चे कभी-कभी सत्य कह देते हैं, लेकिन बूढ़े उनके सत्य को टिकने नहीं

देते, क्योंकि बूढ़ों का अनुभव ज्यादा है। और अनुभव बड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि अनुभव के कारण ही उस बूढ़े ने कहा, चुप रह! जब तुझे अनुभव होगा तुझे भी वस्त्र दिखायी पड़ेंगे। हम सबको दिखायी पड़ रहे हैं। हम पागल हैं? कभी-कभी बच्चे कह देते हैं, यह भगवान की मूर्ति में हमें भगवान नहीं दिखायी पड़ते हैं। तो बूढ़े कहते हैं, चुप! हमको भगवान दिखायी पड़ रहे हैं। वह रामचंद्र जी खड़े हुए हैं। अनुभव होगा, तुझको भी दिखायी पड़ेंगे।
आदमी एक म्यूचुअल डिसेप्शन में, एक पारस्परिक धोखे में बंधा हुआ है। और जब सारे लोग एक ही धोखे में बंधे होते हैं, तो दिखायी पड़ना मुश्किल हो जाता है। आपको खोज लेना जरूरी है कि जिन ज्ञान के वस्त्रों को आप वस्त्र समझ रहे हैं, वे वस्त्र हैं या कि आप उन वस्त्रों में भी नग्न खड़े हुए हैं? यह कसौटी अपने एक-एक विचार को कसकर देख लेने की है कि यह मैं जानता हूं? अगर नहीं जानते हैं तो नर्क जाने को तैयार हो जाना, लेकिन इस झूठे ज्ञान को पकड़ने को तैयार मत होना। क्योंकि यह ईमानदारी की पहली शर्त है कि जो आदमी नहीं जानता जिस बात को, कह दे कि मैं नहीं जानता हूं। यह बेईमानी की शुरुआत है। और ब.ड़ी बेइमानियां दिखायी नहीं पड़तीं, छोटी बेइमानियां दिखायी

पड़ती हैं। एक आदमी दो पैसे की बेईमानी करता है, तो हमें दिखायी पड़ती है और एक आदमी पत्थर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर कहता है कि हे परमपिता! हे परमेश्वर! और पूरी तरह जानता है कि पत्थर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ रहा है, यहां कोई परमेश्वर, कोई परमपिता दिखायी नहीं पड़ रहा है, और यह आदमी ईमानदार और धार्मिक मालूम होता है, इससे ज्यादा बेईमान और धोखेबाज आदमी जमीन पर खोजना कठिन है! यह बिल्कुल धोखे की बात कह रहा है, यह बिल्कुल सरासर झूठी बात कह रहा है जिसका इसके भीतर कोई एहसास नहीं हो रहा है। लेकिन इतना साहस नहीं जुटा पाता है कि इस बात को समझ ले कि मैं यह क्या कह रहा हूं? यह मैं क्या कर रहा हूं?
धार्मिक आदमी वह है और धार्मिक होने की शुरुआत इस बात में है, कि वह ठीक से इस बात को पहचान ले कि "क्या मैं जानता हूं और क्या मैं नहीं जानता हूं?" वह आदमी धार्मिक नहीं है जो कहे कि मैं ईश्वर को जानता हूं और आत्मा को जानता हूं। मैंने स्वर्ग देख लिया और नर्क देख लिया। वह आदमी धार्मिक है जो कहे कि मुझे तो कुछ भी पता नहीं है, मैं बिल्कुल अज्ञानी हूं। मुझे कोई भी ज्ञान नहीं है, मुझे अपना ही पता नहीं है, मैं कैसे कहूं कि मैं ईश्वर को

जानता हूं! सामने मकान के जो पत्थर पड़ा है, उसको भी मैं नहीं जानता हूं। मैं परमात्मा को जानता हूं, कैसे कहूं? जिंदगी बहुत रहस्यपूर्ण है, अज्ञात है। मुझे कुछ भी पता नहीं है, मैं तो बिल्कुल अज्ञानी हूं। अगर आप अज्ञानी होने का साहस कर सकते हैं, इस स्वीकृति का कि मैं अज्ञानी हूं तो आपके विचारों के जाल से छुटकारे का रास्ता शुरू हो जाता है अन्यथा शुरू नहीं होगा। यह बात एक समझ लेने की है कि हम अत्यंत अज्ञानी हैं, हमें कुछ भी पता नहीं है। और जो भी हमें पता मालूम पड़ता है कि पता है वह बिल्कुल झूठा, उधार और बासा है। वह हौज की तरह है, वह कुएं की तरह नहीं है। और अगर जीवन में एक कुआं बनाना है तो हौज के भ्रम से मुक्त हो जाना अत्यंत जरूरी है।

प्रश्न--अस्पष्ट ध्वनि-मुद्रण!

कोई अभिप्राय नहीं है। मैं तो कृष्णमूर्ति जी को जानता नहीं, एक बात। दूसरी बात, जब मैं कुछ कह रहा हूं, और अगर आप तौलते हैं कि वह किसके साथ समानता रखता है, और किस के साथ असमानता रखता है, तो आप मुझे सुन ही नहीं पायेंगे। आप उस तौल में ही समय खराब कर देंगे। और यह बिल्कुल असंभव है कि दो

आदमियों की बात समान हो, क्योंकि दो आदमी समान नहीं हैं। दो पत्ते समान नहीं हैं, दो पत्थर समान नहीं हैं। कुछ शब्दों की समानता हो सकती है, कुछ ऊपरी समानता हो सकती है किसी बात में, लेकिन जगत में एक-एक आदमी इतना भिन्न और पृथक है, कि ठीक-ठीक, समान कुछ भी नहीं हो सकता है।
लेकिन उसे अगर तौलने बैठें कि किस चीज से मेरी बात समान है; गीता से मिलती है, कृष्णमूर्ति जी से मिलती है, कि रामकृष्ण से मिलती है, कि महावीर से मिलती है तो आप मेरी बात नहीं सुन पायेंगे, क्योंकि बीच में यह रामकृष्ण और कृष्णमूर्ति और महावीर बीच में इतना उपद्रव खड़ा कर देंगे कि मेरी बात आप तक नहीं पहुंच पाएगी। सीधा आपसे मेरा कोई संबंध नहीं पैदा हो पायेगा।
तो मुझे पता नहीं, लेकिन इतनी प्रार्थना है कि उसे तौलने की और समानता बिठाने की या असमानता देखने की कोई जरूरत ही नहीं है। वह बात ही फिजूल है, उसका कोई प्रयोजन ही नहीं है। उससे कुछ हित भी नहीं होता।
लेकिन हमारे जीवन में कुछ सामान्य आदतें बन गई हैं, उनमें एक तुलना की आदत है। हम बिना तौले आंक ही नहीं सकते। कोई भी बात हमें आंकनी है तो हम कंपेअर किए बिना, तौले बिना नहीं सोच सकते कि यह

बात कैसे हो सकती है। और जब भी हम तुलना करते हैं, तभी भूल शुरू हो जाती है। अगर हम एक चमेली के फूल को गुलाब के फूल से तौलें तो भूल शुरू हो जाती है। चमेली का फूल चमेली का फूल है, और गुलाब का फूल गुलाब का फूल है, और घास का फूल घास का फूल है। न तो घास के फूल से गुलाब का फूल आगे है, न पीछे है। घास का फूल अपनी निजता में जीता है, गुलाब का फूल अपनी निजता में जीता है। न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है, न कोई समान है, न कोई असमान है, प्रत्येक अपने ही जैसा है और कोई किसी जैसा नहीं है।
अगर चीजों की यह इंडिविजुअलिटी, इनका व्यक्तित्व, उनका अनूठापन हमें दिखायी पड़ना शुरू हो जाए तो हम तौलना बंद कर देंगे।
लेकिन हमारी तौलने की आदत--एक छोटे-से बच्चे को भी हम तौलते हैं। हम कहते हैं कि देखो, दूसरा बच्चा तुझसे आगे निकल गया, तू पीछे रह गया; हम बच्चे के साथ अन्याय कर रहे हैं। क्योंकि दूसरा बच्चा दूसरा बच्चा है, यह बच्चा है, यह बच्चा है! इन दोनों के बीच तौल की कोई गुंजाइश नहीं है। ये दोनों बिल्कुल भिन्न हैं अपने होने में। ये अपनी निजता में, अपनी आथेंटिसिटी में बिल्कुल अलग हैं, इनका कोई संबंध नहीं है।

लेकिन हमारी तौल की आदतें--हमारी शिक्षा भी तौलना सिखाती है, हमारे विचार भी तौलना सिखाते हैं। बिना कंपेअर किए हम हिसाब ही नहीं लगा पाते। और इसका परिणाम यह होता है कि हम सीधे किसी व्यक्ति को नहीं समझ पाते, न सीधे किसी विचार को समझ पाते हैं, बीच में और बहुत-सी बातें खड़ी हो जाती हैं।
तो मैं तो इतनी ही प्रार्थना करूंगा, मुझे तो पता नहीं कितनी समानता हो सकती है, कितनी असमानता हो सकती है, मैंने तौला नहीं। और आपसे प्रार्थना करूंगा आप भी न तौलें। और मुझे और उनको ही नहीं किसी को भी कभी किसी से मत तौलें। लेकिन यह सिलसिला चलता है कि महावीर और बुद्ध में कितनी समानता है, और क्राइस्ट में और मोहम्मद में कितनी समानता है, और कृष्ण और राम में कितनी समानता है--सब पागलपन है! कोई समानता- असमानता का सवाल नहीं, क्योंकि प्रत्येक बस अपने ही जैसा है, दूसरे से उसका कोई वास्ता ही नहीं, दूसरे से उसका कोई संबंध ही नहीं। कितना ही क्यों न फिजूल हो क्योंकि जब समानता ही नहीं है तो असमानता कहने का भी कोई कारण नहीं है।
प्रत्येक अपने जैसा अलग ही है। और इस जगत में दो व्यक्ति पुनरुक्त नहीं होते, दो घटनायें पुनरुक्त नहीं होतीं।

दो अनुभव पुनरुक्त नहीं होते, रिपिटीशन जैसी चीज होती ही नहीं जीवन में। जीवन बिल्कुल ही सतत अनूठेपन को पैदा किए चला जाता है। इसलिए तौलने की कोई जरूरत नहीं है। न हिसाब लगाने की जरूरत है। कृष्णमूर्ति जी को सुनते हो तो उन्हें सीधा समझने की जरूरत है, मुझे सुनते हो तो मुझे सीधा सुनने की जरूरत है। अपने पड़ोसी को सुनते हो तो उसे सीधा सुनने की जरूरत है। अपनी पत्नी की बात सुनते हो तो उसे भी सीधा सुनने की जरूरत है। दो के बीच में तीसरा खड़ा हुआ कि कठिनाई और विवाद होने शुरू हो जाते हैं। दो के बीच तीसरे की कोई भी जरूरत नहीं है। सीधा, इमीजिएट, सीधा हमारा संपर्क और संबंध होना चाहिए।
अगर मैं एक गुलाब के फूल के पास खड़ा हूं और मुझे वह फूल ख्याल आ जायें जो मैंने कल देखे थे, और सोचने लगूं कितनी समानता है इस फूल में और उन फूलों में, तो इस फूल को देखना बंद हो जाएगा। एक बात तय है क्योंकि वह फूल जो बीच में आ गए हैं उनकी छाया इस फूल को नहीं देखने देगी। अगर इस फूल को देखने में जो मेरे सामने है, तो वे सारे फूल भूल जाने जरूरी हैं, जो मैंने कभी देखे हों। उनको बीच में लाना इस फूल के साथ अन्याय हो जायेगा। और इस फूल की याद भी साथ ले जाने की जरूरत नहीं है कि कल कहीं किसी

दूसरे फूल को देखते वक्त यह फिर बीच में आ जाए। तो न कृष्णमूर्ति जी को यहां लाइये। मुझे सुनने से कहीं इस ख्याल में मत पड़ जाइये कि कल किसी और को सुनते हुए मुझे बीच में खड़ा कर लें, तो फिर उस आदमी के साथ अन्याय होना शुरू हो जायेगा।
जिंदगी को सीधा देखिए, किसी को बीच में लेने की कोई भी जरूरत नहीं है। न कोई समान है, न कोई असमान है। प्रत्येक बस अपने जैसा है और प्रत्येक अपने जैसा हो, यही मेरी कामना है।
प्रत्येक अपने जैसा होना चाहिए, यही मुझे जीवन का बुनियादी सूत्र दिखाई पड़ता है। लेकिन अब तक हम इसके लिए राजी नहीं हो सके हैं। अब तक मनुष्य जाति इस बात के लिए राजी नहीं हो सकी कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके जैसा वह है, उसको स्वीकार कर ले। हम कोशिश करते हैं वह किसी और जैसा हो जाये। महावीर जैसा हो जाए, बुद्ध जैसा हो जाए, गांधी जैसा हो जाए। यह एक-एक आदमी के व्यक्तित्व का सीधा अपमान है। जब हम किसी से कहते हैं, तुम गांधी जैसे हो जाओ, तो हमने इतना भारी अपमान किया उस व्यक्ति का जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि वह अगर गांधी होने को पैदा हुआ था तो गांधी हो चुके हैं, इसकी क्या जरूरत है! इस आदमी को यह कहना कि तुम गांधी जैसे हो जाओ, यह कहना

है कि तुम्हें तुम्हारे जैसे होने का कोई हक नहीं है। तुम्हें किसी और की कापी होने का, किसी का अनुकरण होने का ही हक है। तुम केवल कार्बन कापी ही हो सकते हो, तुम मूल प्रति नहीं हो सकते। इस आदमी का अपमान है।
तो मैं तो नहीं कहता कि कोई किसी जैसा हो जाए। मैं तो यही कहता हूं, हरेक अपने जैसा हो जाए। तो यह दुनिया एक अदभुत सुंदर दुनिया बन सकती है। अभी तक हमने यही कोशिश की है कि कोई किसी जैसा हो जाए, कोई किसी जैसा हो जाए। और इसीलिए हम तुलना करते हैं, इसीलिए हम विचार करते हैं, इसीलिए हम खोजते हैं। कोई भी आवश्यकता नहीं, अत्यंत अनावश्यक है ऐसा सोचना।
इस संबंध में कुछ और प्रश्न होंगे तो रात हम फिर उन पर बात करेंगे।
फिर मैं अंत में दोहरा दूं--एक ही बात मैंने कही है, जो बहुत बुनियादी है। अपने ज्ञान को कसें, खोजें कि वह आपका अपना है या किसी और का। और अगर आपको दिखायी पड़ जाये कि वह किसी और का है तो वह व्यर्थ हो जायेगा। और जिस दिन आपको दिखायी पड़ जाये कि मेरे पास अपना अभी कोई ज्ञान नहीं, उसी क्षण से आपके भीतर अपने ज्ञान के जन्म की किरण उतरनी शुरू होती है। उसी क्षण से एक क्रांति शुरू हो जाती है।

फिर कोई और प्रश्न होंगे तो रात उन पर हम बात करेंगे। दोपहर की बैठक पूरी हुई।

अंतर्यात्रा-सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन
प्रवचन-6
विश्वास-मात्र से छुटकारा

□□□□ □□□□□ □□□□□□!

विचार की शृंखलाओं में मनुष्य एक कैदी की भांति बंधा है। इस कारागृह की नींव में कौन-से पत्थर लगे हैं, उन पत्थरों में एक पत्थर के संबंध में दोपहर हमने बात की। दूसरे और उतने ही महत्वपूर्ण पत्थर के संबंध में अभी रात हमें बात करनी है। अगर बुनियाद के ये दो पत्थर हट जायें--सीखे हुए ज्ञान को ज्ञान समझने की भूल समाप्त हो जाये और दूसरा और पत्थर जिसकी मैं अभी बात करूंगा, वह हट जाये तो मनुष्य विचारों के जाल से अत्यंत सरलता से ऊपर उठ सकता है। दूसरा कौन-सा पत्थर है? कौन-से दूसरे आधार पर मनुष्य के मन में विचारों का भवन और विचारों का जाल गूंथा गया और खड़ा किया गया है, शायद आपको ख्याल में भी न हो। यह ख्याल भी न होगा कि हम इतने अंतर्विरोधी, सेल्फ-कंट्राडिक्टरी विचारों से कैसे भर गये हैं!
हमारी दशा उस बैलगाड़ी की भांति है जिसमें चारों तरफ बैल जोत दिये गये हों और उन सभी बैलों को भगाने की कोशिश की जा रही हो, ताकि हम मंजिल तक पहुंच जायें। उस बैलगाड़ी के प्राण संकट में पड़ गये हैं, उसका अस्थि-पंजर ढीला हुआ जाता है। चारों तरफ बैलों से खींच रहे हैं, विरोधी दिशाओं में। वह बैलगाड़ी कहीं पहुंच सकती है? कोई मंजिल पर उसका पहुंचना हो सकता है? एक ही मंजिल हो

सकती है उसकी। उस बैलगाड़ी की मौत हो सकती है, और कोई मंजिल नहीं हो सकती। वह बैलगाड़ी मर जायेगी। चारों तरफ बैल उसकी हड्डियां और अस्थि-पंजर खींचकर निकल जायेंगे और तो कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन वह बैलगाड़ी कहीं पहुंच नहीं सकती। क्योंकि चारों तरफ विरोधी दिशाओं में एक ही साथ बैल जुते हुए हैं। हमारे मन के विचारों का अंतर्द्वंद्व हमारे प्राण लिये लेता है। हमारे सब विचार असंगत और स्व-विरोधी हैं--एक-दूसरे के विरोध में खड़े हुए हैं। और हमारे सब विचारों के बैल हमारे मन को अलग-अलग दिशाओं में खींच रहे हैं और हम उसके बीच पीड़ित और परेशान हैं। यह जो सेल्फ-कंट्राडिक्शन है, यह जो अंतर्विरोध है विचारों का, यह हमारे ख्याल में भी नहीं है कि हमारे भीतर किस भांति बैठा हुआ है।
मैं एक बहुत बड़े डाक्टर के घर में मेहमान था। सुबह ही कहीं जाने को मैं और वह डाक्टर दोनों घर के बाहर निकलते थे कि डाक्टर के छोटे बच्चे को छींक आ गयी। और उस डाक्टर ने कहा, थोड़ी देर रुक जायें, दो मिनट रुक जायें फिर हम चलेंगे। मैंने कहा कि तुम बड़े अजीब डाक्टर मालूम होते हो, क्योंकि डाक्टर को तो कम से कम पता होना चाहिए कि छींक आने का क्या कारण होता है और छींक आने

से किसी के कहीं जाने और रुक जाने का क्या संबंध है? डाक्टर को भी यह पता न हो तो फिर आश्चर्य हो गया!
मैंने उन डाक्टर को कहा कि, अगर मैं बीमार पड़ जाऊं और मरने की भी हालत आ जाये तो भी आपसे इलाज करवाने को राजी नहीं हो सकता हूं। मेरी दृष्टि से तो आपका प्रमाण-पत्र छीन लिया जाना चाहिए कि आप डाक्टर हो! यह बात गलत है। छींक आने से आप रुकते हो, बड़ी हैरानी की बात है। वह कहने लगे बचपन से सुना हुआ ख्याल काम करता है। बचपन से सुना हुआ ख्याल भी काम कर रहा है। और वह डाक्टर भी हो गये हैं। वे एफ.आर.सी.एस. भी हो गए हैं लंदन से जाकर। और ये दोनों विचार एक साथ मौजूद हैं। छींक आती है तो पैर रुकते हैं और वह भली-भांति जानते हैं कि निपट बेवकूफी है! छींक से रुकने का कोई भी संबंध नहीं है। ये दोनों विचार एक साथ मन में किसी के बैठे काम कर रहे हैं। हमारे भीतर इस तरह के हजारों विचार एक साथ बैठे हुए हैं और वे सब विचार हमें खींच रहे हैं अलग-अलग दिशाओं में। और तब हमारी यह अस्त-व्यस्त दशा हो गयी है--जो हमें दिखायी पड़ती है। यह जो आदमी बिल्कुल पागल मालूम होता है, यह इसीलिए मालूम होता है। यह पागल न होगा तो और क्या होगा?

विक्षिप्तता बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि हजारों-हजारों वर्षों से अनंत-अनंत अंतर्विरोधी विचार एक ही मनुष्य के मन में इकट्ठे हो गये हैं। हजारों पीढ़ियां एक साथ एक-एक आदमी के भीतर जी रही हैं। हजारों सैंचुरियां एक साथ एक आदमी के भीतर बैठी हुई हैं। पांच हजार साल पहले का ख्याल भी बैठा है और अत्याधुनिक समय का ख्याल भी उसके भीतर बैठा है। और इन दोनों विचारों में कोई तुक और कोई सामंजस्य नहीं हो सकता है। हजारों दिशाओं से पैदा हुए ख्याल उसके भीतर बैठे हैं, हजारों तीर्थंकरों और पैगंबरों, अवतारों और गुरुओं के ख्याल उसके भीतर बैठे हुए हैं, और इन सबने एक अदभुत बात की है। दुनिया के सारे धर्म, सारे शिक्षक, सारे उपदेशक एक बात पर राजी रहे हैं--और किसी बात पर राजी नहीं रहे--और वे इस बात पर राजी रहे हैं, आदमी को समझाने के लिए कि जो हम कहते हैं उस पर विश्वास करो। सभी यह कहते हैं कि जो हम कहते हैं उस पर विश्वास करो।
और सब बातों में विरोध हैं। हिंदू कुछ और कहता है, मुसलमान कुछ और कहता है, जैन कुछ और कहते हैं, ईसाई कुछ और कहते हैं। लेकिन एक मामले में वे सब सहमत हैं कि हम जो कहते हैं, उस पर विश्वास करो। और ये सब विरोधी बातें कहते हैं। और आदमी

के प्राणों पर इन सारे लोगों की विरोधी बातें पड़ती हैं और वे सभी चिल्लाते हैं कि हम जो कहते हैं उस पर विश्वास करो। और आदमी बेचारा गरीब है और कमजोर है, इन सब की बातों पर विश्वास कर लेता है। वे सब एक-दूसरे की बातों पर हसंते हैं, लेकिन खुद की बेवकूफियों पर कोई भी नहीं हंसता है।
अगर ईसाई कहते हैं कि जीसस क्राइस्ट कुंवारी कन्या से पैदा हुए हैं और जो इस बात को नहीं मानेगा वह नर्क में पड़ेगा; इस बात को मानना बिल्कुल जरूरी है, नहीं तो नर्क जाना पड़ेगा। और गरीब, कमजोर आदमी डरता है कि नर्क जाने से बचने के लिए कोई हर्जा भी क्या है! हुए होंगे जीसस क्राइस्ट कुंवारी कन्या से पैदा तो मान लेने में हर्ज क्या है। और नर्क जाने की जरूरत क्या है इस बात के पीछे। वह मान लेता है कि ठीक कहते हैं--होंगे। सारी दुनिया के बाकी लोग हंसते हैं-- मुसलमान हंसते हैं, जैन हंसते हैं, हिंदू हंसते हैं कि यह पागलपन की बात है। कुंवारी लड़की से बच्चा पैदा कैसे हो सकता है? निहायत नासमझी की बात है। लेकिन मुसलमान कहते हैं कि मोहम्मद अपनी घोड़ी पर बैठे हुए सदेह मोक्ष चले गये। इस पर ईसाई हंसते हैं, इस पर हिंदू हंसते हैं, इस पर जैन हंसते हैं कि यह क्या पागलपन की बात है। पहली तो बात यह

है कि घोड़ी तो मोक्ष जा ही नहीं सकती। घोड़ा होती तो जा भी सकती थी, क्योंकि स्त्रियों को मोक्ष जाने की कोई व्यवस्था नहीं है, पुरुष तो मोक्ष जा भी सकता है। एक तो घोड़ी जा ही नहीं सकती मोक्ष। घोड़ा होती तो बर्दाश्त भी कर लेती, यह बात चल भी सकती थी। और फिर सदेह कोई स्वर्ग, मोक्ष कैसे जा सकता है? देह तो यहीं छोड़ देनी पड़ती है, देह तो पृथ्वी की चीज है। कोई मोहम्मद पूरी देह को साथ लिए हुए मोक्ष नहीं जा सकते! इस पर सब हंसते हैं, ईसाई भी हंसते हैं, जैन भी, हिंदू भी। लेकिन मुसलमान कहते हैं कि यह मानो! अगर नहीं मानोगे तो नर्क चले जाओगे। नर्क में सड़ाये जाओगे, कष्ट भोगोगे। यह बात माननी ही पड़ेगी और नहीं मानोगे तो जानते हो, भली-भांति जान लेना, एक ही ईश्वर है जगत में और एक ही उसका पैगंबर है मोहम्मद। अगर नहीं उसकी बात मानी तो बड़े कष्ट में पड़ सकते हो। आदमी को डरवाया जाता है कि मानो, तो आदमी मान लेता है कि शायद यह ठीक हो। जैन हंसते हैं मुसलमानों पर, ईसाइयों पर। लेकिन जैन कहते हैं कि महावीर का गर्भ एक ब्राह्मण स्त्री के पेट में आया। लेकिन जैन तीर्थंकर कहीं ब्राह्मणों के घर में पैदा हो सकते हैं? असली और ऊंची जाति तो क्षत्रिय है, तो तीर्थंकर हमेशा क्षत्रियों के घर में

पैदा होते हैं। ब्राह्मणों के घर में पैदा नहीं होते। ब्राह्मण भिखमंगे के घर में कहीं तीर्थंकर पैदा हो सकते हैं? तो महावीर का जन्म तो एक ब्राह्मणी के गर्भ में आया था। लेकिन देवताओं ने देखकर कि यह तो बड़ी गलती हुई जा रही है; कहीं तीर्थंकर ब्राह्मण के घर में पैदा हो सकते हैं? उन्होंने रातों-रात उसका गर्भ निकालकर एक क्षत्राणी के गर्भ में रख दिया और क्षत्राणी की लड़की निकालकर उस ब्राह्मणी के गर्भ में रख दी।
सारी दुनिया के लोग हंसते हैं कि बड़े मजाक की बातें हैं ये। एक तो देवताओं को क्या मतलब कि किसी का गर्भ बदलें और यह बात हो कैसे सकती है? सारी दुनिया हंसती है, लेकिन जैन नाराज होते हैं कि अच्छा हंसते रहो, तुमको पता नहीं है कि हमारे तीर्थंकर ने जो कहा है और जो तीर्थंकर के बाबत कहा गया है, वह बिल्कुल सत्य है। जो नहीं मानेगा, वह कष्ट भोगेगा नर्क में, हमें कोई फिक्र नहीं है, तुम भोगते रहो।
ये सारे लोग दुनिया के इकट्ठे होकर आदमी से विश्वास मांगते हैं। ये सब कहते हैं कि विश्वास करो। और इन सबकी बातें... एक जमाना था कि आदमी को सबकी बातें पता नहीं थीं। अपने-अपने घेरे थे, अपने-अपने घेरे की बातें पता थीं तो इतनी उलझन न थी। अब दुनिया बहुत करीब आ

गयी है और सबको सबकी बातें पता चल गयी हैं तो आदमी की उलझन बिल्कुल पागलपन पर पहुंच गयी है। अब उसकी समझ के बाहर हो गया है कि यह सब शोरगुल किस बात के लिए मचाया जा रहा है। यह कौन-सी बात मनवाना चाहते हैं, क्या मनवाना चाहते हैं? लेकिन कोई बहुत अच्छी हालत पहले भी न थी। अगर हिंदू को मुसलमान की बातें पता नहीं थीं, अगर जैन को ईसाई की बातें पता नहीं थीं तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता था। जैन भी जरूरी रूप से एक ही बात नहीं कहते। दिगंबर कुछ और कहते हैं, श्वेतांबर कुछ और कहते हैं और ऐसी-ऐसी बातों पर मतभेद है कि जानकर हैरानी होगी। हम आंखें फाड़े रह जायेंगे कि यह भी कोई मतभेद की बातें हैं!
जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में एक तीर्थंकर हुए मल्लीनाथ। दिगंबर कहते हैं वे पुरुष थे और श्वेतांबर कहते हैं वे स्त्री थे। श्वेतांबर कहते हैं, वे मल्लीबाई थे; दिगंबर कहते हैं, वे मल्लीनाथ थे। और दोनों कहते हैं कि हमारी बात नहीं मानोगे तो नर्क जाना पड़ेगा। दिगंबर कहते हैं, स्त्री तो कभी तीर्थंकर हो ही नहीं सकती, यह तो बात ही झूठी है, इसलिए वे पुरुष ही थे। वह मल्लीनाथ थे, मल्लीबाई नहीं थे। हद हो गयी, एक आदमी के बाबत इस पर भी विवाद हो सकता है कि वह स्त्री है या पुरुष है! और

जो नहीं मानेगा उसके लिए नर्क का फल है और कष्ट भोगना पड़ता है। तो हम जो कहते हैं उसे मान लो।
और सारी दुनिया में आदमियों के मन पर विश्वास दिलाने वाले इन लोगों की शिक्षाओं ने एक उत्पात खड़ा कर दिया है और आदमी का मन इन सारी बातों में घबराया हुआ खड़ा रह गया है। वह सबकी सुन लेता है और उस सबके प्रभाव उसके भीतर छूट जाते हैं और फिर ये विरोधी दिशाओं में उसके प्राणों को खींचने लगते हैं।
फिर इन धर्मों से, सबके बाद में आया कम्युनिज्म। उसने कहा, सब धर्म अफीम का नशा है। इसमें कोई सार नहीं है, ईश्वर बिल्कुल झूठ है, यह सब बकवास है। असली धर्म तो वह है जो मार्क्स कहते हैं। कम्युनिज्म असली धर्म है। इसको मानना चाहिए और कुछ भी नहीं मानना चाहिए। बाइबिल गलत, गीता गलत, कुरान गलत, वह दास कैपिटल जो है वही असली धर्म-ग्रंथ है, उसको ही मानना चाहिए। उन्होंने एक नया... ।
फिर इसके पीछे विज्ञान आया, उसने कहा कि ये सब बातें फिजूल हैं। जो भी बातें धर्म-ग्रंथों में लिखी हैं, वे कोई भी ठीक नहीं। ठीक तो जो विज्ञान कहता है वही है। और एक वैज्ञानिक मर भी नहीं पाता है कि दूसरा वैज्ञानिक कहता है कि वह गलत था, ठीक जो कहते हैं वह यह है। वह

आदमी जिंदा ही रहता है और तीसरा वैज्ञानिक कहता है कि वह बात सब गड़बड़ थी, जो ठीक है वह मैं कहता हूं। और उसे भी पक्का भरोसा नहीं कि दो दिन नहीं बीत पायेंगे, कोई चौथा आदमी कहेगा कि यह सब गलत था। जो कहता हूं मैं, वह ठीक है। आदमी के मन पर यह सत्य के दावेदारों ने उसके चित्त के भीतर विचारों का एक ऐसा जाल खड़ा कर दिया है जो बहुत विरोधी है और सब दिशाओं में खींचता है। और इस जाल को खड़ा करने में भय का, फीयर का उपयोग किया गया है कि अगर आप नहीं मानते हैं तो नर्क है।
भय का और प्रलोभन का उपयोग किया गया है इस जाल को खड़ा करने में। यह जो विश्वास का जाल जबरदस्ती आदमी पर थोपा गया है इसके पीछे भय और प्रलोभन के सीक्रेट, सूत्र काम में लाये गये हैं। अगर मान लोगे तो स्वर्ग है और नहीं मानोगे तो नर्क है।
ये सारे धर्मगुरु वही करते रहे हैं जो आज के विज्ञापनदाता कर रहे हैं।
लेकिन विज्ञापनदाता इतने बोल्ड, इतने हिम्मतवर नहीं हैं। लक्स टायलेट को बेचने वाले कहते हैं कि फलां सुंदरी कहती है कि लक्स टायलेट लगाने से मैं सुंदरी हो गयी। जो लगायेगा वह सुंदर हो जायेगा, जो नहीं लगायेगा वह असुंदर हो जायेगा। तो भय पकड़ता है कि कहीं मैं

असुंदर न हो जाऊं। तो आदमी लक्स टायलेट साबुन खरीद लाता है। जैसे कि लक्स टायलेट जब नहीं थी तो लोग सुंदर नहीं थे। जैसे कि किल्योपेट्रा, मुमताज, और नूरजहां सुंदर न रही हों, क्योंकि लक्स टायलेट तो थी नहीं। अभी ज्यादा हिम्मत नहीं बढ़ी उनकी, नहीं तो आगे वे कहेंगे कि जो लक्स टायलेट नहीं लगायेगा, फलाने तीर्थंकर कहते हैं, फलाने पैगंबर कहते हैं, फलाने जगदगुरु कहते हैं कि वह नर्क जायेगा, वह स्वर्ग नहीं जा सकता। स्वर्ग में तो केवल उनको ही प्रवेश मिलेगा जो लक्स टायलेट साबुन का उपयोग करते हैं।
आदमी को डरवाया जा सकता है। स्वर्ग वे ही लोग जायेंगे जो पनामा सिगरेट पीते हैं, क्योंकि सिगरेट पीना और पिलाना-- पनामा सिगरेट पीना और पिलाना बहुत उम्दा बात है। और जिसने पनामा सिगरेट नहीं पी उसको नर्क में रहना पड़ेगा। और हिंदुस्तानी बनी हुई बीड़ी पीना पड़ेगी, उसे वहां बहुत कष्ट झेलने पड़ेंगे। और अगर कोई विश्वास नहीं करता तो खुद फल भोगेगा। जो विश्वास करता है उसको शुभ फल मिलते हैं, जो विश्वास नहीं करता है उसको अशुभ फल मिलते हैं।
लेकिन अभी इतनी हिम्मत आधुनिक विज्ञापनदाताओं में नहीं आयी है। वे पुराने विज्ञापनदाता बड़े हिम्मतवर लोग

थे। उन्होंने सरासर झूठी बातें कहकर भी आदमी को डरवा दिया और भयभीत कर दिया और हम उन बातों को मानते रहे और चुपचाप सुनते रहे हैं और चुपचाप स्वीकार करते रहे।
असल में कोई भी असत्य अगर बहुत बार दोहराया जाये, हजारों साल तक दोहराया जाये तो उसके दोहराने से वह सत्य जैसा प्रतीत होने लगता है। झूठी से झूठी बात अगर कोई आदमी दोहराये ही चला जाये और दोहराये ही चला जाये तो आपको धीरे-धीरे विश्वास पकड़ने लगता है कि शायद बात ठीक ही होगी, नहीं तो इतने दिन तक कैसे दोहराई जा सकती थी।
एक गांव में एक गरीब किसान शहर से जाकर एक बकरी का बच्चा खरीद लाया। वह बकरी के बच्चे को लेकर अपने गांव की तरफ चला और शहर के दो-चार बदमाश लोगों ने सोचा कि किसी भांति यह बकरी का बच्चा छीन लिया जाये तो अच्छा आज का भोजन का और एक उत्सव का आनंद आ जायेगा। कुछ मित्रों को बुला लेंगे और भोज हो जायेगा, लेकिन छीन कैसे लिया जाये? वह गांव का गंवार बड़ा तगड़ा और मजबूत आदमी मालूम पड़ता था। वे शहर के शैतान जरा कमजोर थे। उससे छीनना झगड़े की बात थी, उपद्रव हो सकता था। तो फिर कोई होशियारी से काम लिया जाये। तो उन्होंने एक तरकीब तय की और जब वह गांव

का आदमी शहर से बाहर निकलने को था, तो एक बड़े रास्ते पर उन पांच-छह लोगों में से एक आदमी उसे मिला और कहा कि, "नमस्कार! जयराम जी।"
उस आदमी ने जयराम जी की। और उस आदमी ने ऊपर देखा और कहा कि "अरे! यह आप कुत्ते का बच्चा सिर पर लिये चले जा रहे हैं? -- वह बकरी के बच्चे को अपने कंधे पर रखकर जा रहा था। --यह कुत्ता कहां से खरीद लाये? बड़ा अच्छा कुत्ता ले आये!"
वह किसान आदमी हंसा। उसने कहा, "पागल हो गये हैं आप? कुत्ता नहीं है, बकरी को खरीदकर लाया हूं, बकरी का बच्चा है।" उस आदमी ने कहा कि, "अरे गांव में कुत्ते को लिये मत पहुंच जाना, नहीं तो लोग पागल समझेंगे। यह बकरी समझ रहे हो इसको?"
और वह आदमी अपने रास्ते पर चला गया।
और वह किसान हंसा कि बड़ी अजीब बात है। फिर भी उसने एक दफा पैर टटोलकर देखे कि कहीं कुत्ता तो नहीं है, क्योंकि उस आदमी को क्या प्रयोजन था। देखा कि बकरी ही है।
निश्चिंत होकर आगे बढ़ा था कि दूसरी गली पर दूसरा आदमी मिला। उसने कहा कि, "नमस्कार, बड़ा अच्छा कुत्ता ले आये हैं। मैं भी कुत्ता खरीदना चाहता हूं। कहां से खरीद लिया आपने?" अब उतनी हिम्मत से वह किसान नहीं कह सका कि यह कुत्ता नहीं है। क्योंकि अब दूसरा आदमी कह रहा था और

दो-दो आदमी धोखे में नहीं हो सकते थे। फिर भी वह हंसा। और उसने कहा कि कुत्ता नहीं है साहब, बकरी है। वह आदमी कहने लगा, "किसने कहा बकरी है? किसी ने बेवकूफ बनाया मालूम होता है। यह बकरी है?" वह आगे अपने रास्ते पर चला गया। उस आदमी ने फिर जाकर बगल की गली में उस बकरी को उतारकर देखा कि देख लेना चाहिए कि क्या गड़बड़ है, लेकिन बकरी ही थी। ये दो आदमी धोखा खा गये। लेकिन डर उसके भीतर भी पैदा हो गया कि मैं किसी भ्रम में तो नहीं हूं।
अब की बार वह उसको लेकर डरा-डरा हुआ सा सड़क से जा रहा था कि तीसरा आदमी मिला। और उसने कहा कि नमस्कार! यह कुत्ता कहां से ले आये? अब की बार तो उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी कि यह कह दे कि यह बकरी है। उसने कहा कि, "जी यहीं से खरीद लाया हूं।" अब हिम्मत बहुत मुश्किल थी जुटाना कि कह सके कि यह बकरी है। थोड़ी देर में सोचा कि इसको गांव लेकर जाना कि नहीं, यह दो-चार-पांच रुपये गये सो एक तरफ, गांव में बदनामी होगी, लोग पागल समझेंगे।
जब वह यह सोच ही रहा था तो पांचवां आदमी मिला। कहा कि वाह, गजब कर दिया! आज तक कुत्ते को कंधे पर लिये किसी को नहीं देखा। क्या बकरी समझ रहे हो इसको?

उस आदमी ने देखा कि एकांत है, कोई नहीं है। उस बकरी को छोड़कर वह भागा अपने गांव की तरफ कि इसे यहीं छोड़ देना बेहतर है। जो पांच रुपए गये वे गये, पागलपन से तो बच जाना चाहिए। वे पांच आदमी उस बकरी को उठाकर ले गये।
पांच आदमियों ने बार-बार दोहराया और उस आदमी के लिए कठिनाई हो गयी यह बात को मानने में कि जो पांच कहते हैं वे गलत कहते हैं। और जब कहने वाले गेरुआ वस्त्र पहने हों तब और मुश्किल हो जाती है। और जब कहने वाले सचाई और ईमानदारी के मूर्तिमंत रूप हों तब तो और कठिन हो जाता है। और जब कहने वाले ईमानदार हों, जगत के त्याग करने वाले हों, तब तो और भी मुश्किल हो जाती है, क्योंकि उनकी बात पर अविश्वास करने की कोई वजह ही नहीं रह जाती। और यह भी जरूरी नहीं है कि वह आपको धोखा दे रहे हों। सौ में से निन्यान्नबे मौके ये हैं कि वे भी धोखा खाये हुए लोग हैं और उनको भी धोखा दिया जा रहा है। वे बेईमान हैं यह जरूरी नहीं है, लेकिन वे भी उसी चक्कर में हैं जिसमें आप हैं।
एक बात तय है कि जब तक आदमी को विश्वास करने के लिए कहा जायेगा, तब तक आदमी का शोषण जारी रहेगा, बिलीफ करने के लिए जब तक कहा जाएगा तब तक आदमी शोषण से मुक्त नहीं हो सकता। फिर चाहे वह विश्वास

हिंदू का हो, चाहे जैन का, चाहे मुसलमान का, चाहे किसी का भी--कम्युनिस्ट का हो, गैर कम्युनिस्ट का हो, किसी का भी हो--जब तक आदमी से यह कहा जायेगा कि हम जो कहते हैं उस पर विश्वास कर लो और नहीं विश्वास करोगे तो दुख पाओगे और विश्वास करोगे तो सुख पाओगे; जब तक कि यह तरकीब काम लायी जाएगी तब तक आदमी के भीतर जो विचारों का जाल खड़ा होता है, उसे तोड़ने का साहस जुटा पाना बहुत कठिन है।
मैं आपसे क्या कहना चाहता हूं; मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि अगर अपने भीतर जो जाल बन गया है, हजारों सदियों का हाथ है उसमें, सैकड़ों वर्षों के प्रभाव हैं उसके भीतर; अगर उनसे छुटकारा पाना है तो एक बात निश्चित मान लेनी चाहिए कि विश्वास से ज्यादा आत्मघातक और कोई चीज नहीं है। एक बात निश्चित समझ लेनी चाहिए कि विश्वास करना, अंधा विश्वास, आंख बंद किये चुपचाप मान लेना यही हमारे जीवन की आज तक की पंगुता का बुनियादी कारण रहा है। लेकिन सभी लोग कहते हैं, विश्वास करो। हां, वे यह जरूर कहते हैं, दूसरे पर मत करो मुझ पर करो। इतना वे जरूर कहते हैं कि दूसरों पर विश्वास मत करो, क्योंकि दूसरे गलत हैं, मैं सही हूं, मुझ पर विश्वास करो।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, किसी पर भी विश्वास करना घातक है और आपके जीवन को नुकसान पहुंचायेगा। विश्वास नहीं, विश्वास बिल्कुल भी नहीं। विश्वास के आधार पर जो खड़ा होगा, वह अंधी दुनिया में प्रवेश कर रहा है और उसके जीवन में कभी आंखों वाली रोशनी नहीं उतर सकती। उसके जीवन में कभी प्रकाश उपलब्ध नहीं हो सकता। वह कभी स्वयं जानने में समर्थ नहीं हो पायेगा जिसने दूसरों पर विश्वास कर लिया है।
तो मैं क्या कह रहा हूं, अविश्वास करें आप? नहीं! अविश्वास की भी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन हमें यह ख्याल है कि जब हम विश्वास नहीं करते, तो हम अनिवार्य रूप से अविश्वास करते हैं। यह बिल्कुल गलत ख्याल है। इन दोनों से अलग चित्त की अवस्था भी है जो न विश्वास करती है, न अविश्वास करती है, क्योंकि अविश्वास भी विश्वास का ही रूप है। वह जो डिस-बिलीफ है, वह भी बिलीफ का ही रूप है। जब हम कहते हैं, मैं ईश्वर पर विश्वास नहीं करता--तो हम क्या कहते हैं? --हम यह कहते हैं कि हम ईश्वर के न होने पर विश्वास करते हैं। जब हम कहते हैं, हम आत्मा पर विश्वास नहीं करते हैं; तो हम यह कह रहे हैं कि हम आत्मा के न होने पर विश्वास करते हैं।

विश्वास और अविश्वास दोनों एक ही तरह की चीजें हैं, उनमें कोई भेद नहीं है। विश्वास पाजिटिव बिलीफ है और अविश्वास निगेटिव बिलीफ है। विश्वास विधायक श्रद्धा है और अविश्वास निषेधात्मक श्रद्धा है, लेकिन दोनों श्रद्धा हैं। और वही आदमी भीतर के जाल से मुक्त हो सकता है जो श्रद्धा और विश्वास से ही मुक्त हो जाता है--जो समस्त दूसरे की तरफ देखने की दृष्टि और इच्छा से मुक्त हो जाता है; जो यह ख्याल ही छोड़ देता है कि कोई और मुझे सत्य दे सकता है। जब तक मुझे यह ख्याल है कि कोई और मुझे सत्य दे सकता है, तब तक मैं किसी न किसी रूप में बंध जाऊंगा। एक से छूटूंगा तो दूसरे से बंध जाऊंगा, दूसरे से छूटूंगा तो मैं तीसरे से बंध जाऊंगा, लेकिन मेरा बंधन से छुटकारा नहीं हो सकता है। और एक से छूटकर दूसरे से बंध जाना हमेशा राहतपूर्ण होता है।
एक आदमी मर जाता है, और चार आदमी उसकी अर्थी को उठाकर मरघट ले जाते हैं। एक कंधा दुखने लगता है तो दूसरे कंधे पर अर्थी के डंडे को रख लेते हैं। थोड़ी देर राहत मिलती है, थका हुआ कंधा! ... फिर दूसरा कंधा थक जाता है। थोड़ी देर में दूसरा कंधा भी थक जाता है, फिर कंधा बदल लेते हैं। जो विश्वास बदलता है, वह केवल कंधे बदल रहा है, बोझ हमेशा मौजूद रहता

है, कोई फर्क नहीं पड़ता। थोड़ी देर के लिए राहत मिल जाती है।
एक आदमी हिंदू से मुसलमान हो जाता है, मुसलमान से जैन हो जाता है, जैन से ईसाई हो जाता है, सब धर्मों को छोड़कर कम्युनिस्ट हो जाता है या कुछ और हो जाता है। जब तक वह आदमी एक विश्वास को छोड़कर दूसरे विश्वास को पकड़ता है तब तक उस आदमी के चित्त के बोझ में कोई अंतर नहीं आता, केवल कंधे बदल जाते हैं लेकिन थोड़ी देर को राहत मिलती है। और राहत का और कोई भी अर्थ नहीं है।
मैंने सुना हैः एक गांव में दो आदमी थे। एक आदमी आस्तिक था, परम आस्तिक था और एक आदमी नास्तिक था, परम नास्तिक था। उन दोनों लोगों की वजह से गांव बड़ा परेशान था। ऐसे लोगों की वजह से गांव हमेशा ही परेशानी में पड़ जाते हैं, क्योंकि आस्तिक दिन-रात गांव को समझाता था ईश्वर के होने की बात और नास्तिक दिन-रात खंडन करता था। गांव के लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गये थे कि किसके साथ जायें और किसके साथ न जायें। आखिर गांव के लोगों ने यह तय किया कि हम बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे। इन दोनों आदमियों को कहा जाये कि तुम दोनों गांव के सामने विवाद करो। जो जीत जायेगा हम उसी के साथ हो जायेंगे। यह परेशानी हमारे सिर पर मत डालो। तुम दोनों विवाद

कर लो। जो जीत जायेगा हम उसी के साथ हो जायेंगे।
एक रात, पूर्णिमा की रात, गांव में विवाद का आयोजन हुआ। सारे नगर के लोग इकट्ठे हुए। आस्तिक ने अपनी आस्तिकता की बातें समझायीं, सब दलीलें दीं, नास्तिकता का खंडन किया। नास्तिक ने आस्तिकता का खंडन किया, नास्तिकता के पक्ष में सारी दलीलें दीं। रात भर विवाद चला और सुबह जो परिणाम हुआ वह यह हुआ कि आस्तिक रात भर में नास्तिक हो गया और नास्तिक आस्तिक हो गया। उन दोनों को एक-दूसरे की बातें जंच गयीं। गांव की मुसीबत पुरानी की पुरानी बनी रही। वह कोई हल न हुआ। वे एक-दूसरे से कन्विंस हो गए, वे एक-दूसरे से राजी हो गये और गांव की परेशानी वहीं रही, क्योंकि फिर भी गांव में एक नास्तिक रहा और एक आस्तिक रहा, कुल जोड़ वही रहा। हम भी जीवन में एक विश्वास को बदलकर दूसरे विश्वास पर चले जायें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारे प्राणों की परेशानी वही रहती है। इससे कोई भेद नहीं पड़ता। प्राणों की परेशानी न हिंदू के कारण है, न मुसलमान के, न जैन के कारण है, न ईसाई के, न कम्युनिस्ट के कारण है, न फासिज्म के कारण।
प्राणों की परेशानी इस कारण है कि आप विश्वास करते हैं। जब तक आप विश्वास

करते हैं तब तक आप बंधन को आमंत्रित करते हैं, तब तक आप कारागृह में जाने को खुद निमंत्रण देते हैं अपने को। और तब तक आप किसी न किसी रूप में, कहीं न कहीं बंधे हुए होंगे।
और बंधा हुआ आदमी, बंधा हुआ मन विचारों से कैसे मुक्त हो सकता है? जिन विचारों को वह प्राणपण से पकड़ता हो और विश्वास करता हो उनसे कैसे मुक्त हो सकता है? वह उनसे कैसे छुटकारा पा सकता है? उनसे छुटकारा कठिन है। छुटकारा उनसे हो सकता है, अगर हम बुनियाद के पत्थर को हटा दें। विश्वास, बिलीफ बुनियाद का पत्थर है सारे विचारों के जाल के नीचे। विश्वास के आधार पर मनुष्य को विचारों में दीक्षित किया गया है और जब विचार मन को जोर से पकड़ लेते हैं तो भय भी पकड़ता है कि अगर मैंने इनको छोड़ दिया तो फिर क्या होगा। तो आदमी पूछता है कि अगर इससे बेहतर कुछ मुझे पकड़ने को पहले बता दें तो मैं उसे छोडूं भी, लेकिन पकड़ना ही छोडूं, यह उसके ख्याल में नहीं आ पाता।
और मन की फ्रीडम, मन की स्वतंत्रता और मन की मुक्ति विश्वासों के परिवर्तन में नहीं, विश्वास-मात्र से मुक्त हो जाने में है।
बुद्ध एक गांव में गये थे। एक अंधे आदमी को कुछ लोग उनके पास लाये और उन

मित्रों ने कहा कि, "यह आदमी अंधा है और हम इसके परम मित्र हैं। और हम इसे सब भांति समझाने की कोशिश करते हैं कि प्रकाश है, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता और इसकी दलीलें ऐसी हैं कि हम हार जाते हैं। और हम जानते हैं कि प्रकाश है, हमें देखते हुए हारना पड़ता है। यह आदमी हमसे कहता है, मैं प्रकाश को छूकर देखना चाहता हूं। अब हम प्रकाश का स्पर्श कैसे करवायें? यह आदमी कहता है छोड़ो, स्पर्श न हो सके तो मैं सुनकर देखना चाहता हूं, मेरे पास कान हैं। तुम प्रकाश में आवाज करो, मैं सुन लूं। छोड़ो, यह भी न हो सके तो मैं स्वाद लेकर देख लूं, या प्रकाश में कोई गंध हो तो गंध लेकर देख लूं।
कोई उपाय नहीं है। प्रकाश तो आंख से देखा जा सकता है और आंख इसके पास नहीं है। और यह आदमी यह कहता है कि तुम फिजूल ही मुझे अंधा सिद्ध करने को प्रकाश की बातें करते हो। तुम भी अंधे मालूम होते हो, प्रकाश की ईजाद तुमने मुझे अंधा बताने के लिए तय कर ली है। तो हमने सोचा, आप इस गांव में आये हैं, शायद आप इसको समझा सकें।
बुद्ध ने कहा कि, "मैं इसे समझाने के पागलपन में नहीं पड़ूंगा।" आदमी की आज तक मुसीबत ही उन लोगों ने की है जिन लोगों ने आदमी को ऐसी बातें समझाने की

कोशिशें की हैं जो उनको दिखाई नहीं पड़तीं। मनुष्य के ऊपर उपदेशक बड़ी महामारी सिद्ध हुआ है। वे ऐसी बातें समझाता है जो उसको दिखाई नहीं पड़तीं। तो बुद्ध ने कहा कि मैं यह गलती करने वाला नहीं हूं, मैं यह समझाने वाला नहीं हूं कि प्रकाश है। मैं तो इतना कह सकता हूं कि इस आदमी को तुम गलत जगह ले आये हो। मेरे पास लाने की जरूरत न थी। किसी वैद्य के पास ले जाओ जो इसकी आंख का इलाज कर सके। इसे उपदेश की नहीं, उपचार की जरूरत है। तुम्हारे समझाने का सवाल नहीं, तुम्हारी समझायी गयी बात पर विश्वास करने का सवाल नहीं। इसकी आंख ठीक होनी चाहिए और आंख ठीक हो जाये तो तुम्हें समझाने की जरूरत न पड़ेगी, यह खुद ही देख सकेगा, खुद ही जान सकेगा। उनको बात ठीक जंची। बुद्ध ने कहा है कि, मैं तो धर्म को उपदेश नहीं मानता हूं, उपचार मानता हूं। तो इसे ले जाओ। लोग उस अंधे को ले गये और भाग्य की बात थी कि वह अंधा कुछ महीनों के इलाज से ठीक हो गया। बुद्ध तो दूसरे गांव चले गये थे। वह अंधा आदमी ठीक हो गया था। वह बुद्ध के चरण छूने गया और उसने उन्हें प्रणाम किया और उसने कहा कि "मैं गलती में था। प्रकाश तो था, लेकिन मेरे पास आंख नहीं थी।" लेकिन बुद्ध ने कहा, "तू गलती में जरूर था, लेकिन तूने जिद्द की,

कि जब तक आंख न होगी तब तक मैं मानने को राजी न होऊंगा तो तेरे आंख का इलाज भी हो सका। अगर तू मान लेता उन मित्रों की बात कि तुम कहते हो तो ठीक है, तो बात वहीं खतम हो जाती। आंख के इलाज का सवाल ही नहीं उठता।"
जो लोग विश्वास कर लेते हैं, वे विवेक तक नहीं पहुंच पाते। जो लोग चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं, वे स्वयं के अनुभव तक नहीं पहुंच पाते। जो अंधे हैं और पकड़ लेते हैं कि दूसरे कहते हैं प्रकाश है तो जरूर होगा, फिर उनकी यात्रा वहीं बंद हो जाती है। यात्रा तो तब होती है जब बेचैनी बनी रहे, बनी रहे, बनी रहे, बेचैनी छूटे नहीं। और बेचैनी तभी होती है जब मुझे लगता है कि कोई चीज है, लोग कहते हैं लेकिन मुझे दिखाई नहीं पड़ती तो मैं कैसे मान लूं? मैं ही देखूं तो मानूं! यह बैचैनी मन में हो कि मेरे पास आंख हो तो मैं स्वीकार करूं।
विश्वास दिलाने वाले लोगों ने यह कहा है कि तुम्हें अपने आंख की कोई फिकर नहीं है। महावीर के पास आंख थी वह काफी है, बुद्ध के पास आंख थी वह काफी है। हर एक को आंख की क्या जरूरत है? सबको आंख की क्या जरूरत है! गीता में तो आंख है फिर तुम्हें क्या जरूरत है। गीता पढ़ो और मजा करो। कृष्ण को दिखाई पड़ता था, उन्होंने कह दिया। अब सभी को देखने की

क्या जरूरत है कि हर एक को देखना चाहिए। तुम तो विश्वास करो। बताने वाले और देखने वाले बता गये हैं, तुम्हारा काम विश्वास करना है। ज्ञान तो उपलब्ध हो गया है, अब तुम्हें जानने की क्या जरूरत है?
तो आदमी को अंधा रखने के लिए इस उपदेश ने काम किया। अधिकतम लोग पृथ्वी पर अंधे रह गये और अधिकतम लोग आज भी अंधे हैं। और जैसी स्थिति चल रही है शायद अधिकतम लोग आगे भी अंधे रहेंगे। क्योंकि अंधेपन को तोड़ने की जो बुनियादी कीमिया होती है, अंधेपन को तोड़ने की जो प्यास होती है उसकी हत्या कर दी गयी है। विश्वास देकर उसको समाप्त कर दिया गया है।
कहा जाना चाहिए यह कि चाहे कृष्ण की आंख कितनी भी अच्छी हो और कितनी भी दूर देखती हो, और महावीर की आंख कितनी भी सुंदर हो, कमल जैसी हो और कितनी ही दूर तक दिखाई पड़ता हो लेकिन महावीर की आंख महावीर की आंख है, मेरी आंख नहीं है। और मेरी छोटी-मोटी आंख सही, कमल जैसी न सही, घास के फूल जैसी सही, लेकिन मेरी आंख मेरे पास होगी तो ही मुझे दिखाई पड़ सकता है। तो मैं तो अपनी ही आंख की खोज करूंगा, दूसरों की आंखों की पूजा करने से मुझे कुछ उपलब्ध नहीं होगा।

लेकिन स्वयं की आंख की खोज शुरू तब होती है जब हम दूसरों की आंख का आसरा छोड़ देते हैं। जब तक कोई सब्स्टीट्यूट है आदमी के लिए, जब तक कोई चीज पूर्ति कर रही है उसकी, तब तक खोज-बीन पैदा नहीं होती।
जब कोई सहारा नहीं है, और कोई पूर्ति नहीं है और कोई मार्ग नहीं है दूसरे से मिलने वाला, तब आदमी के भीतर वह चुनौती जन्म लेती है कि वह अपने मार्ग की खोज में निकलता है, खुद की आंख की तलाश करता है।
आदमी बहुत आलसी है और अगर उसे बिना मेहनत किये ज्ञान मिल जाता हो तो वह काहे के लिए मेहनत करे, किसलिए उपाय करे। अगर बिना खोजे हुए विश्वास कर लेने से ही मोक्ष उपलब्ध हो जाता हो, तो फिर मोक्ष तक की यात्रा हम अपने पैरों से क्यों करें। और जब कोई यह कहता हो कि तुम हमको मान लो, हम तुम्हें मोक्ष पहुंचा देंगे तो फिर हम इतना श्रम क्यों लें, क्योंकि उतनी दूर तक जायें... ! जब कोई कहता है कि हमारी नाव में बैठ जाओ, हम पार लगा देंगे तो बात खतम हो गयी, हम चुपचाप नाव में बैठ जाते हैं और सो जाते हैं।
लेकिन कोई आदमी किसी दूसरे की नाव में कहीं भी नहीं पहुंच सकता है। और किसी दूसरे की आंख से न देख सकता है, न कभी

देखा है, न कभी देखेगा। अपने ही पैर से चलना होता है, अपनी ही आंख से देखना होता है, अपने ही हृदय की धड़कन में जीना होता है। खुद ही जीना होता है, और खुद ही मरना होता है। न तो मेरी जगह कोई जी सकता है और न मेरी जगह कोई मर सकता है। मेरी कोई जगह नहीं ले सकता, न मैं आपकी जगह ले सकता हूं। दुनिया में अगर कुछ असंभव है तो यह एक बात असंभव है कि कोई किसी की जगह ले ले।
दो सैनिक दूसरे महायुद्ध में एक युद्ध-स्थल पर पड़े थे। एक सैनिक बिल्कुल मरने के करीब था। उसे इतनी चोट पहुंची थी कि उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। घड़ी, आधा-घड़ी में उसके प्राण निकल जायेंगे। दूसरा सैनिक चोट तो खाया हुआ था लेकिन जिंदा था और मरने की कोई बात न थी। दोनों मित्र थे।
मरते हुए सैनिक ने अपने मित्र को गले मिलाया और कहा कि अब मैं बिदा लेता हूं और मेरे बचने की कोई संभावना नहीं है। जो मित्र जिंदा रहने को था अभी, उसने कहा, एक काम करो मरने के पहले। एक काम करो। मरते हुए मित्र ने उस जिंदा सैनिक को कहा कि एक काम करो--मेरी जो किताब है, मेरे नाम की जो किताब है, मेरा जो रिकार्ड है, वह तुम ले लो और तुम्हारी किताब का रिकार्ड मुझे दे दो। तुम्हारा रिकार्ड खराब है, तुम्हारे रिकार्ड में

बहुत असम्मानजनक बातें हैं, तो हम किताबें बदल लें अपनी। मैं तो मर ही रहा हूं। तुम्हारी किताब और तुम्हार नंबर मैं ले लेता हूं, अधिकारी समझेंगे कि तुम मर गए, और अधिकारी समझेंगे कि मैं जिंदा हूं। और मेरी किताब का रिकार्ड अच्छा है, तुम्हें अच्छी गति मिल सकेगी और आगे अच्छा प्रमोशन मिल सकेगा, तुम्हारी इज्जत बढ़ जाएगी। तो जल्दी करो यह किताब और नंबर बदल लो।
मरते हुए मित्र की यह आकांक्षा बिल्कुल ठीक थी, क्योंकि सैनिक के पास नंबर ही होता है, कोई नाम तो होता नहीं। सैनिक के पास तो रिकार्ड की किताब होती है, कोई आत्मा तो होती नहीं। यह ठीक था, बदलाहट कर ली जाए तो ठीक होगा, वह तो मर ही रहा है। तो एक बुरा आदमी मर जाएगा और अच्छा आदमी बच जाएगा।
लेकिन जो आदमी जिंदा रहने को था उसने कहा कि, क्षमा करो। मैं तुम्हारी किताब तो ले सकता हूं, तुम्हारा नंबर भी ले सकता हूं। लेकिन फिर भी मैं, मैं ही रहूंगा और मैं आदमी बुरा हूं सो मैं आदमी बुरा रहूंगा। मैं शराब पीता हूं सो मैं शराब पीऊंगा, मैं वेश्यालय जाता हूं तो मैं वेश्यालय जाऊंगा। तो तुम्हारी अच्छी किताब कितनी देर तक अच्छी रह पाएगी, किताब कितनी देर तक किसी को धोखा दे पाएगी। उलटे दो आदमी

बुरे हो जाएंगे। तुम तो बुरे हो ही जाओगे कि मर गए, एक बुरा आदमी मर गया और एक बुरा आदमी जिंदा रहेगा ही। तो अभी कम से कम एक अच्छा आदमी मर गया यह लोग कहेंगे। तुम्हें फूल चढ़ायेंगे, वह भी चढ़ाने नहीं आएंगे और बुरा आदमी तो जिंदा रहेगा। क्योंकि तुम मेरी जगह नहीं हो सकते, मैं तुम्हारी जगह नहीं हो सकता हूं। तुम्हारा प्रेम तो ठीक कहता है कि हम जगह बदल लें।
लेकिन जिंदगी के नियम के बाहर है यह बात। कोई जगह नहीं बदली जा सकती। न कोई किसी की जगह जी सकता है और न मर सकता है। न कोई किसी की जगह जान सकता है, न कोई किसी की जगह आंखों को उपलब्ध हो सकता है।
लेकिन विश्वास दिलाने वाले लोगों ने आज तक यही समझाया है कि तुम दूसरे की आंख से देखो--तीर्थंकर की आंख से देखो, अवतार की आंख से देखो और हम इस पर विश्वास करते चले आये हैं, इसलिए हम एक अंधे जाल में ग्रसित हो गये हैं। और यह हजारों शिक्षकों ने इतने जोर से शोरगुल मचाया है और हजारों शिक्षकों के अनुयायियों ने इतने जोर से आवाजें की हैं, इतने जोर से उन्होंने घबराहट पैदा की है नर्क की, और स्वर्ग का प्रलोभन पैदा किया है कि हमने धीरे-धीरे सबकी ही बातें मान लीं। और उन सबकी बातों ने

हमारे भीतर एक ऐसा विरोधाभास खड़ा कर दिया है कि हमारे जीवन की गाड़ी टूट सकती है, लेकिन कहीं पहुंच नहीं सकती। इसलिए पहला समझदार व्यक्ति के लिए जो काम है करने जैसा वह यह है, कि वह अपने सारे अंतर्विरोधी विश्वासों को एक साथ तिलांजलि दे दे और वह क्षमा मांग ले कि मैं विश्वास नहीं करूंगा, मैं जानना चाहता हूं। जिस दिन मुझे ज्ञान उपलब्ध होगा उस दिन मैं मान लूंगा, उसके पहले मेरे लिये मानने जैसी कोई चीज नहीं हो सकती है। यह धोखा है, यह आत्म-प्रवंचना है। मैं अपने को धोखा नहीं दे सकता कि मैं बिना जाने हुए कहूं कि मैं जानता हूं, मैं बिना पहचाने हुए कहूं कि मैं पहचानता हूं। मैं झूठी स्वीकृति दूं, यह मेरे लिए संभव नहीं है।
इसका मतलब यह नहीं है कि आप अस्वीकार कर रहे हैं। इसका कुल मतलब यह है कि आप स्वीकार-अस्वीकार दोनों से अपने को तटस्थ खड़ा कर रहे हैं। आप यह कह रहे हैं कि हम इन दोनों में राजी नहीं हैं। न हम कहते हैं कि महावीर गलत हैं, न हम कहते हैं कि सही हैं। हम इतना ही कहते हैं कि महावीर जो कहते हैं वह मैं नहीं जानता हूं, इसलिए मुझे हां और ना कहने का कोई भी हक नहीं। जिस दिन मैं जानूंगा उस दिन हां कहूंगा, जानूंगा कि गलत कहते हैं तो ना कहूंगा, लेकिन अभी मैं जानता नहीं,

इसलिए मैं कैसे हां कहूं और कैसे ना कहूं?
अगर यह हमारे चित्त की दशा हो कि हम हां और ना कहने से बच जायें, तो हमारे मन का जाल आज और अभी और यहीं टूट सकता है। तो जाल के टूटने में फिर कोई नीचे आधार नहीं रह जाता है, फिर वह पत्तों का एक महल रह जाता है जो जरा में गिर जायेगा। अभी वह पत्थरों का महल है, क्योंकि नीचे बहुत बुनियाद में सख्त पत्थर रखे हुए हैं और वह पत्थर हमें दिखाई नहीं पड़ते, बल्कि हमको तो यही कहा जाता है कि जो श्रद्धा करते हैं वे ही धार्मिक हैं, जो श्रद्धा नहीं करते वे अधार्मिक हैं। और मैं आपसे कहता हूं, जो श्रद्धा करता है वह भी धार्मिक नहीं है, जो अश्रद्धा करता है वह भी धार्मिक नहीं है। धार्मिक तो वह है जो सच्चा है। और सच्चे का मतलब यह है कि जो नहीं जानता उस पर श्रद्धा नहीं करता, जो नहीं जानता उस पर अश्रद्धा नहीं करता। वह निपट ईमानदारी से यह घोषणा कर देता है कि मैं नहीं जानता हूं, मैं अज्ञानी हूं, इसलिए मेरी स्वीकृति-अस्वीकृति का कोई भी सवाल नहीं है।
क्या इस मध्य-बिंदु पर आप अपने चित्त को ले जाने की सामर्थ्य और साहस जुटा सकते हैं? जुटा सकते हैं तो यह भवन

विचारों का तत्क्षण गिर सकता है, इसके गिरने में कोई भी कठिनाई नहीं।
तीन सूत्र मैंने सुबह कहे थे। एक सूत्र मैंने दोपहर को कहा और एक आपसे अभी कहा। इन पांचों सूत्रों पर ध्यान से विचार करना आप। मेरी बात मानकर ही इनको उपयोग में मत ले आना, अन्यथा मैं भी फिर एक उपदेशक ही आपके लिए हो जाता हूं। मैंने कहा, इसलिए मत मान लेना। क्योंकि मेरी बात हो सकती है सभी गलत हों और आप दिक्कत में पड़ जायें, मेरी बात सभी झूठी हों और व्यर्थ हों और आप दिक्कत में पड़ जायें, इसलिए मेरी बात को मत मान लेना। सोचना, खोजना, देखना और अगर ऐसा लगे कि इसमें कोई सचाई है अपने अनुभव में, अपने मन की खोज-बीन में, अपने मन की खिड़की से झांकने पर लगे कि इन बातों में कोई सचाई है तो फिर वह सचाई आपकी अपनी हो जायेगी, फिर मेरी नहीं रह जाती। फिर वह मेरी आंख नहीं, वह आपकी अपनी आंख हो जाती है और तब आप जो करते हैं वह आपके जीवन को विवेक, जागृति, जागरण की दिशा में ले जाने का मार्ग बन जाता है। और विश्वास करके आप जो करते हैं वह आपको और अंधकार में और मूर्च्छा में और बेहोशी में ले जाता है। इस सूत्र पर भी ध्यान से विचार करना उपयोगी है। अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। तो थोड़ी-सी बातें ध्यान के

लिए समझ लें। कुछ प्रश्न ध्यान के लिए पूछे हैं, उनको मैं समझा दूं थोड़ा-सा और फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

एक मित्र ने पूछा हुआ है ध्यान के संबंध में, कि क्या नाम-जप, कोई पवित्र मंत्र का जप सहयोगी नहीं हो सकता है?

बिल्कुल भी सहयोगी नहीं हो सकता
बल्कि बाधक हो सकता है। क्योंकि जब आप कोई मंत्र जपते हैं, तब आप एक विचार को ही बार-बार पुनरुक्त करते हैं। मंत्र यानी एक विचार। जब आप कोई नाम जपते हैं तो एक शब्द को ही बार-बार दोहराते हैं। शब्द यानी विचार का एक अंश, एक टुकड़ा, एक हिस्सा। तो विचार को ही दोहराकर अगर आप विचार से मुक्त हो जाना चाहते हों तो आप गलती में हैं। जितनी देर आप एक ही विचार को दोहराते रहेंगे उतनी देर तक दूसरे विचार आपको आते हुए नहीं मालूम पड़ेंगे। क्योंकि मन का नियम जैसा मैंने आपसे कहा, एक चीज पर अटका रहेगा। लेकिन जिस विचार को आप दोहरा रहे हैं, यह भी उतना ही विचार है जितने दूसरे विचार हैं। इसके दोहराने से कोई हित नहीं है। बल्कि अहित यह है कि एक ही शब्द को बार-बार दोहराने से मन में मूर्च्छा पैदा होती है, निद्रा पैदा होती है। कोई भी एक शब्द को ले लें और उसे बार-बार

दोहरायें तो आपके भीतर नींद पैदा होगी, जागरण पैदा नहीं होगा। रिपिटीशन जो है किसी भी शब्द का, निद्रा लाने का सूत्र है। तो अगर नींद न आती हो आपको रात में तो राम-राम जपना, ओम-ओम जपना सहयोगी हो सकता है नींद लाने में, लेकिन आत्म-ज्ञान में नहीं।
अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। इसमें आपको सो नहीं जाना है। शरीर शिथिल कर देना है, सांस शिथिल छोड़ देनी है, मन शांत कर लेना है, लेकिन सो नहीं जाना है, भीतर परिपूर्ण जागे रहना है। इसीलिए मैंने कहा कि बाहर का सब सुनते रहना है, क्योंकि अगर आप सुन रहे हैं तो आप जागे रहेंगे और अगर आप नहीं सुन रहे हैं तो आपके सो जाने की संभावना है। नींद अच्छी बात है, नींद बुरी बात नहीं है, लेकिन नींद को ध्यान मत समझ लेना। नींद बहुत अच्छी बात है। नींद जरूर लेनी चाहिए, लेकिन नींद ध्यान नहीं है, यह ध्यान रखना चाहिए। विवेकानंद ने पहली दफा अमरीका में जब ध्यान की बात कही तो एक अखबार ने एक लेख लिखा और उस लेख में लिखा कि विवेकानंद जो कह रहे हैं वह तो बड़ी अच्छी बात है, वह तो नान मेडिसिनल ट्रांक्विलाइजर जैसा मालूम होता है, बिना दवा के नींद की दवा मालूम होती है। नींद लाने की अच्छी तरकीब है। तो नींद लाना हो तो बात

दूसरी है, लेकिन ध्यान लाना हो तो बात बिल्कुल दूसरी है।
तो यहां जो हम प्रयोग कर रहे हैं उसमें सब शिथिल हो जायेंगे, सब सुनते जायेंगे, लेकिन भीतर पूरी तरह जागे रहना है। उस जागे रहने के सूत्र पर कल हम और बात करेंगे, तो और स्पष्ट समझ में आ सकेगी।
इस प्रयोग को करने के पहले दो-तीन बातें ख्याल में ले लें--एक तो यह बड़ा सरल-सा प्रयोग है। आप कोई बहुत कठिन काम कर रहे हैं, ऐसा भय न ले लेना मन में। क्योंकि जिस काम को हम कठिन समझ लेते हैं वह कठिन हो जाता है--कठिन होने के कारण नहीं, हमारे समझने के कारण। जिस काम को हम सरलता से लेते हैं वह सरल हो जाता है। कठिनता हमारी दृष्टि में होती है।
हमें समझाया गया है हजारों सालों से कि ध्यान बड़ी कठिन चीज है। यह तो किन्हीं दुर्लभ लोगों को उपलब्ध होती है, यह तो तलवार की धार पर चलना है और यह तो फलां है, ढिकां है। इन सब बातों ने हमारे मन में ऐसा भाव पैदा कर दिया है कि यह तो कुछ लोगों का काम है, यह सब लोगों के लिए हो नहीं सकता। हमारे लिए तो यही हो सकता है कि भजन-कीर्तन करें, राम-राम जपा करें या कहीं अपना कोई अखंड पाठ बिठा दें और माइक लगाकर जोर-जोर से

चिल्लायें कि खुद का भी लाभ हो, पास-पड़ोस के लोगों का भी लाभ हो, हम से यही हो सकता है। यह ध्यान वगैरह तो कुछ थोड़े-से लोगों की बात है। यह झूठी बात है।
ध्यान प्रत्येक व्यक्ति के लिए संभव है। ध्यान इतनी सरल बात है कि ऐसा कोई आदमी खोजना ही कठिन है जिसके लिए ध्यान न हो सके। लेकिन उसकी तैयारी, उस सरलता के भीतर प्रवेश करने की भूमिका और पात्रता उसे इकट्ठी करनी होती है। बहुत सरल बात है, उतनी ही सरल बात, जितनी कि कोई सरल से सरल बात हो सकती है। कली जैसे फूल बनती है उतनी ही सरल बात है कि मनुष्य का चित्त ध्यान बन जाये, लेकिन फूल बने इसके लिए खाद चाहिए, पानी चाहिए, रोशनी चाहिए। ऐसे ही मन ध्यान बने इसके लिए कुछ जरूरतें हैं, उन्हीं जरूरतों की हम बात कर रहे हैं।

अंतर्यात्रा-सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन
प्रवचन-7
हृदय-वीणा के सूत्र

[illegible] [illegible] [illegible]!

विचार का, थिंकिग का केंद्र मस्तिष्क है, और भाव का, फीलिंग का केंद्र हृदय है, और संकल्प का, विलिंग का केंद्र नाभि है। विचार, चिंतन, मनन मस्तिष्क से होता है। भावना, अनुभव, प्रेम, घृणा और क्रोध हृदय से होते हैं। संकल्प नाभि से होता है। विचार के केंद्र के संबंध में कल थोड़ी-सी बातें हमने कीं।
पहले दिन मैंने आपको कहा था कि विचार के तंतु बहुत कसे हुए हैं, उन्हें शिथिल करना है। विचार पर अत्यधिक तनाव और बल है। मस्तिष्क अत्यंत तीव्रता से खिंचा हुआ है। विचार की वीणा के तार इतने खिंचे हुए हैं कि उनसे संगीत पैदा नहीं होता, तार ही टूट जाते हैं, मनुष्य विक्षिप्त हो जाता है और मनुष्य विक्षिप्त हो गया है। ये विचारों की वीणा के तार थोड़े शिथिल करने अत्यंत जरूरी हो गए हैं, ताकि वे सम-स्थिति में आ सकें और संगीत उत्पन्न हो सके। विचार से ठीक उल्टी स्थिति हृदय की है। हृदय के तार बहुत ढीले हैं। उन्हें थोड़ा कसना जरूरी है, ताकि वे भी सम-स्थिति में आ सकें और संगीत पैदा हो सके। विचार के तनाव को कम करना है और हृदय के ढीले तारों को थोड़ा कसाव देना है।
विचार और हृदय के दोनों तार अगर सम अवस्था में आ जायें, मध्य में आ जायें,

संतुलित हो जायें तो वह संगीत पैदा होगा जिस संगीत के मार्ग से नाभि के केंद्र तक की यात्रा की जा सकती है। विचार कैसे शिथिल हों, वह हमने कल बात की है। भाव, हृदय के तार कैसे कसे जा सकें वह बात हमें आज सुबह करनी है। इसके पहले कि हम ठीक से हृदय के संबंध में, भाव के संबंध में कुछ समझें, मनुष्य-जाति एक बहुत लंबे अभिशाप के नीचे जी रही है, उसे समझ लेना जरूरी है। उसी अभिशाप ने हृदय के तारों को बिल्कुल ढीला कर दिया है। और वह अभिशाप यह है कि हमने हृदय के सारे गुणों की निंदा की है।
हृदय की जो भी क्षमताएं हैं, उन सबको हमने अभिशाप समझा है, वरदान नहीं समझा। और यह भूल इतनी संघातक है और इस भूल के पीछे इतनी नासमझी और इतना अज्ञान है जिसका कोई हिसाब नहीं। क्रोध की हमने निंदा की है, अभिमान की हमने निंदा की है, घृणा की हमने निंदा की है, राग की हमने निंदा की है, हर चीज की हमने निंदा की है। और बिना यह समझे हुए कि हम जिन चीजों की प्रशंसा करते हैं वे इन्हीं चीजों के रूपांतरण हैं।
हमने क्षमा की प्रशंसा की है और क्रोध की निंदा की है और बिना इस बात को समझे हुए कि क्षमा क्रोध की शक्ति का ही परिवर्तित रूप है। हमने घृणा की निंदा

की है और प्रेम की प्रशंसा की है, और बिना यह समझे कि घृणा में जो ऊर्जा प्रगट होती है वही रूपांतरित होकर प्रेम में प्रगट होती है। उन दोनों के पीछे प्रगट होने वाली शक्ति भिन्न-भिन्न नहीं है। हमने अभिमान की निंदा की है और विनम्रता की प्रशंसा की है बिना यह समझे हुए कि अभिमान में जो ऊर्जा प्रगट होती है वही विनम्रता बन जाती है। उन दोनों चीजों में बुनियादी विरोध नहीं है, वे एक ही चीज के परिवर्तित बिंदु हैं।
जैसे वीणा के तार बहुत ढीले हैं या बहुत कसे हैं, उन्हें छूता है संगीतज्ञ तो उनसे बेसुरा संगीत पैदा होता है जो कानों को अखरता है और चित्त को घबड़ाता है। वह जो बेसुरापन पैदा हो रहा है, अगर उसके विरोध में आकर कोई तारों को तोड़ डाले और वीणा को पटक दे और कहे कि इस वीणा से बहुत बेसुरा संगीत पैदा होता है, यह तो तोड़ देने जैसी है; तो वीणा तो वह तोड़ सकता है, लेकिन वह भी याद रख ले कि संगीत भी उसी वीणा से पैदा हो सकता था, जिससे बेसुरे स्वर पैदा होते थे। बेसुरापन वीणा का कसूर नहीं था, वीणा अव्यवस्थित थी, इस बात की भूल थी। वही वीणा सुव्यस्थित होती तो जिन तारों से बेसुरापन पैदा होता था, उन्हीं से

प्राणों को मुग्ध कर देने वाला संगीत पैदा हो सकता था।
स्वर और बेस्वर एक ही तार से पैदा होने वाली चीजें हैं, यद्यपि बिल्कुल विरोधी मालूम होती हैं और दोनों के परिणाम विरोधी हैं। और दोनों में एक आनंद की तरफ ले जाती है, एक दुख की तरफ ले जाती है, लेकिन दोनों के बीच में एक ही तार है और एक ही वीणा है। वीणा अव्यवस्थित हो, अराजक हो तो बेसुरापन पैदा होता है।
मनुष्य के हृदय से क्रोध पैदा होता है; अगर मनुष्य का हृदय सुव्यवस्थित, संयोजित, संतुलित नहीं है। वही हृदय संतुलित हो जाये तो जो शक्तियां क्रोध में प्रगट होती हैं, वे ही शक्तियां क्षमा में प्रगट होनी शुरू हो जाती हैं। क्षमा क्रोध का ही रूपांतरण है। अगर कोई बच्चा बिना क्रोध के पैदा हो जाये तो एक बात निश्चित है, उस बच्चे के जीवन में क्षमा कभी भी प्रगट नहीं हो सकती। अगर किसी बच्चे के हृदय में घृणा की कोई संभावना न हो, तो उस बच्चे के हृदय में प्रेम की भी कोई संभावना नहीं रह जायेगी।
लेकिन हम इस भूल के नीचे जीये हैं अब तक, कि ये दोनों विरोधी चीजे हैं और इसमें एक का विनाश करेंगे तो दूसरा विकसित होगा। यह बिल्कुल ही भूल भरी

बात है, इससे ज्यादा खतरनाक कोई शिक्षा नहीं हो सकती, अमनोवैज्ञानिक। अत्यंत अबुद्धिपूर्ण यह बात है। क्रोध के विनाश से क्षमा उत्पन्न नहीं होती, क्रोध के रूपांतरण से, क्रोध के ट्रांसफार्मेशन से, क्रोध के परिवर्तन से क्षमा उपलब्ध होती है। क्षमा क्रोध का नष्ट हो जाना नहीं है, बल्कि क्रोध का संतुलित और संगीतपूर्ण हो जाना है। इसलिए अगर हम क्रोध के विरोध में हैं और क्रोध को नष्ट करने का उपाय कर रहे हैं, तो हम वीणा को ही तोड़ने का उपाय कर रहे हैं। और इससे एक ऐसा मनुष्य पैदा होगा जो अत्यंत दीन-हीन होगा, जिसके हृदय की कोई भी शक्तियां विकसित नहीं हो पायेंगी। यह वैसे ही है जैसे किसी आदमी ने अपने घर के पास खाद का ढेर लगा रखा हो, उसके घर के आस पास गंदगी फैल रही हो, बदबू फैल रही हो, और वह आदमी परेशान हो कि माली तो कहता था कि खाद लाने से फूल पैदा होते हैं और फूलों से सुगंध आती है, और हमारे घर में हमने खाद लाकर रख ली है तो दुर्गंध फैल रही है, घर बदबू से भरा जा रहा है, जीना मुश्किल हुआ जा रहा है।
खाद लाने से जरूर फूल पैदा हो सकते हैं, लेकिन घर में खाद को भर लेने से नहीं। खाद का रूपांतरण होता है। बीजों के माध्यम से खाद फूलों में प्रवेश

करती है और खाद की जो दुर्गंध थी वह एक दिन फूलों की सुगंध में परिवर्तित हो जाती है। लेकिन खाद को घर में भर लेने से तो कोई पागल हो जायेगा और खाद को फेंक देने से उसके फूल निर्जीव हो जायेंगे, निस्तेज हो जायेंगे। लेकिन खाद का रूपांतरण है, दुर्गंध सुगंध में परिवर्तित हो सकती है।
इसी कीमिया, इसी केमिस्ट्री का, इसी अल्केमी का नाम योग है। इसी अल्केमी का नाम धर्म है। जो जीवन में व्यर्थ है उसको सार्थक की दिशा में परिवर्तित करने की जो कला है वही धर्म है।
लेकिन धर्म के नाम पर हम आत्मघात कर रहे हैं, सुसाइड कर रहे हैं। धर्म के नाम पर हमारी चेतना परिवर्तित नहीं होती, कोई बुनियादी भूलों के भीतर हम जी रहे हैं, कोई गहरी अभिशाप की छाया हमको पकड़े हुए है। हृदय इसलिए अविकसित रह गया कि हृदय के मौलिक गुणों के ही विरोध में हम खड़े हो गये। यह बात थोड़ी समझ लेनी जरूरी है।
मैं देख पाता हूं कि मनुष्य का अगर ठीक-ठीक विकास हो तो उसके जीवन में क्रोध का भी अपना अनिवार्य स्थल है, क्रोध की भी अपनी जगह है, उसके संपूर्ण जीवन के चित्र में क्रोध का भी अपना रंग है। और अगर उसे हम बिल्कुल अलग कर दें तो उसके जीवन का चित्र किन्हीं न

किन्हीं अर्थों में अधूरा रह जायेगा, उसमें कोई रंग की कमी रह जायेगी। लेकिन बचपन से ही हम सिखाना शुरू करते हैं कि इन सारी चीजों को अलग कर देना, और अंधों की तरह हम बच्चों के पीछे पड़ जाते हैं इन सारी चीजों को अलग कर देने के लिए। अलग करने का कुल एक ही परिणाम हो सकता है कि जो-जो हम बुरा कहते हैं बच्चा उसे दबाकर बैठ जाये, अपने भीतर सप्रेस कर ले; दमन कर ले। दमित हृदय शिथिल हृदय होगा, उसके तार ठीक-ठीक खिंच नहीं पायेंगे और फिर यह जो दमन होगा, यह होगा बुद्धि के द्वारा, क्योंकि सब शिक्षा बुद्धि से गहरे नहीं जाती।
आप किन्हीं भी बच्चे को सिखायें कि क्रोध बुरा है, तो आपकी यह शिक्षा हृदय तक पहुंचने वाली नहीं है। हृदय के पास सुनने के लिए कोई कान नहीं है और हृदय के पास सोचने के लिए कोई शब्द नहीं है। यह सारी शिक्षा बुद्धि में जायेगी और बुद्धि हृदय को परिवर्तित नहीं कर सकती है, तो एक कठिनाई पैदा हो जायेगी। बुद्धि सोच लेती है कि क्रोध करना बुरा है।
आप रोज क्रोध करते हैं और पीछे पछताते हैं कि क्रोध करना बुरा है, आगे मैं क्रोध नहीं करूंगा। लेकिन यह बुद्धि का केंद्र सोच रहा है और हृदय के केंद्र को इस बात की कोई खबर नहीं कि क्रोध बुरा

है और अब आगे क्रोध नहीं करूंगा। कल फिर सुबह आप उठते हैं और जरा-सी बात पर क्रोध फिर शुरू हो जाता है। आप बहुत हैरान होते हैं कि मैंने पच्चीसों दफे तय किया कि मैं अब क्रोध नहीं करूंगा, यह क्रोध फिर क्यों आ जाता है! मैं कितनी बार पश्चात्ताप कर चुका, फिर भी क्रोध क्यों आ जाता है?
आपको पता ही नहीं है कि क्रोध करने वाला केंद्र अलग और पश्चात्ताप और विचार करने वाला केंद्र बिल्कुल अलग है। जो केंद्र निर्णय करता है कि मैं क्रोध नहीं करूंगा वह बिल्कुल भिन्न है और जो केंद्र क्रोध करता है वह बिल्कुल भिन्न है। ये बिल्कुल दो अलग केंद्र हैं, इसलिए पश्चात्ताप और निर्णय का कोई परिणाम आपके क्रोध पर कभी भी नहीं पड़ता। आप क्रोध भी किये जाते हैं और पश्चात्ताप भी किये जाते हैं और दुखी भी हुए चले जाते हैं। जीवन भर आपको ख्याल में भी नहीं आता कि कहीं ये दोनों केंद्र इतने पृथक तो नहीं हैं कि इनका एक का निर्णय दूसरे तक पहुंच ही नहीं पाता।
आदमी एक आंतरिक विघटन में, एक डिसइंटीग्रेशन में पड़ जाता है। हृदय का केंद्र और ही तरह से काम करता है, उस केंद्र के विकास के लिए कुछ और ही रास्ते हैं। बुद्धि उस केंद्र में बाधा

देगी तो वह केंद्र केवल शिथिल और अस्त-व्यस्त होगा, एनार्किक होगा। और हम सबका हृदय का केंद्र बिल्कुल ही अराजक हो गया है, बिल्कुल अव्यवस्थित हो गया है। पहली बात, निश्चित ही क्रोध रूपांतरित होना चाहिए, लेकिन नष्ट नहीं।
यह पहला सूत्र हृदय के तारों को कसने के लिए यह है--हृदय के गुणों का विकास, विध्वंस नहीं। यह पहला सूत्र ठीक से समझ लेना जरूरी है। हृदय के सारे गुणों का विकास, विध्वंस नहीं। आप थोड़े मुश्किल में पड़ेंगे, थोड़ा सोच में पड़ेंगे कि क्रोध का भी विकास करना चाहिए? मैं आपको कहूंगा निश्चित ही विकास होना चाहिए, क्योंकि विकसित क्रोध ही फिर एक दिन रूपांतरित होकर क्षमा बन सकता है, अन्यथा कभी भी क्षमा जीवन में उत्पन्न नहीं हो सकती। क्रोध की अपनी गरिमा और अपना गौरव है। दुनिया में जो बड़े से बड़े क्षमाशाली लोग हुए हैं, अगर आप उनका जीवन पढ़ेंगे तो आप पायेंगे कि वे अपने प्राथमिक दिनों में बड़े से बड़े क्रोधी लोग थे।
दुनिया में जो बड़े से बड़े ब्रह्मचारी हुए हैं, अगर आप उनका जीवन पढ़ेंगे तो पायेंगे कि अपने प्राथमिक जीवन में उनसे ज्यादा कामुक, उनसे ज्यादा सेक्सुअल और कोई भी नहीं था। गांधी के

जीवन में इतना ब्रह्मचर्य फलित हुआ, यह गांधी के प्राथमिक जीवन की अति कामुकता का फल है। गांधी अति कामुक थे।
जिस दिन गांधी के पिता की मृत्यु हुई, चिकित्सकों ने कह दिया था कि पिता आज रात बच नहीं सकेंगे, उस रात भी गांधी अपनी पत्नी से दूर नहीं रह सके। वह अंतिम रात थी। बाप के मरने की रात थी। उस रात पिता के पास बैठना सहज ही स्वाभाविक था, क्योंकि अंतिम बिदा थी, इसके बाद पिता से फिर मिलना नहीं हो सकता था। लेकिन आधी रात गये गांधी अपनी पत्नी के पास पहुंच गये। वहां पिता मरे, तब पत्नी के पास बिस्तर पर ही गांधी थे। इसकी एक बहुत तीव्र चोट गांधी के चित्त पर पहुंची। गांधी का बाद का सारा ब्रह्मचर्य इसी चोट से विकसित हुआ। यह जो अति कामुक चित्त था, ये ठीक, इसकी सारी ऊर्जा और सारी शक्ति ब्रह्मचर्य की तरफ फलित हो गयी।
यह कैसे हो सका? यह इसलिए हो सका कि शक्तियां हमेशा तटस्थ होती हैं, सिर्फ दिशाओं का परिवर्तन होता है। जो शक्ति सेक्स की तरफ बहती थी, वह सारी शक्ति विपरीत दिशा की तरफ बहनी शुरू हो गयी। लेकिन शक्ति थी तो विपरीत बह सकी और शक्ति ही न हो तो विपरीत क्या खाक बहेगी! शक्ति हो तो दूसरी दिशा में भी जा सकती है, लेकिन शक्ति ही न हो तो

दूसरी दिशा में क्या जायेगी, कौन-सी चीज जायेगी?
सारी शक्तियां ठीक-ठीक विकसित होनी चाहिए। मनुष्य को नैतिक शिक्षाओं के भ्रम ने अत्यंत दीन-हीन, इम्पोटेंट, अत्यंत वीर्यहीन बना दिया है। पुराने लोग हमसे ज्यादा गहरे अर्थों में जीवन को अनुभव करते थे।
अकबर के दरबार में दो राजपूत युवक आए। दोनों भाई थे और अकबर से जाकर उन्होंने कहा कि "हम कोई नौकरी खोजने की तलाश में निकले हैं।" अकबर ने कहा, "तुम करना क्या जानते हो?" उन्होंने कहा, "हम और तो करना कुछ नहीं जानते, लेकिन हम बहादुर लोग हैं। हो सकता है हमारी आपको कोई जरूरत हो।" अकबर ने कहा, "बहादुरी का प्रमाण-पत्र लाये हो कोई? क्या सबूत है कि तुम बहादुर हो?" वे दोनों हंसने लगे। और फिर उन्होंने कहा, "बहादुरी का भी कोई प्रमाण-पत्र होता है? हम बहादुर हैं।" अकबर ने कहा, "बिना प्रमाण-पत्र के नौकरी नहीं मिल सकती।" वे दोनों हंसे, उन्होंने तलवारें निकालीं और एक-दूसरे की छाती में एक सैकेंड में वे तलवारें घुस गयीं। अकबर तो देखता रह गया। वे दोनों जवान जमीन पर पड़े थे, लहू का फव्वारा बह रहा था, लेकिन वे हंस रहे थे। उन्होंने कहा कि, "अकबर, तुझे पता ही नहीं कि बहादुरी का एक ही प्रमाण-पत्र

हो सकता है, और वह मौत है। और तो कोई प्रमाण-पत्र नहीं हो सकता।" वे दोनों मर गये। अकबर की आंख में आंसू आ गये। उसकी कल्पना भी न थी कि यह ऐसी घटना घट जायेगी।
एक राजपूत सेनापति को उसने बुलाकर
कहा कि, "एक बड़ी दुर्घटना हो गयी। दो राजपूत लड़कर हत्या कर लिए। मैंने पूछ लिया प्रमाण-पत्र!" उस राजपूत ने कहा, "आपने बात ही गलत पूछी। यह तो किसी भी राजपूत के खून को खौला देती। बहादुरी का कोई और प्रमाण-पत्र हो सकता है, सिवाय मौत के! सिर्फ कायर और कमजोर सर्टिफिकेट ला सकते हैं कि हां यह बहादुरी का सर्टिफिकेट हमारे पास लिखा हुआ रखा है। हम फलां आदमी से लिखवाकर लाए हैं, कि यह बहादुर है। क्योंकि कोई बहादुर किसी आदमी से लिखवा सकता है कि मैं बहादुर हूं! कोई केरेक्टर सर्टिफिकेट ला सकता है? आपने बात ही गलत पूछी। आपको पता ही नहीं है कि राजपूत से कैसे पूछना चाहिए! ठीक किया और यही हो सकता था, और कोई रास्ता ही नहीं था। यही सीधा विकल्प।"
यह जो, इतना तीव्र क्रोध है, जो इतनी तेजस्विता है, यह व्यक्तित्व की बड़ी महिमापूर्ण गरिमा है। इससे सारी मनुष्य-जाति हीन होती चली जाती है। आदमी की सारी तेजस्विता, सारा वीर्य

नष्ट होता चला जाता है और हम समझते हैं कि हम बहुत अच्छी शिक्षाओं के अंतर्गत यह कर रहे हैं। यह बहुत अच्छी शिक्षाओं के अंतर्गत नहीं हो रहा है। बच्चों का सारा विकास गलत नियमों के अनुकूल हो रहा है, उनके भीतर पुरुष का कुछ भी विकसित नहीं होता।
एक बहुत प्रसिद्ध लामा ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब मैं पांच वर्ष का था, तो मुझे विद्यापीठ में पढ़ने के लिए भेजा गया। रात को मेरे पिता ने मुझसे कहा--तब मैं कुल पांच वर्ष का था-- रात को मेरे पिता ने मुझसे कहा कि कल सुबह चार बजे तुझे विद्यापीठ भेजा जायेगा। और स्मरण रहे, सुबह तेरी बिदाई के लिए न तो तेरी मां होगी और न मैं मौजूद रहूंगा। मां इसलिए मौजूद नहीं रखी जा सकती कि उसकी आंखों में आंसू आ जायेंगे। और रोती हुई मां को छोड़कर तू जायेगा तो तेरा मन पीछे की तरफ, पीछे की तरफ होता रहेगा और हमारे घर में ऐसा आदमी कभी पैदा नहीं हुआ जो पीछे की तरफ देखता हो। मैं इसलिए मौजूद नहीं रहूंगा कि अगर तूने एक भी बार घोड़े पर बैठकर पीछे की तरफ देख लिया तो तू मेरा लड़का नहीं रह जायेगा, फिर इस घर के दरवाजे तेरे लिए बंद हो जायेंगे। नौकर तुझे विदा दे देंगे सुबह। और स्मरण रखें, यह घोड़े पर से पीछे लौटकर मत देखना। हमारे

घर में कोई ऐसा आदमी नहीं हुआ जो पीछे की तरफ लौटकर देखता हो। और अगर तूने पीछे की तरफ लौटकर देखा तो समझ लेना, इस घर से फिर तेरा कोई नाता नहीं।
पांच वर्ष के बच्चे से ऐसी अपेक्षा? पांच वर्ष का बच्चा सुबह चार बजे उठा दिया गया और घोड़े पर बिठा दिया गया। नौकरों ने उसे बिदा कर दिया। चलते वक्त नौकर ने भी कहा, "बेटे होशियारी से! मोड़ तक दिखाई पड़ता है, पिता ऊपर से देखते हैं। मोड़ तक पीछे लौटकर मत देखना। इस घर में सब बच्चे ऐसे ही बिदा हुए, लेकिन किसी ने पीछे लौटकर नहीं देखा। और जाते वक्त नौकर ने कहा, कि तुम जहां भेजे जा रहे हो वह विद्यापीठ साधारण नहीं है। वहां देश के जो श्रेष्ठतम पुरुष... उस विद्यापीठ से पैदा होते हैं। वहां बड़ी कठिन परीक्षा होगी प्रवेश की। तो चाहे कुछ भी हो जाये, हर कोशिश करना कि उस प्रवेश-परीक्षा में प्रविष्ट हो जाओ। क्योंकि वहां से असफल हो गये तो इस घर में तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं रह जायेगी।"
पांच वर्ष का लड़का, उसके साथ ऐसी कठोरता! वह घोड़े पर बैठ गया और उसने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मेरी आंखों में आंसू भरने लगे, लेकिन पीछे लौटकर कैसे देख सकता हूं उस घर को, पिता को... जिस घर को छोड़कर जाना पड़ रहा है

मुझे अनजान में। इतना छोटा हूं। लेकिन लौटकर नहीं देखा जा सकता, क्योंकि मेरे घर में कभी किसी ने लौटकर नहीं देखा। और अगर पिता ने देख लिया तो फिर इस घर से हमेशा के लिए वंचित हो जाऊंगा, इसीलिए कड़ी हिम्मत रखी और आगे की तरफ देखता रहा, पीछे लौटकर नहीं देखा।
इस बच्चे के भीतर कोई चीज पैदा की जा रही है। इस बच्चे के भीतर कोई संकल्प जगाया जा रहा है, जो इसके नाभि-केंद्र को मजबूत करेगा। यह बाप कठोर नहीं है, यह बाप बहुत प्रेम से भरा हुआ है। और हमारे सब मां-बाप गलत हैं जो प्रेम से भरे हुए दिखाई पड़ रहे हैं, वे भीतर के सारे केंद्रों को शिथिल किये दे रहे हैं। भीतर कोई बल, कोई संबल खड़ा नहीं किया जा रहा है।
वह स्कूल में पहुंच गया। पांच वर्ष का छोटा-सा बच्चा, उसकी क्या सामर्थ्य और क्या हैसियत! स्कूल के प्रधान ने, विद्यापीठ के प्रधान ने कहा कि यहां की प्रवेश-परीक्षा कठिन है। दरवाजे पर आंख बंद करके बैठ जाओ और जब तक मैं वापिस नहीं आऊं तब तक आंख मत खोलना, चाहे कुछ भी हो जाये। यही तुम्हारी प्रवेश-परीक्षा है। अगर तुमने आंख खोल ली तो हम वापस लौटा देंगे, क्योंकि जिसका अपने ऊपर इतना भी बल नहीं है कि कुछ देर तक आंख बंद किये बैठा रहे, वह और क्या सीख

सकेगा? उसके सीखने का दरवाजा खतम हो गया, बंद हो गया। फिर तुम उस काम के लायक नहीं हो, फिर तुम जाकर और कुछ करना। पांच वर्ष के छोटे-से बच्चे को... !
वह बैठ गया दरवाजे पर आंख बंद करके। मक्खियां उसे सताने लगीं, लेकिन आंख खोलकर नहीं देखना है, क्योंकि आंख खोलकर देखा तो मामला खतम हो जायेगा। छोटे-मोटे जो दूसरे बच्चे स्कूल में आ-जा रहे हैं, कोई उसे धक्का देने लगा है, कोई उसको परेशान करने लगा है, लेकिन आंख खोलकर नहीं देखना है, क्योंकि आंख खोलकर देखा तो मामला फिर खराब हो जायेगा। और नौकरों ने आते वक्त कहा है कि अगर प्रवेश-परीक्षा में असफल हो गये तो यह घर भी तुम्हारा नहीं।
एक घंटा बीत गया, दो घंटे बीत गये, वह आंख बंद किये बैठा है और डरा हुआ है कि कहीं भूल से भी आंख न खुल जाये और आंख खोलने के सब टेम्पटेशन मौजूद हैं वहां। रास्ता चल रहा है, बच्चे निकल रहे हैं, मक्खियां सता रही हैं, कोई बच्चे उसे धक्के देते जा रहे हैं, कोई बच्चा कंकड़ मार रहा है। और उसे आंख खोलने का तब मन होता है कि देखें कि अब... तब गुरु नहीं आया। एक घंटा, दो घंटा, तीन घंटा, चार घंटा--उसने लिखा है कि छह घंटे!
और छह घंटे बाद गुरु आया और उसने कहा, "बेटे, तेरी प्रवेश-परीक्षा पूरी हो

गयी। तू भीतर आ, तू संकल्पवान युवक बनेगा। तेरे भीतर संकल्प है, तेरे भीतर विल है, तू जो चाहे कर सकता है। पांच-छह घंटे इस उम्र में आंख बंद करके बैठना बड़ी बात है।" उसने उसे छाती से लगा लिया और उसने उसे कहा, "तू हैरान मत होना, वे बच्चे तुझे सताने नहीं... सता नहीं रहे थे, वे बच्चे भेजे गये थे। उन्हें कहा गया था कि तुझे थोड़ा परेशान करेंगे ताकि तेरा आंख खोलने का ख्याल आ जाये।" उस लामा ने लिखा है, उस वक्त तो मैं सोचता था मेरे साथ बड़ी कठोरता बरती जा रही है, लेकिन अब जीवन के अंत में मैं धन्यवाद से भरा हूं उन लोगों के प्रति जो मेरे प्रति कठोर थे। उन्होंने मेरे भीतर कुछ सोयी हुई चीजें पैदा कर दीं, कोई सोया हुआ बल जग गया।
लेकिन हम उल्टा कर रहे हैं--बच्चे को डांटना भी मत, मारना भी मत! और अभी तो सारी दुनिया में कार्पोरल पनिशमेंट बिल्कुल बंद कर दिया गया है। बच्चे को कोई चोट नहीं पहुंचायी जा सकती, कोई शारीरिक दंड नहीं दिया जा सकता। यह निहायत बेवकूफी से भरी बात है, क्योंकि जिन बच्चों को किसी तरह का दंड नहीं दिया जा सकता--दंड अत्यंत प्रेमपूर्ण था, वह शत्रुता नहीं थी बच्चों के प्रति--क्योंकि उनके भीतर सोये हुए कुछ सेंटर्स, उसी के अंतर्गत जागते थे।

उनके भीतर रीढ़ खड़ी होती थी, मजबूत होती थी। उनके भीतर कोई बल पैदा होता था। उनके भीतर क्रोध भी जगता था और अभिमान भी जगता था और उनके भीतर कोई रीढ़ खड़ी होती थी।
हम बेरीढ़ के आदमी पैदा कर रहे हैं, जो जमीन पर सरक सकते हैं लेकिन बाज पक्षियों की तरह आकाश में नहीं उड़ सकते। एक सरकता हुआ, रेंगता हुआ आदमी हम पैदा कर रहे हैं जिसके पास कोई रीढ़ नहीं। और हम सोचते हैं कि हम दया और प्रेम और नीति के अंतर्गत यह कर रहे हैं। और उसको भी हम यही सिखाते हैं कि क्रोध मत करना, उसको भी हम यही सिखाते हैं कि तेरे भीतर कोई तेजस्विता प्रगट न हो, तू बिल्कुल शांत और ढीला-ढाला आदमी बनना, शिथिल।
इस आदमी के जीवन की कोई आत्मा नहीं हो सकती, इस आदमी के भीतर कोई आत्मा नहीं हो सकती, क्योंकि आत्मा के लिए जैसी तीव्र सारे हृदय की भावनाएं होनी चाहिए, वे उसके भीतर कोई भी नहीं होने वाली हैं।
एक मुसलमान खलीफा था उमर। एक शत्रु से बारह वर्षों से उसका युद्ध चलता था। बामुश्किल आखिरी लड़ाई में उसने शत्रु के घोड़े को मार डाला और उसकी छाती पर सवार हो गया, शत्रु के। उसने भाला उठाया और वह छाती में छेदने को था, तभी उस

शत्रु ने उमर के ऊपर थूक दिया। उमर ने भाला अलग फेंक दिया, उठकर खड़ा हो गया। वह शत्रु हैरान हुआ। उसने कहा कि उमर, बारह वर्षों के बाद ऐसा अवसर तुम्हें मिला था, इसे क्यों चूकते हो? उमर ने कहा, "मैं तो सोचता था कि तू मेरे मुकाबले का दुश्मन है, लेकिन थूककर तूने मेरे मुंह पर ऐसी नीचता प्रगट की है कि अब तुझे मारने का कोई सवाल नहीं रहा। तूने ऐसी नीचता जाहिर की है, जो एक बहादुर का लक्षण नहीं। मैं तो सोचता था कि तू मेरे मुकाबले का आदमी है, इसलिए बारह साल से लड़ाई चलती थी।
लेकिन जब भाला उठाकर मैं तेरे ऊपर मारने लगा, तूने मेरे ऊपर थूक दिया जो एक बहादुर का लक्षण नहीं। तो तुझे मारकर मारने का पाप लेने वाला मैं हूं-- दुनिया क्या कहेगी कि कमजोर आदमी को मारा, जो थूकने की ताकत रखता था और कोई ताकत नहीं। इसलिए बात खतम हो गयी, अब तुझे मारने का पाप मैं लेने वाला नहीं हूं।
ये जो लोग थे, अदभुत लोग थे। दुनिया में अस्त्र-शस्त्रों और मशीनों की ईजाद ने आदमी के भीतर जो भी महत्वपूर्ण था, उस सबको नष्ट कर दिया। सीधी लड़ाइयों का अपना मूल्य था। मनुष्य के भीतर छिपी हुई चीजों को वे प्रगट कर देती थीं। आज एक सैनिक कोई सीधी लड़ाई नहीं लड़ता।

हवाई जहाज में उड़कर बम पटक देता है, उससे बहादुरी का कोई संबंध नहीं। उससे भीतर के गुणों का कोई वास्ता नहीं। एक मशीनगन पर बैठकर बटन दबाता रहता है, उससे कोई वास्ता नहीं।
तो आदमी की जिंदगी में जो भी छिपा हुआ था, उसके जगने की सारी संभावना क्षीण हो गयी और तब आदमी इतना दीन-हीन, इतना दुर्बल दिखायी पड़ता है तो कोई आश्चर्य नहीं है! उसका आथेंटिक बींइग पैदा ही नहीं हो पाता। उसके भीतर सारे तत्व जुड़कर खड़े नहीं हो पाते।
और हमारी शिक्षायें सब हैरानी से भरने वाली हैं। मेरी दृष्टि में मनुष्य के भीतर के सारे गुणों का तीव्रतम, चरम विकास होना चाहिए, पहली बात। और चरम विकास हो तो ही इस चरम बिंदु पर ट्रांसफार्मेशन हो सकता है। सब परिवर्तन चरम बिंदुओं पर होते हैं, नीचे कोई परिवर्तन नहीं होते। पानी को हम गरम करते हैं तो पानी कुनकुना होकर भाप नहीं बनता। कुनकुना पानी भी पानी ही होता है, लेकिन सौ डिग्री पर जब चरम, अपनी गर्मी को उपलब्ध होता है तो एक क्रांति होती है। पानी भाप बनना शुरू हो जाता है। पानी सौ डिग्री पर भाप बनता है, और उसके पहले भाप नहीं बनता; कुनकुना पानी भाप नहीं बनता है।

हम सब कुनकुने आदमी हैं, हमारी जिंदगी में भी कोई परिवर्तन नहीं होते। हमारी जिंदगी में भी कोई परिवर्तन नहीं हो सकते, क्योंकि एक विशिष्ट डिग्री तक हमारे चित्त की, हमारे हृदय की सारी शक्तियां विकसित होनी चाहिए तो उनमें क्रांति हो सकती है, तो उनमें परिवर्तन हो सकता है। क्रोध की एक ठीक-ठीक तेजस्विता उपलब्ध हो तो ही क्षमा में परिवर्तन हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता।
लेकिन हम तो क्रोध के शत्रु हैं, हम तो लोभ के शत्रु हैं, हम तो राग के शत्रु हैं, तो हम कुनकुने आदमी हो जाते हैं, ल्यूकवार्म आदमी हो जाते हैं। बस कुनकुना-कुनकुनी जिंदगी रहती है, उसमें कोई क्रांति कभी नहीं हो पाती। और इस कुनकुनेपन का इतना घातक मनुष्य के ऊपर असर हुआ है जिसका कोई हिसाब नहीं। मेरी दृष्टि में यह पहली बात ध्यान में लेने की है कि हमारे व्यक्तित्व के, हमारे हृदय के सारे गुण ठीक से विकसित हों और ठीक से विकसित क्रोध भी एक अपना सौंदर्य रखता है, जो हमें दिखायी नहीं पड़ता है। ठीक से विकसित क्रोध का भी अपना सौंदर्य है, ठीक से विकसित क्रोध का भी व्यक्तित्व में अपना तेज है, अपनी ऊर्जा है, अपना अर्थ है, अपना मीनिंग है। वह व्यक्तित्व को अपने ढंग का

सहयोग देता है, अपना कंट्रीब्यूशन करता है, व्यक्तित्व को अपना दान देता है।
हृदय की जितनी भावनाएं हैं, वे सब तीव्रतम रूप से विकसित होनी चाहिए। और, पहली बात--विध्वंस नहीं, उनका विकास।
दूसरी क्या बात है! दूसरी बात है, दमन नहीं, दर्शन। क्योंकि जितना हम हृदय की भावनाओं का दमन करते हैं उतना ही हृदय हमारा अचेतन और अनकांशस होता चला जाता है।
जिस चीज को हम दबाते हैं वह हमारी आंख से ओझल और अंधेरे में सरक जाती है। हृदय की सारी शक्तियों का स्पष्ट दर्शन होना चाहिए। अगर आपको क्रोध आ जाये तो राम-राम जपकर उसको दबाने की कोशिश मत करिये। क्रोध आ जाये तो एकांत कमरे में बैठकर, द्वार बंद करके क्रोध पर ध्यान करिये। उस क्रोध को पूरी तरह देखिये कि यह क्रोध क्या है, यह क्रोध की शक्ति क्या है? मेरे भीतर यह क्रोध कहां से पैदा होता है, क्यों पैदा होता है, किस भांति मेरे चित्त को घेर लेता है, और मुझे प्रभावित... ?
एकांत में मेडिटेशन करिये क्रोध पर, ध्यान करिये क्रोध पर। क्रोध को पूरा देखिये, समझिये, पहचानिये--कहां से पैदा होता है, क्यों पैदा होता है? तो आप धीरे-धीरे क्रोध के मालिक हो जायेंगे।

और जो आदमी अपने क्रोध का मालिक हो जाता है, उसके हाथ में एक बड़ी शक्ति आ गयी, उसके हाथ में एक बड़ा बल आ गया। वह आदमी बलशाली हो गया, वह आदमी आत्मबली हो गया। तो क्रोध से लड़ने का उतना सवाल नहीं है, जितना क्रोध को जानने का सवाल है। क्योंकि स्मरण रखें, ज्ञान से बड़ी कोई भी शक्ति नहीं है और अपनी ही शक्तियों से लड़ने से बड़ी कोई मूर्खता नहीं है। क्योंकि जो अपनी ही शक्तियों से लड़ता है वह इसी तरह की गलती कर रहा है, जैसे कोई आदमी अपने ही दोनों हाथों को लड़ाने लगे। तो दोनों हाथ लड़ेंगे, कोई हाथ जीत नहीं सकेगा कभी भी, क्योंकि दोनों हाथ मेरे ही हैं, दोनों हाथों के पीछे से मैं ही लड़ रहा हूं। दोनों हाथों में मेरी ही शक्ति प्रवाहित हो रही है, तो दोनों हाथों की लड़ाई में मेरी ही शक्ति नष्ट हो रही है। कोई जीत नहीं सकता। दोनों हाथों में न तो बायां जीतेगा, न तो दायां जीतेगा। एक बात तय है कि दोनों हाथों की लड़ाई में मैं हार जाऊंगा। मेरी सारी शक्ति व्यर्थ और अपव्यय हो जायेगी।
जब आप क्रोध से लड़ते हैं तो क्रोध में जो शक्ति है वह किसकी है? वह आपकी ही है। क्रोध में जो शक्ति प्रगट हो रही है वह आपकी है, जो लड़ रहा है वह आप हैं। आप अपने को ही तोड़कर लड़ेंगे तो आप खंडित से

खंडित होते चले जायेंगे, डिसइंटीग्रेशन इसका परिणाम होगा, आप अखंड व्यक्ति नहीं रह जायेंगे। और अपने ही भीतर जो व्यक्ति अपने से ही लड़ता है, पराजय के अतिरिक्त उसके जीवन में कोई उपलब्धि कभी नहीं हो सकती। हो ही नहीं सकती, वह असभंव है। लड़िये मत, जानिये अपनी शक्तियों को, पहचानिये, उनसे परिचित हो जाइए।
इसलिए दूसरा सूत्र हैः दमन नहीं, दर्शन। सप्रेस मत करिए। जब भी, जो भी शक्ति भीतर उठती है--हम एक अपरिचित शक्तियों का समूह हैं। हम बहुत अनजान शक्तियों का केंद्र हैं, जिन शक्तियों का हमें कोई परिचय नहीं, कोई बोध नहीं। हजारों साल पहले भी आकाश में बिजली चमकती थी, आदमी डरता था, भयभीत होता था, हाथ जोड़कर बैठ जाता था, कि भगवान आप नाराज हो गए हैं, यह क्या हो गया है, घबराता था! बिजली जो थी वह भय का कारण थी। लेकिन आज हम जानते हैं, बिजली हमने बांध ली है, आज बिजली भय का कारण न रही, सेवक बन गयी। आज घर-घर में उससे प्रकाश होता है, बीमार का इलाज होता है, मशीन चलती है। आदमी की सारी जिंदगी आज उससे प्रभावित है, उससे संचालित है, उसकी मालिक हो गयी। लेकिन हजारों साल तक आदमी सिर्फ डरता था क्योंकि बिजली को जानता नहीं था कि बिजली क्या है। एक बार

जान लिया कि क्या है, तो हम उसके मालिक हो गये।
ज्ञान मालिक बना देता है। हमारे भीतर भी बहुत बिजलियों से भी बड़ी ताकतें प्रज्वलित हैं, चमकती हैं। क्रोध चमकता है, घृणा चमकती है, प्रेम चमकता है, हम घबरा जाते हैं, डर जाते हैं कि यह क्या हो रहा है, क्योंकि इन सारी शक्तियों को हम जानते नहीं कि ये क्या हैं!
अपनी जिंदगी को एक प्रयोगशाला बनाइये और भीतर की उन सारी ताकतों को जानने, निरीक्षण करने, पहचानने के प्रयास में संलग्न हो जाइये। भूलकर भी दमन तो करिये मत, भूलकर भयभीत मत होइये, लेकिन जो भी भीतर है उसे जानने की फिक्र करिये। क्रोध आ जाये तो सौभाग्य समझिये और जो आदमी क्रोध में आपको ला दे उसको धन्यवाद दीजिये कि उसने एक मौका दिया है। आपके भीतर एक ताकत जग गयी है, अब आप उसको देख सकेंगे। और एकांत में उस ताकत को शांति से देखिये, पहचानिये, खोजिये-- वह क्या है?
जितना आपका यह जानना बढ़ेगा, जितनी आपकी यह अंडरस्टेंडिंग गहरी होगी, उतने ही आप अपने क्रोध के मालिक हो जायेंगे, उतना ही आप पायेंगे, वह आपके हाथ में खेलने वाली एक ताकत हो गयी है। और जिस दिन आप क्रोध के मालिक हैं उस दिन आप

क्रोध को परिवर्तित कर सकते हैं, उसको बदल सकते हैं।
जिसके हम मालिक हैं उसे हम बदल सकते हैं, जिसके हम मालिक नहीं उसे हम बदलेंगे कैसे? और जिससे आप लड़ते हैं, ध्यान रखें, उसके आप मालिक कभी भी नहीं हो सकते हैं। क्योंकि शत्रु का मालिक होना असंभव है, केवल मित्र का ही मालिक हुआ जा सकता है, और अपने ही भीतर की ताकतों के अगर आप शत्रु हो गये, तो आप कभी उनके मालिक नहीं हो सकते।
प्रेम के अतिरिक्त कोई विजय नहीं। यह जो भीतर सारी शक्तियों का अनंत भंडार है--न तो घबराइये इससे, न इसकी निंदा करिये, इसको पहचानने चलिए कि क्या-क्या छिपा है आदमी के भीतर।
आदमी के भीतर इतना छिपा है जिसका कोई हिसाब नहीं। हम अभी आदमी की शुरुआत भी नहीं हैं। दस-पच्चीस हजार साल में शायद जो आदमी होगा, हम उससे उतने ही फासले पर हो जायेंगे जैसे बंदर हमसे फासले पर हो गया। वह बिल्कुल नयी जाति हो सकती है, क्योंकि आदमी के भीतर कितनी शक्तियां हैं उनका अभी हमें कोई बोध नहीं। वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क का अभी कोई आधे से ज्यादा हिस्सा बिल्कुल बेकार पड़ा हुआ है, उसका कोई उपयोग ही नहीं हो रहा है। मस्तिष्क का थोड़ा-सा हिस्सा काम कर रहा है, बाकी

सारा हिस्सा बंद पड़ा है। यह जो बाकी हिस्सा है, यह व्यर्थ तो नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकृति में कुछ भी व्यर्थ नहीं है। हो सकता है आदमी का अनुभव, आदमी का ज्ञान विकसित हो तो यह बंद पड़ा हुआ हिस्सा भी सक्रिय हो जाये और काम करने लगे। और तब मनुष्य और क्या जान सके, उसके लिए हम कुछ भी नहीं कह सकते। एक आदमी अंधा है तो उसके लिए प्रकाश जैसी चीज दुनिया में नहीं रह जाती। प्रकाश है ही नहीं उसके लिए। आंख नहीं है तो प्रकाश नहीं है। जिन प्राणियों के पास आंख नहीं है, उन्हें पता भी नहीं हो सकता है कि प्रकाश है भी जगत में। उन्हें कल्पना भी नहीं हो सकती, वे सपना भी नहीं देख सकते कि प्रकाश भी है जगत में। हमारे पास पांच इंद्र्रियां हैं। कौन कह सकता है कि छठवीं इंद्रिय होती तो हम कुछ और चीजें जानते जो कि जगत में हों, कौन कह सकता है कि सात इंद्रियां होतीं तो हम और भी चीजें जानते जो कि जगत में हों! और कौन कह सकता है कि इंद्रियों की कितनी सीमा है, वे कितनी हो सकती हैं!
हम जो जानते हैं वह अत्यल्प है, और हम जो जीते हैं वह उससे भी अत्यल्प है। हमारे भीतर हम जितना जानेंगे, जितना भीतर प्रवेश करेंगे, जितना परिचित होंगे, उतना ही ज्यादा हमारी जीवन-

281

शक्ति विकसित होती है और हमारी आत्मा सघन होती है।
दूसरा सूत्र ध्यान में लेने जैसा है, कि हम अपनी किसी भी शक्ति का दमन न करें, बल्कि उसे जानें, पहचानें, खोजें, देखें। और इसी के साथ एक हैरानी का अनुभव आपको होगा कि अगर आप क्रोध को जानने गये, अगर आपने बैठकर शांति से क्रोध को देखने और दर्शन का प्रयास किया तो आप एक हैरानी से भर जायेंगे कि जैसा आप दर्शन करने को प्रवृत्त होंगे, वैसा ही क्रोध विलीन होगा। जैसे ही आप क्रोध को निरीक्षण करेंगे, वैसे ही क्रोध तिरोहित हो जायेगा। तब आपको एक बात दिखायी पड़ेगी कि क्रोध आपको पकड़ता है मूर्च्छा में। जब आप होश से भरते हैं तो क्रोध विलीन हो जाता है। अगर आपके मन में कामुक भावना उठी है और आप उसका निरीक्षण करने चले गये हैं तो आप पायेंगे, वह विसर्जित हो गयी है। तब आप पायेंगे कि काम पैदा होता है मूर्च्छा में और निरीक्षण करने से विलीन हो जाता है।
तो आपके हाथ में एक अदभुत सूत्र उपलब्ध हो जायेगा। वह यह कि मूर्च्छा के अतिरिक्त क्रोध और काम और लोभ का मनुष्य के ऊपर कोई बल नहीं है। और जैसे ही वह निरीक्षण करता है, होश से भरता है,

अवेअरनेस से भरता है, वैसे ही क्रोध विलीन हो जाता है।
एक मेरे मित्र थे, उनको बहुत क्रोध की बीमारी थी। वे मुझसे कहे, कि मैं तो बहुत परेशान हो गया हूं और अब मेरे वश के बाहर है यह बात। आप ही कुछ रास्ता मुझे बता दें। मुझे कुछ भी न करना पड़े, क्योंकि मैं तो हैरान हो गया हूं। मुझे अब आशा नहीं रही कि मैं कुछ कर सकता हूं, इस क्रोध के बाहर हो सकता हूं।
मैंने उन्हें एक कागज पर लिखकर दे दिया एक छोटा-सा वचन कि "अब मुझे क्रोध आ रहा है।" और मैंने कहा, इस कागज को अपनी खीसे में रखें और जब भी आपको क्रोध आये, निकालकर कृपा करके इसको पढ़ लें और फिर वापिस रख दें। मैंने कहा, इतना तो आप कर ही सकते हैं। इससे ज्यादा तो... यह तो इतना अत्यल्प है कि इससे कम और करने के लिए क्या आपसे प्रार्थना की जाये। इस कागज को पढ़ लिया करें और वापस रख लिया करें। उन्होंने कहा हां, यह मैं कोशिश करूंगा।
कोई दो-तीन महीने बाद मुझे मिले। मैंने कहा, क्या हिसाब? उन्होंने कहा, मैं तो हैरान हो गया। इस कागज ने तो मंत्र का काम किया। क्रोध आता और मैं इसको निकालता हूं। निकालता हूं तभी मेरे हाथ-पैर ढीले हो जाते हैं। हाथ खीसे में डाला और मुझे ख्याल आया कि

क्रोध आ रहा है। कोई बात ढीली हो जाती है, भीतर से वह पकड़ चली जाती है, वह जो ग्रिप है क्रोध की, वह जो प्राणों को पकड़ लेने की बात है पंजे में, वह बात एकदम ढीली पड़ जाती है। हाथ खीसे में गया और उधर हाथ ढीला पड़ा और अब तो पढ़ने की भी जरूरत नहीं पड़ती। क्रोध आने का ख्याल आता है कि वह भीतर खीसे में पड़ी चिट दिखायी पड़ने लगती है।
वह मुझसे पूछने लगे कि इस चिट का ऐसा कैसे परिणाम हुआ है, इसका क्या रहस्य है? मैंने कहा, इसमें कोई भी रहस्य नहीं है, सीधी-सी बात है। चित्त की जो भी विकृतियां हैं, चित्त की जो भी अराजकताएं हैं, चित्त का जो भी असंतुलन है वह मूर्च्छा में ही पकड़ता है, होश आया कि वह विलीन हो जाता है।
तो निरीक्षण के दो फल होंगे--ज्ञान विकसित होगा इन सारी शक्तियों का, और ज्ञान मालिक बनाता है। और दूसरा परिणाम होगा कि ये शक्तियां जिस रूप में अभी पकड़ती हैं पागल की तरह, उस रूप में इनके पकड़ने की सामर्थ्य क्षीण हो जायेगी, शिथिल हो जायेगी। और धीरे-धीरे आप पायेंगे कि पहले तो क्रोध आ जाता है तब आप निरीक्षण करते हैं। फिर धीरे-धीरे आप पायेंगे, क्रोध आता है और साथ ही निरीक्षण आ जाता है। फिर धीरे-धीरे आप पायेंगे, क्रोध आने को होता है और

निरीक्षण आ जाता है। और जिस दिन क्रोध के पहले निरीक्षण का बोध आ जाता है उस दिन क्रोध के पैदा होने की कोई संभावना नहीं रह जाती, कोई विकल्प नहीं रह जाता। पश्चात्ताप मूल्य का नहीं है, पूर्व-बोध मूल्य का है। क्योंकि पश्चात्ताप होता है पीछे। पीछे कुछ भी नहीं किया जा सकता, पीछे रोना-धोना बिल्कुल ही व्यर्थ है, क्योंकि जो हो चुका, उसे अब न करना असंभव है, जो हो चुका उसे अन-डन करना असंभव है। क्योंकि अतीत की तरफ लौटने की कोई गुंजाइश नहीं, कोई मार्ग नहीं, कोई द्वार नहीं। लेकिन जो नहीं हुआ, उसे बदला जा सकता है। पश्चात्ताप का मतलब ही यह है कि पीछे जो जलन पकड़ लेती है। वह उसका कोई मतलब नहीं है, वह बिल्कुल ना-समझी से भरा हुआ है। क्रोध किया वह गलती हो गयी और फिर पश्चात्ताप किया वह दोहरी गलती हो रही है। वह व्यर्थ ही आप परेशान हो रहे हो, उसका कोई मूल्य नहीं है। पूर्व-बोध, पूर्व-बोध तब विकसित होगा जब हम निरीक्षण करें, धीरे-धीरे चित्त की सारी वृत्तियों का निरीक्षण करें।
दूसरा सूत्र हैः दर्शन, दमन नहीं।
और तीसरा सूत्र हैः रूपांतरण, ट्रांसफार्मेशन। चित्त की प्रत्येक वृत्ति रूपांतरित होती है, हो सकती है।
हर चीज के अनेक रूप हैं, हर चीज अपने से

विपरीत रूपों में भी परिवर्तित हो सकती है। ऐसी कोई भी वृत्ति नहीं है, ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है जो शुभ की दिशा में, मंगल की दिशा में प्रवाहित न की जा सके। और स्मरण रखें कि जो चीज अशुभ बन सकती है, वह अनिवार्य-रूपेण शुभ बन सकती है। जो चीज अमंगल बन सकती है, वह अनिवार्य-रूपेण मंगल बन सकती है। मंगल और अमंगल, शुभ और अशुभ दिशाएं हैं। सिर्फ रूपांतरित, सिर्फ दिशा परिवर्तित हो और सारी चीज दूसरी हो जाती है।
एक आदमी दिल्ली के पास से भागा चला जा रहा था, और उसने किसी को पूछा कि दिल्ली कितनी दूर है? उस आदमी ने कहा, अगर आप सीधे ही भागे चले जाते हैं तो सारी पृथ्वी का चक्कर लगायेंगे तब दिल्ली उपलब्ध हो सकेगी, क्योंकि दिल्ली की तरफ आपकी पीठ है। और अगर आप पीछे लौट पड़ते हैं तो दिल्ली से ज्यादा निकट और कोई भी गांव नहीं है। दिल्ली केवल लौटने, पीछे देखने की बात है और आप दिल्ली पहुंच जायेंगे। वह आदमी भागे जा रहा है जिस दिशा में, उस दिशा में पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करे तो ही पहुंच सकता है। और लौट पड़े तो पहुंचा ही हुआ है, अभी और यहीं पहुंच सकता है।
हम जिन दिशाओं में बहे जाते हैं उन दिशाओं में ही बहते रहें तो हम कहीं भी नहीं पहुंच सकते, पृथ्वी की परिक्रमा

लेकर भी नहीं पहुंच सकते। क्योंकि पृथ्वी छोटी है और चित्त बड़ा है। पृथ्वी की परिक्रमा एक आदमी पूरी भी कर ले, लेकिन चित्त की परिक्रमा असंभव है, वह बहुत बड़ा है, बहुत विराट है, बहुत अनंत है। पृथ्वी की परिक्रमा पूरी भी हो जायेगी एक दिन, वह आदमी वापिस दिल्ली आ सकता है, लेकिन चित्त और भी बड़ा है पृथ्वी से, उसकी पूरी परिक्रमा बहुत लंबी है।
तो फिर लौटने का बोध, दिशा परिवर्तन का, वापिस लौटने का, रूपांतरण का बोध-- तीसरी बात ध्यान में रखने की है।
अभी हम जैसे भी बहे जा रहे हैं, हम गलत बहे जा रहे हैं। तो गलत का क्या सबूत है? गलत का सबूत है कि हम जितने बहते हैं उतने खाली होते हैं, जितने बहते हैं उतने दुखी होते हैं, जितने बहते हैं उतने अशांत होते हैं, जितने बहते हैं उतने अंधकार से भरते हैं, तो निश्चित ही हम गलत बहे जा रहे हैं।
आनंद एकमात्र कसौटी है जीवन की। जिस जीवन में आप बहे जा रहे हैं अगर वहां आनंद उपलब्ध नहीं होता है, तो जानना चाहिए आप गलत बहे जा रहे हैं। दुख गलत होने का प्रमाण है और आनंद ठीक होने का प्रमाण है, इसके अतिरिक्त कोई कसौटी नहीं। न किसी शास्त्र में खोजने की जरूरत है, न किसी गुरु से पूछने की

जरूरत है। कसने की जरूरत है कि मैं जहां बहा जा रहा हूं वहां मुझे आनंद बढ़ता जा रहा है, गहरा होता जा रहा है--तो मैं ठीक जा रहा हूं। और अगर दुख बढ़ता जा रहा है, पीड़ा बढ़ती जा रही है, चिंता बढ़ती जा रही है--तो मैं गलत जा रहा हूं।
इसमें किसी को मान लेने का भी सवाल नहीं है। अपनी जिंदगी में खोज कर लेने का सवाल है कि हम रोज दुख की तरफ जाते हैं या रोज आनंद की तरफ जाते हैं। अगर आप अपने से पूछेंगे तो कठिनाई नहीं होगी।
बूढ़े भी कहते हैं कि हमारा बचपन बहुत आनंदित था। इसका मतलब क्या हुआ कि वे गलत बह गये। क्योंकि बचपन तो शुरुआत थी जिंदगी की, और वे आनंदित थे और अब वे दुखी हैं। शुरुआत आनंद थी और अंत दुख ला रहा है तो जीवन गलत बहा। होना उल्टा चाहिए था। होना यह चाहिए था कि बचपन में जितना आनंद था वह रोज-रोज बढ़ता चला जाता। बुढ़ापे में आदमी कहता है कि बचपन सबसे दुख की स्थिति थी, क्योंकि वह तो जीवन का प्रारंभ था, वह तो जीवन की पहली कक्षा थी।
अगर एक विद्यार्थी विश्वविद्यालय
में पढ़ने जाये और कहे कि पहली कक्षा में ज्यादा ज्ञान था और अब धीरे-धीरे ज्ञान कम होता जा रहा है तो हम कहेंगे कि तुम पढ़ रहे हो, तुम ज्ञान की तरफ बढ़ रहे हो?

हद हैरानी की बात है! पहली कक्षा में अज्ञान ज्यादा था यह समझ में आने वाली बात थी, ज्ञान कम था यह समझ में आने वाली बात है, और अब ज्ञान बढ़ना था, अज्ञान कम होना था।
जीवन की पहली कक्षा में लोग कहते हैं कि बहुत सुख था। कवि गीत गाते हैं कि बचपन बड़ा आनंदपूर्ण था। पागल होंगे ये कवि। क्योंकि अगर बचपन आनंदपूर्ण था तो जिंदगी तुमने गंवायी, या जिंदगी उपलब्ध की! तो अच्छा था कि तुम बचपन में मर जाते तो तुम सुखी मर जाते। अब तुम व्यर्थ ही दुखी मरोगे। तो धन्यभागी हैं वे, जो बचपन में मर गये।
जो आदमी जितना जिंदा रह रहा है उतना आनंद बढ़ना चाहिए, लेकिन हमारा आनंद घटता है। वे कवि गलत नहीं कहते, वह जीवन के अनुभव की बात कह रहे हैं बेचारे! ठीक ही कह रहे हैं। हमारा आनंद घटता ही चला जाता है। रोज-रोज हमारा सब घटता चला जा रहा है, रोज बढ़ना था। तो हम कुछ गलत जाते हैं। हमारी जीवन-दिशा कुछ भूल भरे मार्गों पर प्रवाहित होती है। हमारी ऊर्जा कुछ गलत प्रवाहित होती है। इसकी निरंतर खोज-बीन, इसका परीक्षण, इसकी कसौटी मन में साफ होनी चाहिए। और अगर आपको साफ हो जाये कसौटी और खोज स्पष्ट हो जाए कि मैं गलत बह रहा हूं, तो ठीक बहने के लिए दुनिया में कोई आपको बाधा

नहीं दे रहा है सिवाय आपके। अतिरिक्त आपके, इस जगत में आपको ठीक बहने के लिए कोई भी बाधा नहीं दे रहा है।
दो फकीर एक संध्या अपने झोपड़े पर पहुंचे। वे चार महीने से बाहर थे और अब वर्षा आ गयी थी तो अपने झोपड़े पर वापस लौटे थे। लेकिन झोपड़े के करीब आकर, जो आगे युवा फकीर था, वह एकदम क्रोध से भर गया और दुखी हो गया। वर्षा की हवाओं ने आधे झोपड़े को उड़ा दिया था, आधा ही झोपड़ा बचा था। वे चार महीने भटककर आये थे इस आशा में कि वर्षा में अपने झोपड़े में विश्राम कर सकेंगे, पानी से बच सकेंगे, यह तो मुश्किल हो गयी। झोपड़ा आधा टूटा हुआ पड़ा था, आधा छप्पर उड़ा हुआ था।
उस युवा संन्यासी ने लौटकर अपने बूढ़े साथी को कहा कि यह तो हद हो गयी। इन्हीं बातों से तो भगवान पर शक आ जाता है, संदेह हो जाता है। महल खड़े हैं पापियों के नगर में, उनका कुछ बाल-बांका नहीं हुआ। हम गरीबों की झोपड़ी, जो दिन-रात उसी की प्रार्थना में समय बिताते हैं, वह आधी छप्पर टूट गयी। इसीलिए मुझे शक हो जाता है कि भगवान है भी! यह प्रार्थना है भी! क्या हम सब गलती में पड़े हैं, हम पागलपन में पड़े हैं? हो सकता है पाप ही असली सचाई हो, क्योंकि पाप के महल खड़े रह जाते हैं और

प्रार्थना करने वालों के झोपड़े उड़ जाते हैं।
वह क्रोध से भर गया और निंदा से भर गया और उसे अपनी सारी प्रार्थनाएं व्यर्थ मालूम पड़ीं। लेकिन वह जो बूढ़ा साथी था, वह हाथ आकाश की तरफ जोड़कर खड़ा हो गया और उसकी आंखों से आनंद के आंसू बहने लगे। युवक तो हैरान हुआ! उसने कहा, क्या करते हैं आप? उस बूढ़े ने कहा, मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं, क्योंकि जरूर ही... आंधियों का क्या भरोसा था, पूरा झोपड़ा भी उड़ाकर ले जा सकती थीं। भगवान ने यह बीच में कोई बाधा दी होगी इसलिए आधा छप्पर बचा। नहीं तो आंधियों का क्या भरोसा था, पूरा छप्पर भी उड़ सकता था। हम गरीबों की भी उसे फिक्र है और ख्याल है तो उसे धन्यवाद दे दें। हमारी प्रार्थनाएं सुनी गयी हैं, हमारी प्रार्थनाएं व्यर्थ नहीं गयीं। नहीं तो आधा छप्पर बचना मुश्किल था।
फिर वे रात दोनों सोये। सोच ही सकते हैं आप, दोनों अलग-अलग ढंग से सोये। क्योंकि जो क्रोध और गुस्से से भरा था और जिसकी सारी प्रार्थनाएं व्यर्थ हो गयीं, वह रात भर करवट बदलता रहा और रात भर उसके मन में न मालूम कैसे-कैसे दुःस्वप्न चलते रहे, चिंताएं चलती रहीं। वह चिंतित था। वर्षा ऊपर खड़ी थी, बादल आकाश में घिर गये थे, आधा छप्पर

उड़ा हुआ था, आकाश दिखायी पड़ रहा था। कल वर्षा शुरू होगी, फिर क्या होगा? दूसरा बहुत गहरी नींद सोया, क्योंकि जिसके प्राण धन्यवाद से भरे हैं, और ग्रेटीट्यूड से और कृतज्ञता से उसकी निद्रा जैसी सुखद निद्रा और किसकी हो सकती है! वह सुबह उठा और नाचने लगा और उसने एक गीत गाया और उस गीत में उसने कहा, कि हे परमात्मा! हमें पता भी न था कि आधे झोपड़े का इतना आनंद हो सकता है। अगर हमें पहले से पता होता तो हम तेरी हवाओं को कष्ट भी न देते, हम खुद ही आधा छप्पर अलग कर देते। ऐसी आनंददायी नींद तो मैं कभी सोया ही नहीं। आधा छप्पर नहीं था, तो जब भी रात आंख खुली तो तेरे आकाश के तारे भी दिखायी पड़े, तेरे घिरते हुए बादल भी दिखायी पड़े। अब तो बड़ा आनंद होगा, वर्षा आने को है, कल से पानी पड़ेगा, हम आधे छप्पर में सोये भी रहेंगे और रात तेरी बूंदों की आवाज, तेरी बूंदों का संगीत भी हमारे पास ही पड़ता रहेगा। हम पागल रहे अब तक। हमने कई बरसातें ऐसे ही पूरे छप्पर के भीतर छिपे हुए बिता दीं। हमें पता भी न था कि आधे छप्पर का भी कोई आनंद हो सकता है। अगर हमें मालूम होता, हम तेरी आंधियों को तकलीफ भी न देते, हम खुद ही आधा छप्पर अलग कर देते।

उस दूसरे युवक ने पूछा, कि मैं यह क्या सुन रहा हूं, यह सब क्या बकवास है? यह क्या पागलपन है? यह तुम क्या कहते हो? तो उस बूढ़े ने कहा, मैंने बहुत खोजा और मैंने यह अनुभव कर लिया कि जिस बात से दुख बढ़ता हो वह जीवन-दिशा गलत है और जिस बात से आनंद बढ़ता हो वह जीवन-दिशा सही है। मैंने भगवान को धन्यवाद दिया, मेरा आनंद बढ़ा। तुमने भगवान पर क्रोध किया तुम्हारा दुख बढ़ा। तुम रात बेचैन रहे, मैं रात शांति से सोया। अभी मैं गीत गा पा रहा हूं और तुम क्रोध से जले जा रहे हो। बहुत पहले मुझे समझ में आ गया कि जो आनंद बढ़ाता है वही जीवन-दिशा सही है। और मैंने अपनी सारी चेतना को उसी तरफ प्रवाहित किया है। मुझे पता नहीं भगवान है या नहीं, मुझे पता नहीं उसने हमारी प्रार्थनाएं सुनी या नहीं सुनीं। लेकिन सबूत है मेरे पास कि मैं आनंदित हूं और नाच रहा हूं और तुम रो रहे हो और क्रोधित हो और परेशान हो। मेरा आनंद, मैं जैसा जी रहा हूं, उसके सही होने का सबूत है। तुम्हारा दुख, तुम जैसे जी रहे हो, उसके गलत होने का सबूत है।
तीसरी बात है, निरंतर इस बात का परीक्षण कि किन दिशाओं से मेरा आनंद घनीभूत होता है। किसी से पूछने जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह रोज-रोज की जिंदगी में, रोज-रोज कसौटी हमारे पास

है। आनंद की कसौटी है। जैसे पत्थर पर सोने को कसते हैं और जांच लेते हैं, क्या सही है और गलत है। और सुनार फेंक देता है, जो गलत है उसे एक तरफ और जो सही है उसे तिजोरी में रख लेता है।
आनंद की कसौटी पर रोज-रोज कसते रहें, क्या है सही और क्या है गलत! जो गलत है वह फिंक जायेगा, जो सही है उसकी संपदा धीरे-धीरे इकट्ठी हो जायेगी।
ये तीन सूत्र सुबह के लिए। फिर रात्रि इस संबंध में कुछ और बातचीत होगी, तो वह आपसे बात की जा सकेगी।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। थोड़े फासले पर एक-दूसरे से बैठ जायेंगे तो ठीक होगा। थोड़े फासले से, एक-दूसरे से कोई छूता हुआ न हो। वे बात समझ लें, शायद कुछ मित्र नए हों।
बहुत सीधी-सी, सरल-सी बात है जो करनी है। पर अकसर ऐसा होता है कि जो सरल बातें होती हैं, वे ही करने में कठिन मालूम पड़ती हैं। क्योंकि हमें सरल बातें करने की कोई आदत ही नहीं है। कठिन बातें करने की तो हम सबको आदत है लेकिन सरल बातें करने की कोई आदत नहीं है। यह बड़ी सरल-सी और सीधी-सी बात है कि हम थोड़ी देर के लिए शरीर को बिल्कुल शिथिल और शांत छोड़ दें। आंखों को आहिस्ता से बंद करके बस बैठे रहेंगे, कुछ करेंगे नहीं। और फिर चुपचाप आसपास जो आवाजें होंगी

उनको सुनते रहेंगे, सिर्फ सुनते रहेंगे। और सिर्फ सुनने, जस्ट लिसनिंग, भीतर एक शांति को और गहराई को पैदा करनी शुरू कर देगी।
जापान में तो ध्यान के लिए वे जो शब्द उपयोग करते हैं, वह शब्द भी बड़ा मजेदार है। उस शब्द को वे कहते हैं--झाझेन। और झाझेन का मतलब होता है, "जस्ट सिटिंग, डूइंग नथिंग।" इतना ही मतलब होता है, कुछ नहीं करना और चुपचाप बैठे रहना। ध्यान के लिए जो शब्द है जापानी में वह है--झाझेन--कुछ नहीं करना, बस बैठे रहना। बड़ा अर्थपूर्ण है। कुछ भी नहीं करना है, चुपचाप बैठे रहना है।
आंखें बंद हैं, कान खुले हुए हैं तो कान सुनते रहेंगे, तो चुपचाप सुनते रहें। चुपचाप सुनते रहें, सुनते रहें और सुनते ही सुनते आप पायेंगे कि भीतर एक गहरी शांति और शून्य पैदा होना शुरू हो गया है। उसी शून्य में निरंतर गति करनी है--गहरे से गहरे, गहरे से गहरे। उसी शून्य के द्वार से किसी दिन उसके दर्शन हो जाते हैं जो पूर्ण है। शून्य के मार्ग से इतनी उपलब्धि हो जाती है जो पूर्ण है। और ऐसे शांत होते-होते, होते- होते, पक्षियों को सुनते-सुनते, बाहर की आवाजों को सुनते-सुनते एक दिन वह आवाज सुनायी पड़ने लगती है, जो भीतर की आवाज है। तो चुपचाप बैठकर हम सुनेंगे।

पहली बात--शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आराम से, आंख आहिस्ता से बंद कर लें। आंख की पलक धीरे-से छोड़ दें, कोई भार न पड़े आंख पर। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। बिल्कुल शांत बैठे जायें, सिर्फ बैठे हुए हैं और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। ये चारों तरफ पक्षी हैं और आवाजें हैं, इनको चुपचाप सुनते रहें, सुनें। चारों तरफ की आवाज को सुनते रहें। बस सुनते रहें, और कुछ भी न करें। धीरे-धीरे भीतर कोई चीज शांत होती जाएगी, कोई चीज सैटल होती चली जाएगी। भीतर एक... बस सुनते जायेंगे, भीतर एक शांति उतरती आएगी। दस मिनिट के लिए चुपचाप सुनते रहें। बिल्कुल आराम से सुनते रहें... सुनते रहें... मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया। सुनते रहें... मन शांत हो गया। सुनते रहें... मन शांत हो गया, मन बिल्कुल शांत हो गया, मन शांत हो गया, मन शांत हो गया। बड़े गहरे सन्नाटे में... एक-एक आवाज सुनते रहें, पक्षी बोल रहे हैं, सुनें! ...

अंतर्यात्रा-सदगुरु ओशो के 8 प्रवचनों का संकलन
प्रवचन-8
"मैं" से मुक्ति

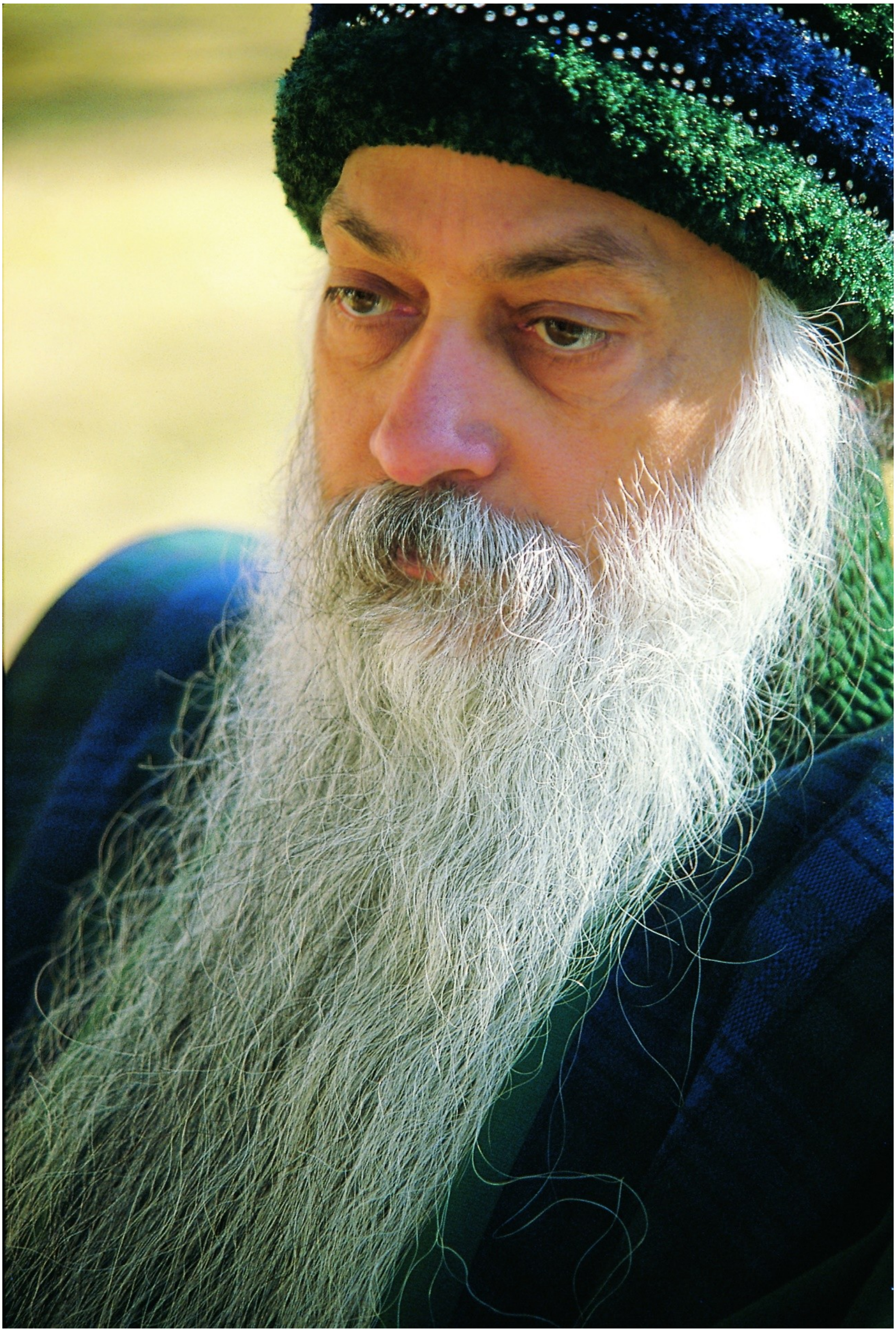

□□□□ □□□□□ □□□□□□!

आज शिविर की अंतिम बैठक है और बिदा की इस बैठक में कुछ अंतिम सूत्रों पर मुझे आपसे बात करनी है।
मनुष्य के मस्तिष्क में, मनुष्य की बुद्धि में तीव्र तनाव है और यह तनाव विक्षिप्तता के करीब पहुंच गया है। इस तनाव को शिथिल कर लेना है। और ठीक इसके साथ ही मनुष्य के हृदय में बड़ी शिथिलता है, मनुष्य के हृदय के तार बहुत ढीले छूट गये हैं। उन्हें वापस कस लेना है। यह हृदय के तार कैसे कसे जायेंगे, इस संबंध में थोड़े-से सूत्र मैंने सुबह कहे। और अंतिम सूत्र की बात अभी करनी है।
मनुष्य के हृदय के तार ही मनुष्य की जीवन-वीणा के सबसे बड़े संगीत के स्रोत हैं। और जिस समाज के पास हृदय खो जाता है और जिस मनुष्य के पास और जिस सदी के पास हृदय क्षीण हो जाता है, उस सदी और उस युग के पास जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है, जो भी सत्य है, वह सब भी विलीन हो जाता है। और अगर हम चाहते हैं कि सत्य, सुंदर और शिव जीवन में प्रविष्ट हो तो बिना हृदय के तारों को वापस संयोजित किए कोई और रास्ता नहीं है। हृदय के तार-संयोजन की, हृदय के तारों के ठीक-ठीक अवस्था में आ जाने की, जहां संगीत पैदा हो सके, जो दिशा है, उस दिशा का नाम ही प्रेम है। इसलिए मैं प्रेम को

प्रार्थना भी कहता हूं, प्रेम को प्रभु- प्राप्ति का मार्ग भी कहता हूं, प्रेम को परमात्मा भी कहता हूं। प्रेम के अतिरिक्त जो प्रार्थना है वह झूठी और थोथी और व्यर्थ है। प्रेम के अतिरिक्त प्रार्थना के जो शब्द हैं उनका कोई भी मूल्य नहीं। और प्रेम के अतिरिक्त जो परमात्मा की तरफ यात्रा करने को उत्सुक हुआ हो, वह कभी भी परमात्मा तक नहीं पहुंच सकेगा। प्रेम सूत्र है हृदय की वीणा को संगीतपूर्ण बनाने का। प्रेम के संबंध में ही कुछ समझ लेना जरूरी है। पहला तो भ्रम यह है कि हम सोचते हैं, हम सभी प्रेम को जानते हैं। यह भ्रम इतना घातक है जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि जो चीज हमें जानी हुई प्रतीति होती है; उसकी साधना की तरफ, उसे जगाने की तरफ हम कोई प्रयास नहीं करते हैं। मनुष्य-जाति को बड़े से बड़े इल्यूजन, बड़े से बड़े जो भ्रम हैं, उनमें एक भ्रम यह है कि हम प्रेम को जानते हैं। हर आदमी को यह भ्रम है कि हम प्रेम को जानते हैं। लेकिन हमें यह पता ही नहीं कि जो प्रेम को जान लेगा वह साथ ही परमात्मा को जानने की क्षमता को भी उपलब्ध हो जाता है। अगर हम प्रेम को जानते हैं तो जीवन में कुछ भी जानने को शेष नहीं रह जाता है, लेकिन हमारे जीवन में तो सभी कुछ जानने को शेष हैं। तो

जिस प्रेम को हम प्रेम समझते हैं वह प्रेम नहीं होगा, हमने किसी और ही बात को प्रेम समझ लिया होगा। हमने चित्त की किसी और ही दशा को प्रेम का नाम दे दिया होगा। और जब तक यह भ्रम न टूट जाये तब तक, जब हमें ख्याल ही है कि प्रेम हमें उपलब्ध है, तो हम प्रेम की तलाश और खोज कैसे करेंगे? इसलिए पहली बात तो यह ध्यान में लेने की है कि हमें प्रेम का कोई भी पता नहीं है।
जीसस क्राइस्ट एक दोपहर, भरी दोपहरी में, तेज धूप में रास्ते के किनारे एक बगिया के वृक्ष के नीचे रुके। धूप थी तेज और वे थके-मांदे थे। वृक्ष की छाया के तले सोए रहे। उन्हें पता भी न था कि वह मकान किसका है, वह वृक्ष किसका है, वह बगीचा किसका है। उस जमाने की एक अत्यंत सुंदरी, वेश्या का वह बगीचा था, मेग्दलीन का।
मेग्दलीन ने अपनी खिड़की से झांककर देखा, कोई एक अदभुत व्यक्ति वृक्ष के नीचे सोया है। ऐसा सुंदर व्यक्ति उसने कभी भी नहीं देखा था। क्योंकि एक सौंदर्य तो शरीर का है और एक सौंदर्य आत्मा का भी है। शरीर का सौंदर्य तो बहुत दिखाई पड़ता है, आत्मा का सौंदर्य कभी-कभी दिखाई पड़ता है। और फिर आत्मा का सौंदर्य प्रगट होता है तो कुरूप से कुरूप शरीर भी सुंदरतम बन जाता है।

उसने बहुत सुंदर लोग देखे थे। उसके द्वार पर सुंदर लोगों की भीड़ लगी रहती थी। उसके द्वार पर सभी को प्रवेश मिलना मुश्किल था। लेकिन ऐसा सुंदर आदमी उसने कभी देखा ही न था। वह मेग्दलीन जैसे किसी जादू से खिंची हुई वृक्ष के नीचे पहुंच गई।
जीसस क्राइस्ट उठकर जाने को थे, उनका विश्राम पूरा हो गया था। मेग्दलीन ने कहा कि आप इतनी कृपा नहीं करेंगे कि मेरे घर में चलकर विश्राम करें। क्राइस्ट ने कहा, मैंने विश्राम किया और यह तुम्हारा ही घर था, तुम्हारा ही वृक्ष था, अब तो मेरे चलने का समय आ गया है, मैं चलूं। लेकिन फिर कभी थका-मांदा इस राह से गुजरा तो जरूर तुम्हारे मकान में विश्राम करूंगा।
मेग्दलीन को यह बात अपमानजनक मालूम पड़ी। बड़े-बड़े राजकुमार उसके द्वार से खाली हाथ लौट जाते थे, द्वार ही नहीं खुलते थे। एक राह चलते भिखारी को उसने कहा था कि मेरे घर में विश्राम करें, और वह आदमी इनकार करता था। मेग्दलीन के लिए यह बात अपमानजनक थी। उसने कहा कि नहीं, ऐसा नहीं, किंचित नहीं। आपको भीतर चलना ही पड़ेगा कि आप मेरे प्रेम के लिए इतना भी नहीं कर सकेंगे कि मेरे घर में दो क्षण विश्राम करें!

क्राइस्ट ने कहा, तुमने कहा तो मैं तुम्हारे घर में प्रवेश पा ही गया। क्योंकि कहने के अतिरिक्त और घर कहां है। तुमने कहा तो मैं तुम्हारे घर में पहुंच गया। और तुम अगर यह कहती हो कि क्या मैं इतना प्रेम नहीं दिखा सकूंगा! तो मैं तुमसे कहूंगा कि तुमने बहुत लोग देखे होंगे जिनने तुमसे कहा होगा कि हम तुम्हें प्रेम करते हैं, उनमें से कोई भी तुम्हें प्रेम नहीं करता था। जबकि वे प्राण से किसी और ही चीज को प्रेम करते हैं। और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मैं ही सही अर्थों में, थोड़े-से लोगों में से एक हूं, जो तुम्हें प्रेम करता हूं और प्रेम कर सकता हूं। क्योंकि प्रेम वही कर सकता है जिसके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया हो।
हम सब प्रेम नहीं कर सकते हैं, क्योंकि हमारे भीतर प्रेम की कोई धारा ही नहीं है। और जब हम कहते हैं किसी को कि हम प्रेम करते हैं तो असल में हम प्रेम नहीं करते हैं, हम उससे प्रेम मांगते हैं। हम सभी प्रेम मांगते हैं। और जो खुद ही प्रेम मांग रहा है वह प्रेम कैसे दे सकेगा!
भिखमंगे सम्राट कैसे हो सकते हैं? मांगने वाले देने वाले कैसे हो सकते हैं?

हम सभी एक-दूसरे से प्रेम मांगते हैं। हमारे प्राण भिखारी हैं। हम मांगते हैं कि कोई हमें प्रेम दे दे। पत्नी पति से प्रेम मांगती है, पति पत्नी से प्रेम मांगता है। मां बेटे से प्रेम मांगती है, बेटे मां से प्रेम मांगते हैं। मित्र मित्र से प्रेम मांगते हैं। हम सब एक-दूसरे से प्रेम मांगते हैं, बिना यह जाने हुए कि हम जिससे प्रेम मांग रहे हैं, वह भी हमसे प्रेम मांग रहा है। दो भिखारी एक-दूसरे के सामने झोली फैलाये हुए खड़े हैं।
जब तक कोई आदमी प्रेम मांगता है, तब तक वह प्रेम देने में समर्थ नहीं हो सकता है। प्रेम की मांग इस बात की खबर है कि उसके भीतर प्रेम का झरना नहीं है, अन्यथा वह बाहर से प्रेम क्यों मांगता। प्रेम वही दे सकता है जिसका प्रेम की मांग के ऊपर उठना हो गया है, जो देने में समर्थ हो गया है। प्रेम एक दान है, भिक्षा नहीं। प्रेम एक मांग नहीं है, प्रेम एक भेंट है। प्रेम भिखारी नहीं है, प्रेम सम्राट है। प्रेम सिर्फ देना ही जानता है, मांगना जानता ही नहीं। हम प्रेम को जानते हैं? मांगने वाला प्रेम प्रेम नहीं हो सकता है। और स्मरण रहे कि जो प्रेम को मांगता है उसे इस जगत में कभी भी प्रेम नहीं मिल सकेगा। जीवन के कुछ अनिवार्य नियमों में से,

शाश्वत नियमों में से, एक नियम यह है कि जो प्रेम को मांगता है, उसे प्रेम कभी नहीं मिलता है। जो प्रेम बांटता है उसे प्रेम मिलता है। लेकिन उसे प्रेम की कोई मांग नहीं होती। जो प्रेम मांगता है, उसे प्रेम मिलता ही नहीं।
प्रेम तो उसी द्वार पर आता है जिस द्वार पर प्रेम की मांग मिट जाती है। जो मांगना बंद कर देता है, उसके घर पर वर्षा शुरू हो जाती है। और जो मांगता रहता है उसका घर बिना वर्षा के रह जाता है, क्योकि मांगने वाले चित्त की यह पात्रता नहीं कि प्रेम उसकी तरफ बहे। मांगने वाले चित्त की यह ग्राहकता नहीं है, रिसेप्टिविटी नहीं है कि प्रेम उस द्वार पर आये। वह तो देने वाला और बांट देने वाला चित्त ही उस ग्राहकता को, उस पात्रता को उपलब्ध होता है, जिस द्वार पर आकर प्रेम दस्तक देता है और कहता है मैं आ गया हूं, द्वार खोलो।
हमारे द्वारों पर प्रेम ने आकर कभी दस्तक दी है? नहीं दी है। क्योंकि हम अभी प्रेम को देने में ही समर्थ नहीं हो सके हैं। और यह भी स्मरण रहे कि हम जो देते हैं वही हम पर, वापस हम पर लौट आता है। जीवन के दूसरे शाश्वत नियमों में से एक यह है कि हम जो देते हैं वही हम पर वापस लौट आता है।

सारा जगत एक प्रतिध्वनि से ज्यादा नहीं है। हम घृणा देते हैं, घृणा वापस लौट आती है, हम क्रोध देते हैं, क्रोध वापस लौट आता है। हम गालियां देते हैं, गालियां वापस लौट आती हैं। हम कांटे फेंकते हैं, कांटे वापस लौट आते हैं। हमें वही उपलब्ध हो जाता है जो हमने फेंका था, वही अनंतगुना होकर हम पर ही वापस लौट आता है। और अगर हम प्रेम बांटते हैं तो प्रेम भी अनंतगुना होकर हम पर वापस लौट आता है।
हम पर प्रेम अनंतगुना होकर वापस
लौटा! अगर नहीं लौटा तो जान लेना कि प्रेम हमने बांटा नहीं और प्रेम हम बांटते कैसे? प्रेम हमारे पास है ही नहीं और प्रेम हमारे पास होता तो हम प्रेम को द्वार-द्वार मांगते हुए क्यों फिरते? हम जगह-जगह भिखारी क्यों बनते, हम क्यों मांगते कि हमें प्रेम चाहिए? एक फकीर था फरीद। उसके गांव के लोगों ने उससे कहा, "फरीद, अकबर तुझे बहुत आदर देता है। अकबर से प्रार्थना कर कि हमारे गांव में एक स्कूल, एक मदरसा खुलवा दे।" फरीद ने कहा, "मैंने आज तक किसी से कुछ मांगा नहीं। मैं तो फकीर हूं, मैं तो सिर्फ देना ही जानता हूं।" गांव के लोग बड़े हैरान हुए! "हम तो समझते हैं कि फकीर मांगता है, तुम कहते हो फकीर देना ही जानता है? फिर भी हम पर

कृपा करो। हम यह सूक्ष्म और गंभीर बातें नहीं समझ सकते। तुम तो कृपा करो और एक मदरसा खुलवा दो।"
गांव के लोग नहीं माने तो फरीद अकबर से मिलने गया। सुबह ही सुबह जल्दी पहुंच गया, ताकि घर ही मिलना हो जाये। अकबर उस समय अपनी मस्जिद में नमाज पढ़ रहा था। फरीद उसके पीछे जाकर खड़ा हो गया। अकबर की नमाज पूरी हो गयी, प्रार्थना पूरी हो गयी। तो उसने दोनों हाथ ऊपर उठाये और कहा, "हे परमात्मा! मेरे धन को बढ़ा, मेरी संपत्ति को बढ़ा, मेरे राज्य को बढ़ा।" फरीद वापस लौट पड़ा। अकबर उठा, लौटकर देखा, फरीद वापस
लौटता है। भागा, रास्ते पर रोका, और कहा कैसे आये और वापस लौट चले? फरीद ने कहा, "मैंने सोचा था कि तू एक सम्राट है। मैंने पाया कि तू भी एक भिखारी है। हमने सोचा था कि हम गांव के लिए मांग लेंगे एक मदरसा। हमें पता भी नहीं था कि तू भी मांगता है अभी कि धन और बढ़ जाये, संपत्ति और बढ़ जाये। और एक भिखारी से मांगना तो शोभा योग्य नहीं है। हम सोचे कि तू एक सम्राट है और पाया कि तू भी एक भिखारी है, तो हम वापस लौट जाते हैं।" हम सभी भिखारी हैं और हम सभी भिखारियों से मांगे चले जा रहे हैं, वह जो उनके पास नहीं है। और जब हमें नहीं मिलता है तो हम रोते हैं, और चिल्लाते

हैं, और दुखी होते हैं, और पाते हैं कि हमें प्रेम नहीं मिल रहा है।
प्रेम कहीं बाहर से मिलने वाली बात नहीं है। प्रेम तो भीतर के अंतस-जीवन का संगीत है। कोई प्रेम आपको दे नहीं सकता। प्रेम आपमें जन्म ले सकता है, लेकिन कोई बाहर से आपको मिल नहीं सकता है। न कहीं कोई दुकान है, न कहीं कोई बाजार है, न कहीं कोई बेचने वाला है कि जहां से आप प्रेम खरीद लें। किसी भी मूल्य पर प्रेम नहीं खरीदा जा सकता। प्रेम तो अंतर्स्फुरण है। वह तो भीतर कोई सोयी हुई शक्ति का जाग जाना है। और हम सब प्रेम को बाहर खोजते हैं। हम सब प्रेम को प्रेमी में खोजते हैं जो कि बिल्कुल ही झूठी और फिजूल बात है। प्रेम को खोजना है अपने में। और हमारी तो कल्पना में भी नहीं आ सकता है कि स्वयं के भीतर प्रेम कैसे होगा। क्योंकि प्रेम हमें हमेशा प्रेमी का ख्याल दिलाता है, किसी और का ख्याल दिलाता है। लेकिन हमारे भीतर कैसे प्रेम पैदा होगा यह हमें स्मरण में नहीं है, इसलिए हमारे भीतर कोई शक्ति प्रेम की पड़ी ही रह जाती है। क्योंकि हमें ख्याल ही नहीं है हम बाहर मांगते रहते हैं उसे, जो कि हमारे भीतर था। और चूंकि हम बाहर मांगते रहते हैं इसलिए भीतर दृष्टि नहीं जाती, और भीतर जिसका

जन्म हो सकता था उसका जन्म नहीं हो पाता है।
प्रेम प्रत्येक मनुष्य की अनिवार्य संपदा है जो जन्म के साथ ही लेकर हर आदमी पैदा होता है। धन आदमी साथ लेकर पैदा नहीं होता। धन सामाजिक संपदा है, लेकिन प्रेम आदमी साथ लेकर पैदा होता है। वह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है, वह उसकी निजी संपदा है, वह उसके साथ है, वह उसका पाथेय है; जो जन्म के साथ उसे मिला और जीवन-भर उसका साथ दे सकता है। लेकिन बहुत कम सौभाग्यशाली हैं जो भीतर देखते हैं कि प्रेम कहां है और कैसे खोजा जाये और कैसे जन्मे?
तो हम तो जन्म जाते हैं और हमारी संपदा की गठरी बंधी ही रह जाती है, वह खुल ही नहीं पाती है। और हम दूसरों के द्वारों पर भीख मांगते फिरते हैं, हाथ फैलाये फिरते हैं क्योंकि हमें प्रेम चाहिए। सारी दुनिया में एक ही मांग है कि हमें प्रेम चाहिए और सारी दुनिया में एक ही शिकायत है कि हमें प्रेम नहीं मिलता। और जब प्रेम नहीं मिलता है तो हम दोष देते हैं दूसरों को कि लोग बुरे हैं, इसलिए प्रेम नहीं मिलता। पत्नी पति को कहती है कि तुम गड़बड़ हो इसलिए प्रेम मुझे नहीं मिलता है। पति पत्नी को कहता है कि तुममें कुछ भूल है इसलिए मुझे प्रेम नहीं मिलता। हर एक, हर एक

दूसरे को दोषी ठहराता है कि मुझे प्रेम नहीं मिल पाता। और इसका किसी को ख्याल ही नहीं है कि प्रेम कभी किसी को बाहर से मिलता है?
प्रेम आंतरिक संपदा है और प्रेम ही हृदय-वीणा का संगीत है। आदमी की हृदय-वीणा बड़ी गड़बड़ हो गयी है। उससे वह संगीत पैदा ही नहीं होता, जिसके लिए वह बनी है। यह संगीत कैसे पैदा हो सकता है? और कौन-सी बाधा इस संगीत के पैदा होने में खड़ी हो गयी है? और कौन-सी गांठ है जो गठरी को बांधे है और खुलने नहीं देती? कभी उस गांठ पर आपने ख्याल किया? कभी आपने सोचा कि वह गांठ क्या हो सकती है? एक अभिनेता मर गया था। वह एक बहुत कुशल अभिनेता था, कुशल कवि था, नाटककार था। उसकी मृत्यु हो गयी थी। मरघट पर उसे बिदा करने बहुत लोग इकट्ठे हुए थे। जिस फिल्म कंपनी में वह अभिनेता था, उसका डायरेक्टर, उसका मालिक भी आया था। उस मालिक ने उस अभिनेता के शोक में बोलते हुए, दुख में बोलते हुए कुछ बातें कहीं। उस मालिक ने कहा, "इस अभिनेता को अभिनेता बनाने वाला मैं ही हूं। यह मैं ही था जिसने इसे अंधकारपूर्ण गलियों से निकालकर प्रकाशित राजपथों पर पहुंचाया। यह मैं ही था जिसने सबसे पहले इसे पहले नाटक में जगह दी। मैं ही था जिसने इसकी पहली किताब प्रकाशित

करवायी। मैं ही था जिसके कारण यह सारी दुनिया में ख्याति उपलब्ध कर पाया।" वह उतना ही कह पाया था, मैं भी उस मरघट पर मौजूद था, हो सकता है आप में से भी कोई मौजूद रहा हो। इतना ही वह कह पाया था कि वह मुर्दा जो बंधा हुआ पड़ा था, एकदम उठकर बैठ गया। और उसने कहा, एक्सक्यू.ज मी सर, माफ करिये मुझे, हू इज टू बी बरीड हियर--यू आर आई? इधर कब्र में किसको गड़ाया जाने वाला है, आपको या मुझको? आप किसके संबंध में बातें कर रहे हैं?
वह डायरेक्टर कहे चला जा रहा था कि मैं ही हूं जिसने इसे प्रकाश में लाया, मैं ही हूं जिसने इसकी किताब छपवायी, मैं ही हूं जिसने इसको नाटक में पहली जगह दी, मैं ही हूं... !
मुर्दा भी बरदाश्त नहीं कर सका इस "मैं" के शोरगुल को। वह उठ आया और कहा कि माफ करिये, एक बात बता दीजिये कि कब्र में किसको गड़ाया जाना है, मुझको या आपको? आप किसके संबंध में बोल रहे हैं? मुर्दे भी बरदाश्त नहीं कर पाते इस "मैं" के स्वर को और हम जिंदा आदमी इस "मैं" के स्वर को गुंजाये चले जाते हैं! जिंदा आदमी कैसे बरदाश्त कर सकते हैं? और आदमी के भीतर दो ही स्वर होते हैं। जिस आदमी के भीतर "मैं" का स्वर होता है, उसके अंदर प्रेम का स्वर नहीं होता है। और जिसके भीतर प्रेम का स्वर होता है,

उसके भीतर "मैं" का स्वर नहीं होता है। ये दोनों एक साथ नहीं होते। यह असंभावना है।
यह वैसी ही असंभावना है जैसे एक बार अंधकार ने जाकर भगवान को यह प्रार्थना की थी कि सूरज मेरे पीछे पड़ा हुआ है, मुझे बहुत परेशान कर रहा है। सुबह से मेरा पीछा करता है, सांझ तक मुझे थका डालता है। और रात मैं सोकर विश्राम भी नहीं कर पाता कि दूसरे दिन फिर सुबह से मेरे पीछे पड़ जाता है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने कभी कोई कसूर किया हो, कोई भूल-चूक की हो, कभी इसे नाराज किया हो। फिर क्यों मेरे पीछे यह चल रहा है, यह अनंत उपद्रव मेरे पीछे क्यों पड़ा हुआ है? मैंने क्या बिगाड़ा है?
फिर भगवान ने सूरज को बुलाया और कहा कि तुम बेचारे अंधकार के पीछे क्यों पड़े हो? वह वैसे ही छिपता फिरता है, जगह-जगह शरण लेता फिरता है और तुम उसका पीछा क्यों करते हो चौबीस घंटे, तुम्हें जरूरत!
सूरज ने कहा, कौन अंधकार? मेरा अब तक उससे मिलना भी नहीं हुआ। मैं उसे पहचानता भी नहीं हूं। कौन अंधकार? कैसा अंधकार? मैंने उसे अब तक देखा नहीं, मेरी कोई मुलाकात नहीं, लेकिन अगर भूल-चूक हो गयी हो अनजाने तो आप उसे मेरे सामने बुला दें, मैं क्षमा मांग लूं।

मैं क्षमा मांगने को बिल्कुल तैयार हूं, और पहचान लूं तो फिर दुबारा उसका पीछा भी न करूं।
सुनते हैं, इस बात को हुए भी हजारों- अरबों साल हो गये। वह भगवान की फाइल में बात वहीं पड़ी है। अभी तक भगवान अंधकार को सूरज के सामने ला नहीं सके और आगे भी न ला सकेंगे, यह मैं कहे देता हूं। वह कितने ही सर्वशक्तिशाली हों मगर अंधकार को सूरज के सामने लाने की शक्ति भी सर्वशक्तिशाली में नहीं है। क्योंकि अंधकार और सूरज एक साथ खड़े नहीं हो सकते।
नहीं खड़े हो सकते तो कुछ कारण हैं। कारण यह है कि अंधकार की अपनी कोई सत्ता नहीं है, कि सूरज के सामने खड़ा हो जाए। अंधकार तो केवल सूरज की अनुपस्थिति है, एब्सेंस है। तो एक ही चीज की एब्सेंस और प्र.ेजेंस एक ही साथ कैसे हो सकती है! एक ही चीज मौजूद और गैर-मौजूद, एक ही साथ कैसे हो सकती है? अंधकार तो केवल अनुपस्थिति है सूरज की, गैर-मौजूदगी है। अंधकार अपने आप में कुछ भी नहीं है। वह केवल सूरज का न होना है, वह केवल प्रकाश का न होना है। तो प्रकाश के सामने प्रकाश का न होना कैसे खड़ा हो सकता है? दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं? इसलिए भगवान समर्थ नहीं हो सकेंगे।

और भी एक चीज, इसी भांति अहंकार और प्रेम भी एक साथ नहीं हो सकते। अहंकार भी अंधकार की भांति है। वह प्रेम की अनुपस्थिति है, वह प्रेम की एब्सेंस है। वह प्रेम की मौजूदगी नहीं है। हमारे भीतर प्रेम अनुपस्थित है इसलिए हमारे भीतर "मैं" का स्वर, "मैं" का स्वर बजता चला जाता है, बजता चला जाता है। और हम इस "मैं" के स्वर को उठाकर कहते हैं, कि "मैं" प्रेम करना चाहता हूं, मैं प्रेम देना चाहता हूं, मैं प्रेम पाना चाहता हूं।" आप पागल हो गये हैं! "मैं" का और प्रेम का कोई संबंध न कभी हुआ है और न हो सकता है। और यही "मैं" प्रेम की आवाज किये चला जाता है--"मैं" प्रार्थना करना चाहता हूं, "मैं" परमात्मा को पाना चाहता हूं, "मैं" मोक्ष जाना चाहता हूं। ये वैसी ही बातें हैं जैसे अंधकार कहे कि मैं सूरज से गले मिलना चाहता हूं, मुझे सूरज का आलिंगन करना है। मुझे सूरज से प्रेम करना है। मुझे तो सूरज के घर में मेहमान बनना है। अंधकार जैसी ही ये बातें कहे वैसी ही "मैं" की ये बातें हैं, कि मुझे प्रेम करना है, मुझे प्रार्थना करनी है, मुझे परमात्मा से मिलना है।
"मैं" के लिए यह द्वार नहीं है, क्योंकि "मैं" प्रेम की ही अनुपस्थिति है। "मैं" प्रेम का ही अभाव है और जितना

हमारा यह "मैं" का स्वर हम मजबूत करते चले जायेंगे, उतना ही हमारे भीतर प्रेम की संभावना क्षीण होती चली जायेगी। अहंकार जितना होगा, उतना ही प्रेम नहीं होगा; अहंकार पूरा हो जायेगा, प्रेम की पूरी मृत्यु हो जायेगी।
हमारे भीतर कोई प्रेम नहीं हो सकता
है, क्योंकि हम खोजेंगे तो हम पायेंगे कि हमारे भीतर "मैं" का स्वर चौबीस घंटे बज रहा है। हम श्वास लेते हैं तो "मैं" के साथ, हम पानी पीते हैं तो "मैं" के साथ। हम रास्ते पर चलते हैं तो "मैं" के साथ, हम मंदिर में प्रवेश करते हैं तो "मैं" के साथ। मैं के अतिरिक्त हमारे जीवन में और क्या है?
हमारे वस्त्र, हमारे "मैं" के वस्त्र हैं। हमारे पद, हमारे "मैं" के पद हैं। हमारा ज्ञान, हमारे "मैं" का ज्ञान है। हमारी तपश्चर्या, हमारी सेवा, हमारे "मैं" की सेवा है। हमारा सब-कुछ; हमारा संन्यास भी हमारे "मैं" का संन्यास है। "मैं" संन्यासी हूं, ऐसा स्वर भीतर तीव्रता से उठता है। "मैं" कोई गृहस्थ नहीं हूं, "मैं" कोई साधारण-जन नहीं हूं; "मैं" संन्यासी हूं, "मैं" सेवक हूं, "मैं" ज्ञानी हूं, "मैं" धनी हूं, "मैं" यह हूं, "मैं" वह हूं।
लेकिन यह जो "मैं" के आसपास खड़ा किया हुआ भवन है, यह प्रेम से अपरिचित रह

जायेगा। और तब हृदय की वीणा पर वह संगीत पैदा नहीं हो सकेगा जो प्राणों को प्राणों के पास ले जाये, जो प्राण के केंद्र में ले जाये, जो जीवन के मध्य में ले जाये, जो जीवन के सत्य से परिचित करा दे, वह द्वार ही नहीं खुलेगा, वह द्वार ही बंद रह जायेगा।
यह बात केंद्रीय रूप से समझ लेने की
है कि आपका "मैं" कितना वजनी है, कितना गहरा है! और कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप उसको और वजन दिये जाते हैं? और गहरा किये जाते हैं, रोज-रोज उसको मजबूत किये जाते हैं? अगर आप उसको मजबूत किये चले जा रहे हैं अपने ही हाथों से, तो फिर आप यह आशा छोड़ दें कि आपके भीतर प्रेम-- प्रेम का आविर्भाव हो सकता है! वह प्रेम की बंद गांठ खुल सकती है, वह प्रेम की संपदा उपलब्ध हो सकती है! --फिर यह ख्याल ही छोड़ दें। फिर इसमें कोई उपाय नहीं। इसलिए मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप प्रेम करने को लग जायें, क्योंकि अहंकार यह भी कह सकता है कि "मैं" प्रेमी हूं और "मैं" प्रेम करता हूं। और अहंकार के नीचे जो प्रेम है वह एकदम झूठा है, इसलिए मैंने कहा है कि हमारा सारा प्रेम झूठा है क्योंकि वह अहंकार के नीचे है और अहंकार की छाया है। और स्मरण रहे, कि अहंकार के अंतर्गत जो प्रेम है वह घृणा से भी खतरनाक है,

क्योंकि घृणा स्पष्ट और सीधी और साफ है। और प्रेम शकल बदल कर आया हुआ है, उसे पहचानना मुश्किल हो जायेगा।
अहंकार के नीचे जो प्रेम से आपको अपनी छाती से लगाता है, आप थोड़ी देर में ही पायेंगे कि वे हाथ नहीं थे, वे लोहे की जंजीरें थीं जिन्होंने आपके प्राणों को जकड़ लिया था। अहंकार के नीचे जो प्रेम, आपको अच्छी-अच्छी बातें कहता है और मधुर वचन कहता है और गीत गाता है, थोड़ी देर में ही आपको पता चलेगा कि वे गीत केवल प्रारंभिक प्रलोभन थे, उन गीतों के भीतर बहुत जहर था। और जो प्रेम फूलों की शकल लेकर आता है अहंकार की छाया में, फूल को पकड़ते ही आपको पता चलेगा कि भीतर बड़े कांटे थे, जिन्होंने आपको छेद दिया है।
मछलियां पकड़ने लोग जाते हैं और कांटों के ऊपर आटा लगाकर मछलियां पकड़ते हैं। और अहंकार मालिक बनना चाहता है दूसरे लोगों का, पजेस करना चाहता है उनको और तब वह प्रेम का आटा लगाकर गहरे कांटे से लोगों को छेद लेता है। प्रेम के धोखे में जितने लोग दुख और पीड़ा पाते हैं उतने लोग किसी नर्क में भी पीड़ा और दुख नहीं पाते। प्रेम के इस डिसइल्यू.जन में, सारी पृथ्वी और सारी मनुष्य की जाति नर्क भोगती है। लेकिन फिर भी यह ख्याल नहीं आता कि अहंकार के

नीचे प्रेम झूठा है, इसलिए यह सारा नर्क पैदा होता है।
अहंकार जिस प्रेम में जुड़ा है वह प्रेम जेलॅसी का, ईर्ष्या का एक रूप है। और इसलिए प्रेमी जितने जेलॅस होते हैं, जितने ईर्ष्यालु होते हैं उतना कोई भी ईर्ष्यालु नहीं होता। अहंकार से जो प्रेम जुड़ा है वह घृणा का, दूसरे को पजेस करने का, दूसरे के मालिक बन जाने की तरकीब और साजिश है। वह एक कान्सप्रेसी है; इसलिए प्रेम करने की बातें करने वाले लोग जितने लोगों की गर्दन कस लेते हैं, उतना और कोई भी नहीं कसता। यह सारी स्थिति अहंकार के नीचे प्रेम के कारण पैदा होती है और अहंकार के साथ प्रेम का कभी भी कोई संबंध नहीं हो सकता।
जलालुद्दीन एक गीत गाता था। और बड़ा प्यारा गीत गाता था। और वह गांव-गांव जाता और उस गीत को जरूर दोहराता और जब भी लोग कहते कि परमात्मा के संबंध में हमें कुछ बताओ तो वह उसी गीत को गाने लगता। वह गीत बड़ा अदभुत था। उस गीत में एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर गया और उसने जाकर द्वार की सांकल खटखटायी। और भीतर प्रेयसी ने पूछा कि, "कौन हो तुम?"
उस प्रेमी ने कहा--जैसे सभी प्रेमी कहते हैं--कि मैं हूं तेरा प्रेमी! भीतर

फिर सन्नाटा हो गया। भीतर से फिर कोई उत्तर नहीं आया। भीतर से फिर कोई आवाज न आयी। वह प्रेमी जोर से दरवाजा खटखटाने लगा, लेकिन भीतर जैसे कोई था ही नहीं। वह जोर से चिल्लाने लगा कि भीतर सन्नाटा क्यों हो गया? उत्तर दो, मैं तुम्हारा प्रेमी आया हूं। लेकिन जितनी जोर से वह कहने लगा, मैं तुम्हारा प्रेमी आया हूं, वह घर उतना ही मरघट जैसे सन्नाटे से भर गया। वहां से कोई उत्तर आना बंद हो गया।
तब उसने सिर पीटा द्वार पर और उसने कहा, एक बार तो उत्तर दो। भीतर से एक ही उत्तर आया कि इस घर में दो के लिए जगह नहीं हो सकती। और तुम कहते हो, मैं आया हूं तुम्हारा प्रेमी। और एक मैं यहां पहले से ही मौजूद हूं। यहां दो के लिए जगह नहीं हो सकती। प्रेम का द्वार केवल उनके लिए ही खुलता है जो "मैं" को छोड़ आये होते हैं। अभी तुम जाओ, आना फिर कभी।
वह प्रेमी वापस लौट गया और वर्षों उसने तपश्चर्या की और वर्षों उसने साधना की और वर्षों उसने प्रार्थना की। और कितने ही चांद बड़े हुए और छोटे हुए, और कितने ही सूरज निकले और ढले, और कितने वर्ष बीते और फिर वह वापस लौट आया उस द्वार पर, और उसने आकर द्वार पर फिर दस्तक दी। फिर वही प्रश्न! फिर कोई किसी

से पूछने लगा, "कौन हो तुम?" इस बार उस प्रेमी ने कहा, "तू ही है, मैं नहीं।" जलालुद्दीन कहते थे कि द्वार खुल गये, लेकिन मेरा मन अभी द्वार खुलवाने को राजी नहीं होता। जलालुद्दीन को मरे बहुत वर्ष हो गये, इसलिए अब उनको कहने का कोई रास्ता नहीं है कि द्वार अभी नहीं खुल सकते थे, द्वार लगे ही नहीं जो खुलवा दिये! क्योंकि जो कहता है कि "तू ही है" उसे अपने "मैं" के होने का पूरा पता है। जो कहता है कि "तू" ही है, उसे अपने "मैं" के होने का पूरा पता है-- क्योंकि जिसे "मैं" का पता नहीं रह जाता है उसे "तू" का भी पता नहीं रह जाता। तो गलत है यह बात कि प्रेम में एक ही समाता है। गलत है यह बात कि प्रेम में दो तो समाते ही नहीं; लेकिन गलत है यह बात कि प्रेम में एक ही समाता है। प्रेम में न तो दो रह जाते हैं और न एक रह जाता है। क्योंकि जहां एक है, जान लेना दूसरा भी मौजूद है। क्योंकि एक का बोध दूसरे को ही हो सकता है। जहां "तू" मौजूद है वहां "मैं" भी मौजूद है। तो मैं तो अभी वापस लौटा देता हूं।
उस प्रेमी ने कहा, "तू ही है, मैं नहीं हूं।" लेकिन जो यह कहता है कि मैं नहीं हूं, तू ही है; वह है, वह पूरी तरह से है। वह केवल तरकीब सीखकर आ गया है। पहली दफा उसने सुन लिया था, उसने कहा कि "मैं हूं"

तो द्वार बंद रह गये। इतने वर्षों में वह सोच-विचारकर आ गया कि मुझे क्या कहना चाहिए। मुझे कहना चाहिए कि भी "मैं नहीं हूं, तू ही है।" लेकिन कौन कहेगा, किसलिए कहेगा? और जिसको "तू" का पता है, उसे "मैं" का भी पता है।
यह ख्याल में रहे कि "तू" जो है, वहां "मैं" की ही छाया है। जिसका "मैं" मिट जाता है, उसके लिए "तू" भी शेष नहीं रह जाता है।
तो मैं तो उसे वापस लौटा देता हूं। फिर उस प्रेयसी ने कह दिया, कि यहां कोई जगह नहीं दो के लिए। और वह चिल्लाने लगा और कहने लगा कि अब दो कहां? अब तो मैं हूं ही नहीं, तू ही है!
लेकिन वह प्रेयसी कहने लगी, तुम वापस लौट जाओ, तुम तरकीब सीखकर आ गये हो, लेकिन अभी दो मौजूद हैं। अगर दो मौजूद न होते तो द्वार खुलवाने की तुम कोशिश भी नहीं करते, क्योंकि कौन द्वार खुलवाता और किस के द्वार खुलवाता? तुम वापस लौट जाओ। प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते। और वह प्रेमी वापस लौट गया। और फिर वर्ष आये और गये लेकिन फिर वह लौटकर नहीं आया, फिर वह कभी लौटा ही नहीं। फिर तो उसकी प्रेयसी ही उसे खोजती हुई उसके पास पहुंच गयी।
तो, मैं तो यही कहता हूं कि जिस दिन हमारे "मैं" की छाया विलीन हो जाती है,

और जिस दिन न तो "मैं" बचता है और न तो "तू" बचता है, उस दिन आपको परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता, परमात्मा आपको खोजता चला आता है।
आज तक कोई मनुष्य परमात्मा को नहीं खोज सका, क्योंकि मनुष्य की यह सामर्थ्य कहां कि परमात्मा को खोज ले? लेकिन जब कोई मनुष्य मिटने को राजी हो गया है, न हो जाने को राजी हो गया है, शून्य हो जाने को राजी हो गया है, तो परमात्मा उसे जरूर खोज लेता है। परमात्मा ही खोजता है मनुष्य को, मनुष्य कभी परमात्मा को नहीं खोजता है। क्योंकि खोजने में भी, सीकिंग में भी अहंकार मौजूद रहता है कि "मैं" खोज रहा हूं, मुझे ईश्वर को पाना है।
मैंने धन पा लिया, मैंने पार्लियामेंट में जगह पा ली, मैंने बड़ा मकान बना लिया, अब आखिरी एक मंजिल और रह गयी कि मुझे ईश्वर को भी पाना है। मैं कैसा ऐसा हो सकता हूं कि बिना ईश्वर को पाये और छोड़ दूं! यह मेरी आखिरी विजय का मामला है। यह विजय करनी ही है। मुझे ईश्वर को भी पाना है। यह अहंकार की ही घोषणा और आग्रह और खोज है।
इसलिए धार्मिक आदमी वह नहीं है जो ईश्वर को खोजने निकल पड़ता है। धार्मिक आदमी वह है जो अपने "मैं" को खोजने निकलता है और जितना ही खोजने जाता है,

पाता है "मैं" तो है नहीं। और जिस दिन "मैं" नहीं रह जाता है, उस दिन वह गांठ खुल जाती है जो प्रेम को सम्हाले हुए है।
तो अंतिम बात है, अपने "मैं" को खोजने चले जाइये, आत्मा को खोजने नहीं; क्योंकि आत्मा का आपको कोई पता नहीं है। परमात्मा को खोजने नहीं, क्योंकि परमात्मा की आपको दूर की भी खबर नहीं। जिसकी खबर ही नहीं है उसे खोजियेगा कैसे? जिसका कोई पता ही नहीं मालूम उसको ढूंढ़ियेगा कहां? जिसका कोई ओर-छोर नहीं, कोई कोर-ठिकाना नहीं, जिसका कोई पता-ठिकाना नहीं, जिसके निवास की कोई खबर नहीं, उसे खोजियेगा कहां? पागल हो जाइयेगा, कहीं भी खोज नहीं पाइयेगा। लेकिन हां, एक बात का हमें पता है। अपने इस "मैं" का पता है। तो सबसे पहले इस "मैं" को ही खोज लेना चाहिये कि क्या है, और कहां है, और कौन है? और जैसे ही उसे खोजने जाइयेगा वैसे ही आप हैरान हो जायेंगे कि यह "मैं" तो नहीं है। यह तो बिल्कुल ही झूठी खबर थी, यह तो मेरी ही कल्पना थी कि मैं सोचता था कि "मैं" भी हूं, यह तो मेरा ही पाला-पोसा भ्रम था। छोटे बच्चे पैदा होते हैं, काम चलाने के लिए हम उनका नाम रख लेते हैं। किसी को कहते हैं राम, किसी को कहते हैं कृष्ण, किसी को कुछ और कहते हैं। किसी

का कोई नाम नहीं होता, काम चलाऊ नाम रख लेते हैं, लेकिन बाद में निरंतर सुनते- सुनते आदमी को यह भ्रम हो जाता है कि यह मेरा नाम है--मैं राम हूं, मैं कृष्ण हूं। और अगर राम को गाली दे दें तो लड़ने को खड़ा हो जायेगा कि आपने मुझे गाली दे दी। और राम कहां से ले आया वह नाम!
कोई जन्म के साथ कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता। हर आदमी अनाम पैदा होता है, लेकिन सोशल यूटिलिटी है नाम की। एक सामाजिक उपादेयता है, उपयोगिता है। बिना नाम के चिट लगानी और लेबल लगानी मुश्किल है, इसलिए नाम रख लेते हैं। तो दूसरों को पुकारने के लिए नाम रख लेते हैं। वह एक सामाजिक उपयोगिता है और खुद को अगर बार-बार नाम लेकर पुकारें तो बड़ा भ्रम पैदा होगा कि हम खुद को पुकार रहे हैं कि किसी और को, इसलिए खुद को पुकारने के लिए "मैं", "मैं" खुद को पुकारने के लिए एक नाम, एक संज्ञा है। और नाम दूसरों को पुकारने के लिए एक संज्ञा है। दोनों ही संज्ञाएं कल्पित, सामाजिक उपयोगिताएं हैं, सोशल युटिलिटी है। और इन्हीं दो संज्ञाओं के आसपास हम सारे जीवन के भवन को खड़ा कर लेते हैं। जो केवल दो कोरे शब्द हैं और कुछ भी नहीं है। जिनके पीछे कोई सत्य नहीं, जिनके पीछे कोई सब्सटेंस नहीं;

जिनके पीछे कोई वस्तु नहीं; सिर्फ नाम, सिर्फ संज्ञाएं हैं।
एक दफा ऐसी भूल हो गयी। एक छोटी-सी लड़की थी एलाइस। और एलाइस भटकती-भटकती परियों के देश में पहुंच गयी। जब वह परियों की रानी के पास पहुंची तो रानी ने उस एलाइस से पूछा, एक छोटा सा प्रश्न पूछा, डिड यू मीट समबडी, आन दि वे टुवर्ड्स मी? तुम्हें कोई मिला रास्ते में मेरी तरफ आते हुए? कोई तुम्हें मिला रास्ते में मेरी तरफ आता हुआ? एलाइस ने कहा, "नोबडी।" एलाइस ने कहा, "कोई भी नहीं।"
लेकिन रानी समझी कि "नोबडी" नाम का
कोई आदमी इसको मिला। और भ्रम मजबूत हो गया, क्योंकि फिर रानी का डाकिया, चिट्ठी-पत्री लाने वाला मेसेंजर, वह आया और रानी ने उससे भी पूछा, "डिड यू मीट समबडी, यू विल सी हिम।" उसने भी कहा, "नोबडी।" उसने भी कहा, कोई नहीं मिला। कोई नहीं।
रानी ने कहा कि बड़ी अजीब बात है। क्योंकि रानी समझी कि "नोबडी" नाम का कोई आदमी एलाइस को भी मिला, इसको भी मिला। तो उसने अपने मेसेंजर को कहा कि "इट सीम्स नोबडी वाक्स स्लोअर देन यू।" उसने कहा कि इसका मतलब है कि वह जो "नोबडी" नाम का आदमी है, वह जो "कोई

नहीं" नाम का आदमी है, वह बहुत धीमा चलता है।
लेकिन उस वाक्य के दो अर्थ हो गये। उसका एक अर्थ हुआ कि इससे पता चलता है कि तुमसे धीमा कोई भी नहीं चलता। वह मेसेंजर डरा, क्योंकि मेसेंजर की यही खूबी होनी चाहिए कि वह तेज चलता है। तो उसने कहा कि नहीं, नहीं! "नोबडी वाक्स फास्टर देन मी।" मुझसे तेज कोई भी नहीं चलता है।
लेकिन रानी ने कहा, "बड़ी मुश्किल हो गयी, तुम कहते हो कि "नोबडी" तुमसे तेज चलता है। तो रानी ने कहा, "दिस नोबडी वाक्स फास्टर देन यू। देन ही मस्ट हेव रीच्ड रीसेंटली।" तो उसको अब तक आ जाना चाहिए था, अगर वह तुमसे तेज चलता है। तो वह बेचारा मेसेंजर... अब उसको ख्याल आया कि कुछ गलती हो रही है। उसने कहा, "नोबडी इ.ज नोबडी", "कोई नहीं, कोई नहीं" है। लेकिन रानी बोली, "यह भी कोई समझने की बात है। मैं जानती हूं कि नोबडी इ.ज नोबडी। लेकिन हू इ.ज दैट, टैल मी। उसको अब तक आ जाना चाहिए था। वह है कहां?" आदमी के साथ ऐसी ही भाषा की भूल हो जाती है। सब नाम "नोबडी" हैं। किसी नाम का इससे ज्यादा मतलब भी नहीं है। सब "मैं" का ख्याल नोबडी है, इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है। लेकिन भाषा की भूल से

ऐसा ख्याल पैदा होता है कि, "मैं कुछ हूं। मेरा नाम कुछ है।"
आदमी मर जाता है, पत्थरों पर लिख जाता है नाम कि शायद पत्थर बच जायेंगे पीछे, लेकिन पता नहीं हमें कि जितनी रेत बन गयी है समुद्रों के किनारे, वह सभी कभी पत्थर थे। सब पत्थर रेत साबित होते हैं। रेत पर लिख दो नाम, या पत्थर पर लिख दो नाम, एक ही बात है। दुनिया की इस लंबी कथा में रेत और पत्थर में कोई फर्क नहीं। समुद्र के किनारे बच्चे लिख आते हैं रेत पर अपना नाम। सोचते होंगे कि कल लोग निकलेंगे और देखेंगे। लेकिन समुद्र की लहरें आती हैं, रेत को पोत जाती हैं। बूढ़े हंसते हैं, "अरे पागल हो! रेत पर लिखे नाम का कोई मतलब नहीं।" लेकिन बूढ़े पत्थरों पर लिखते हैं और उनको पता नहीं कि सब रेत पत्थर से बनती है। बूढ़े और बच्चों में कोई फर्क नहीं। बेवकूफी में हम सब बराबर एक ही उम्र के हैं।
एक सम्राट चक्रवर्ती हो गया। चक्रवर्ती का मतलब कि वह सारी पृथ्वी का मालिक हो गया। ऐसा मुश्किल से ही कभी होता है। चक्रवर्तियों को एक--एक विशेषता उपलब्ध होती थी जो कि किसी को उपलब्ध नहीं होती है। कथा है पुरानी। चक्रवर्तियों को एक सौभाग्य मिलता था जो कि किसी को नहीं मिलता था। और वह यह

था कि सुमेरु पर्वत पर, स्वर्ग में जो पर्वत है, उस पर्वत पर उनको हस्ताक्षर करने का मौका मिलता था। यह मौका सबको नहीं मिलता था। कभी कोई चक्रवर्ती होता है अनंत काल में, जो सारी पृथ्वी को जीत लेता है तब उसे सुमेरु पर्वत पर हस्ताक्षर करने का मौका मिलता है। वह जो सुमेरु पर्वत है, वह सबसे अडिग चट्टान है सारे जगत में।
एक व्यक्ति चक्रवर्ती हो गया, वह बहुत खुश हुआ। यह सौभाग्य उसको मिला कि अब वह सुमेरु पर्वत पर जाकर हस्ताक्षर करेगा। वह बड़े ठाट-बाट से, बड़े फौज-फांटे लेकर स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया। द्वारपाल ने उसको कहा कि, "आप आ गये? लेकिन यह भीड़-भाड़ भीतर नहीं जा सकेगी। आपको अकेला ही जाना पड़ेगा। और साथ में आप कुछ हथौड़ी वगैरह नाम खोदने के लिए कोई सामान ले आये हैं?" उसने कहा, "मैं सामान ले आया हूं।"
तो उसने कहा कि, "पहले तो आपको यह करना पड़ेगा, सुमेरु पर्वत अनंत पर्वत है, लेकिन इतने चक्रवर्ती हो गये कि अब उस पर दस्तखत करने को जगह ही नहीं बची। तो आपको पहले तो किसी का नाम मिटाना पड़ेगा फिर दस्तखत करने पड़ेंगे क्योंकि जगह ही नहीं बची है, सारा पर्वत भर गया है।" अंदर गया। पर्वत था अनंत। कई हिमालय समा जायें उसकी उप-चोटियों में, और उस

पर इंच भर जगह न बची थी। उसने तो सोचा था अनंत काल में एकाध चक्रवर्ती होता है, लेकिन उसे पता ही नहीं था कि कितना काल अनंत हो चुका है कि अनंतकाल में भी एक चक्रवर्ती हो तो भी पर्वत भर गया है; उधर कोई जगह नहीं है। वह बड़ा उदास और हैरान हो गया। पहरेदार कहने लगा, आप उदास न हों। मेरे पिता भी यही काम करते थे, उनके पिता भी यही काम करते थे, उनके पिता भी यही काम करते थे। हम हमेशा पीढ़ी दर पीढ़ी यही सुनते आये हैं कि जब भी दस्तखत करने पड़ते हैं, जगह मिटाकर ही करने पड़ते हैं। कभी जगह खाली नहीं मिलती।
चक्रवर्ती वापस लौटने लगा। उसने कहा, "जब नाम मिटाकर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं तो पागलपन है। क्योंकि मैं करके गया और कल कोई दूसरा आकर मिटाकर कर देगा और जहां पहाड़ इतना बड़ा है और इतने नाम हैं, पढ़ता कौन होगा? और मतलब क्या रहा? मुझे क्षमा कर दो, मैं भूल में पड़ गया हूं। बात व्यर्थ हो गयी है।"
लेकिन इतने समझदार लोग कम होते हैं। पत्थर पर नाम लिखवाते हैं, मंदिर पर नाम लिखवाते हैं, स्मारक बनवाते हैं, नाम लिखवाते हैं और भूल ही जाते हैं कि बिना नाम के पैदा हुए थे। नाम कोई अपना था नहीं। तो पत्थर खराब किया अलग, मेहनत

करवायी सो अलग और बिदा होते हैं तब अनाम बिदा होते हैं। अपना कोई नाम नहीं था। "नाम" है बाहर के जगत से दीखने वाला भ्रम और "मैं" है भीतर की तरफ से दीखने वाला भ्रम। "मैं" और "नाम" एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। "नाम" दिखता है बाहर की तरफ से, "मैं" दिखता है भीतर की तरफ से। और जब तक यह नाम और मैं का भ्रम शेष रहता है तब तक वह गांठ नहीं खुलती है जिससे प्रेम उत्पन्न होता है।
तो अंतिम बात मुझे यह कहनी है कि थोड़ा खोजें, थोड़ा सुमेरु पर्वत पर जायें और देखें कि कितने हस्ताक्षर हो गये हैं। आपको भी करने हैं उनमें मिटाकर? थोड़ा पहाड़ों के किनारे जायें और उनको रेत बनते देखें। थोड़ा समुद्रों के किनारे बच्चों को दस्तखत करते देखें। चारों तरफ अपने को देखें कि हम क्या कर रहे हैं। हम कहीं रेत पर हस्ताक्षर करने में जीवन व्यय तो नहीं कर रहे हैं? और अगर ऐसा लगे तो थोड़ी खोजबीन करें, इस "मैं" के भीतर घुसें और खोजें और खोजें। एक दिन आप पायेंगे कि "मैं" नोबडी है। वहां कोई भी नहीं है। वहां एक गहरा सन्नाटा और शांति है। वहां कोई भी "मैं" नहीं है। और जिस दिन यह पता चल जाता है, कि भीतर कोई "मै" नहीं है, उसी दिन सबका पता चल जाता है; जो है, जो वस्तुतः है--जो

अस्तित्व है, जो आत्मा है, जो परमात्मा है।
इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम द्वार है परमात्मा का, और अहंकार द्वार है अज्ञान का। अहंकार द्वार है अंधकार का, और प्रेम द्वार है प्रकाश का। यह अंतिम बात बिदा होते आपसे कह देनी थी। तो प्रेम पर इस दिशा से थोड़ी खोज करना, लेकिन वह खोज अहंकार की खोज से शुरू होगी और प्रेम की उपलब्धि पर पूरी होगी। तो इस तरफ से थोड़ा खोजना कि यह अहंकार की छाया सच में है, है यह कहीं, है कहीं अहंकार? कहीं हूं "मैं"? जो आदमी इस खोज में निकलता है, वह "मैं" को तो नहीं पाता है, लेकिन परमात्मा को पा लेता है। "मैं" की खूंटी से जो बंधा है, उनके जगत में, उनके सागर में, प्रेम के सागर में उनकी कोई यात्रा नहीं। यह अंतिम बात आपसे कहनी है; वैसे यही प्रथम भी है, यही अंतिम भी है।
"मैं" ही प्रथम है मनुष्य के जीवन का और "मैं" ही अंतिम है। "मैं" में ही बंधा हुआ आदमी दुख पाता है। और "मैं" से मुक्त होकर आनंद को उपलब्ध हो जाता है। "मैं" के अतिरिक्त और कोई कहानी नहीं और कोई कथा नहीं। "मैं" के अतिरिक्त और कोई सपना नहीं, और "मैं" के अतिरिक्त और कोई असत्य नहीं।

तो इस "मैं" को खोज लें, और प्रेम के द्वार खुल जायेंगे। "मैं" की चट्टान टूट जाये और पीछे से प्रेम के झरने बहने शुरू हो जायेंगे। हृदय तब प्रेम के संगीत से भरता है और जहां हृदय प्रेम के संगीत से भरता है, वहां फिर एक और नयी यात्रा शुरू होती है जिसे शब्दों में कहना कठिन है। वह फिर जीवन के केंद्र पर ले जाती है और पहुंचा देती है।
यह थोड़ी-सी बातें अंतिम जाते समय आपसे मुझे कहनी थीं, वह मैंने कहीं।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। दस मिनट के लिए हम रात्रि का ध्यान करेंगे। और फिर हम बिदा हो जायेंगे। और मैं इस आशा में और परमात्मा की इस प्रार्थना में आपको बिदा दूंगा, परमात्मा सबको यह सौभाग्य दे कि वे प्रेम को उपलब्ध हो सकें। परमात्मा सबको यह सौभाग्य दे कि वह "मैं" की बीमारी से छूट सकें। परमात्मा सबको यह सौभाग्य दे कि जो उसके पास ही है, वह उसे मिल जाए।
एक भिखारी मर गया था एक बहुत बड़े नगर में। परमात्मा ने कहा, आधुनिक भिखारी जैसे न मर जाना। और वह भिखारी चालीस वर्षों से सिर्फ एक ही जगह बैठकर भीख मांगते हुए मर गया था। भीख मांगते- मांगते सोचा था, कि भीख मांगते-मांगते

सम्राट हो जाऊंगा। लेकिन भीख मांगते कभी कोई सम्राट होता है? तो भीख तो आदमी जितनी मांगता है उतना ही बड़ा भिखारी होता है।
तो जिस दिन उसने शुरू किया था, छोटा भिखारी था, जिस दिन मरा तो बड़ा भिखारी था। लेकिन सम्राट नहीं हुआ था, फिर मर गया। तो मरनेवाले के साथ जो पास-पड़ोस के लोग व्यवहार करते हैं, वही उसके साथ भी किया। उसकी लाश को फिंकवा दिया, जलवा दिया। जिस जमीन पर वह बैठा था, वहां चिथड़े उसके पड़े थे, गंदगी पड़ी थी, उसमें आग लगवा दी। और फिर पड़ोस के लोगों को ख्याल आया, कि यह भिखारी चालीस वर्ष तक इसी जमीन को गंदा करता रहा, तो थोड़ी-सी जमीन भी खुदवाकर फेंक दें। सो उन्होंने थोड़ी-सी जमीन भी खुदवाकर फेंक दी।
और देखते ही वे हैरान रह गये! काश, भिखारी जिंदा होता तो वह भी पागल हो उठता, जमीन खोदते ही पाया कि वहां तो बहुत बड़ा खजाना गड़ा हुआ है, जिस पर बैठा हुआ भिखारी भीख मांगता था। लेकिन उस भिखारी को पता भी नहीं था, कि मैं इस जमीन पर बैठकर भीख मांगता हूं; अगर वहां खोद लूं तो सम्राट हो जाऊंगा। भीख मांगने की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। लेकिन उस बेचारे को क्या पता, उसकी आंखें बाहर लगी थीं, हाथ बाहर फैले थे, भीख मांगते-मांगते मर गया था। वे सारे

पड़ोस के लोग चकित खड़े रह गये, कि कैसा यह भिखारी था! इस पागल को यह भी पता न चला कि मैं जिस जमीन पर बैठा हूं वहां खजाने हैं! न कोई सामान लेकर गया।
लेकिन उन पड़ोस के लोगों को आश्चर्य से भरे हुए देखा तो मैंने उनसे कहा, कि पागलो! तुम भिखारी की फिक्र मत करो। छोड़ दो भिखारी की फिक्र। कभी तुम भी अपनी- अपनी जमीन खोदकर देख लेना, कहीं ऐसा न हो कि तुम भी मर जाओ और दूसरे लोग तुम पर हंसें। वे मर जाते हैं, उन पर दूसरे लोग हंसते हैं कि बड़ा पागल था यह आदमी, कुछ भी न पा सका। और उन्हें पता नहीं कि उनके मरने की दूसरे लोग रास्ता देख रहे हैं ताकि वे भी हंसेंगे कि बड़ा पागल था यह आदमी, और कुछ भी न पा सका।
जो मर जाता है उस पर जिंदा लोग हंसते हैं, लेकिन जो जिंदा आदमी अपने पर हंसने का ख्याल भी जिसे पैदा हो जाता है, उसकी जिंदगी बदल जाती है। वह दूसरा आदमी हो जाता है।
अगर इन तीन दिनों में आपको अपने ही जिंदगी पर हंसने का ख्याल आ जाए तो बात पूरी हो गयी। और आपको ख्याल आ जाए उस जगह खोदने का जहां आप खड़े हैं, तो बात पूरी हो गयी। तो मैंने जो कहा, उसका परिणाम फिर निश्चित आ सकता है।
अंत में यही प्रार्थना करता हूं, कि आप भिखारी ही नहीं मर जायेंगे, सम्राट

होकर ही मरेंगे। पड़ोस के लोगों को हंसने का मौका नहीं देंगे, इसकी प्रार्थना करता हूं। तीन दिन तक मेरी बातों को इतने शांति, इतने प्रेम से सुना उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।
अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। तो आप सब थोड़ी-थोड़ी जगह बना लें ताकि आप लेट सकें। अंतिम ध्यान है इसलिए इसका पूरा उपयोग करना है। सब लोग थोड़े फासले पर हो जायें।
हां, बातचीत न करें, कोई बातचीत न करें। और जो लोग दूसरे बैठे हैं, वे हट आयें बाहर। कोई किसी को छूता हुआ न हो। वहां से हट जायेंगे बाहर, जहां जगह है वहां हट जायें। बातचीत बिल्कुल भी नहीं। क्योंकि बातचीत का कोई संबंध ही नहीं। यहां आगे आ जायें कुछ लोग, और ध्यान रखें कि आपके कारण किसी के ध्यान में जरा भी बाधा न पड़े। किसी के भी कारण किसी दूसरे को जरा भी बाधा न पड़े, और बस लेट जायें, फिर प्रकाश बुझा दिया जाए। इसको ध्यान में लेंगे, कि किसी के कारण किसी को जरा भी बाधा न हो।
सबसे पहले शरीर को बिल्कुल शिथिल छोड़कर लेट जायें। बिल्कुल ढीला छोड़ दें, जैसे शरीर में कोई प्राण ही नहीं

है। शरीर बिल्कुल ढीला छोड़ दें। जैसे शरीर में कोई प्राण ही नहीं है। शरीर बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आंख फिर धीरे-से बंद कर लें। आंख बंद कर लें।
आंख बंद कर ली है, शरीर ढीला छोड़ दिया है। अब मैं सुझाव देता हूं, मेरी तरह अनुभव करेंगे तो ठीक वैसा ही परिणाम उसके अनुसार मन में होता जाएगा। अनुभव करें, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। अनुभव करें शरीर शिथिल होता जा रहा है, शरीर शिथिल होता जा रहा है, शरीर शिथिल होता जा रहा है, शरीर शिथिल होता जा रहा है।... शरीर बिल्कुल शिथिल छोड़ दें और भाव करें, शरीर शिथिल हो गया। शरीर शिथिल हो गया। शरीर शिथिल हो गया। शरीर शिथिल हो गया। श्वास शांत होती जा रही है। भाव करें, श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो रही है। भाव करें, श्वास शांत हो रही है। श्वास शांत हो गयी है। श्वास शांत हो गयी है। श्वास शांत हो गयी है। श्वास शांत हो गयी है। श्वास शांत हो गयी है।
मन भी शून्य हो रहा है। मन भी शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है। भाव करें, मन

शांत हो रहा है। मन शांत हो गया। मन भी शांत हो गया। मन शांत... !
अब दस मिनट के लिए भीतर जागे रहें, बाहर की सब ध्वनियों को चुपचाप सुनते रहें। भीतर जागे रहें, सो नहीं जाना है। भीतर होश से भरे रहें। भीतर जागे रहें और चुपचाप सुनते रहें। सिर्फ सुनते रहें। रात के सन्नाटे को सुनते रहें। सुनते ही सुनते एक बहुत गहरा शून्य उत्पन्न होगा।
सुनें! दस मिनट के लिए चुपचाप सुनते रहें... शांत सुनते रहें। मन बिल्कुल शून्य होता जा रहा है। मन शून्य होता जा रहा है। मन शून्य हो गया है। मन शून्य हो गया है। मन शून्य हो गया है।
मन बिल्कुल शून्य हो गया है। मन शून्य हो रहा है। चारों तरफ बन गये शून्य में डूबते जायें। मन शून्य हो रहा है। मन शून्य हो रहा है। मन शून्य हो रहा है। मन शून्य हो रहा है।
... मन शांत हो रहा है। मन शून्य हो रहा है।
और गहरे डूबते जायें। मन शून्य हो रहा है। मन शून्य हो रहा है। मन बिल्कुल शून्य हो गया है... ।